जय गुरुदेव

एवं विपणन प्रणाली में स्थापत्य वेद की भूपिका के संदर्भ में) भूपिका

महर्षि भहेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय की विद्यावारिधि (पी.एच.डी.) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबंध

दिसम्बर 1999



अनुसंधात्री श्रीमती सुनीता शुक्ता परिसर, बिलासपुर

ै निर्देशक :

डॉ. बी.ए. मिश्रा विभागाध्यक्ष-वाणिज्य विभाग सी.एम.दुबे, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बिलासपुर सह-निर्देशक

डॉ. सीमा श्रीवास्तव

एम.ए. आचार्य ंपी.एच.डी. म.म.यो.वै.वि.वि महिला परिसर, बिलासपुर

CCO. Maharishi Mahesh Yogi Vedie Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur, MP Collection.



tot.

सन्दर्भ पुरतक

यह पुस्तक देय नहीं है।



Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection. शिल में - 010 Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha पंजी कु० मटिबि 801/19 जय गुरुदेव



उद्योदन एवं विपणन प्रणाली में स्थापत्य वेद की भाषका (बिलासपुर जिले के सीमेंट उद्योग के संदर्भ में)

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय की विद्यावारिधि (पी.एच.डी.) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबंध

दिसम्बर 1999



अनुसंधात्री श्रीमती सुनीता शुक्ला परिसर, बिलासपुर

निर्देशक :

डॉ. बी.ए. मिश्रा विभागाध्यक्ष-वाणिज्य विभाग सी.एम.दुबे, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बिलासपुर सह-निर्देशकः

डॉ. सीमा श्रीवास्तव

एम.ए. आचार्य पी.एच.डी. म.म.यो.वै.वि.वि. महिला परिसर, बिलासपुर

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur, MP Collection.

शोध निर्देशक का प्रमाण पत्र

में प्रमाणित करता हूं कि श्रीमती सुनीता शुक्ला शोधच्छात्रा, महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, परिसर बिलासपुर ने अपने शोध प्रबंध ''उत्पादन एवं विपणन प्रणाली में स्थापत्यवेद की भूमिका'' (जिले के सीमेंट उद्योग के संदर्भ में) को मेरे निर्देशन में लिखा है। इस शोध प्रबंध में तथ्यों अथवा सिद्धांतों का पर्यालोचन नई दृष्टि से किया गया है। शोधार्थी ने महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित समय की न्यूनतम अविध एवं उपस्थिति को पूर्ण किया है।

अतः शोध प्रबंध सहृदय सुधीजनों के समक्ष परीक्षण हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है।

स्थानः बिलासपुर

दिनांकः

शोध निर्देशक डॉ. बी.ए. मिश्रा

विभागाध्यक्ष-वाणिज्य विभाग सी.एम. दुबे महाविद्यालय, बिलासपुर

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.

शोध निर्देशक का प्रमाण पत्र

में प्रमाणित करता हूं कि श्रीमती सुनीता शुक्ला शोधच्छात्रा, महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, परिसर बिलासपुर ने अपने शोध प्रबंध ''उत्पादन एवं विपणन प्रणाली में स्थापत्यवेद की भूमिका'' (जिले के सीमेंट उद्योग के संदर्भ में) को मेरे निर्देशन में लिखा है। इस शोध प्रबंध में तथ्यों अथवा सिद्धांतों का पर्यालोचन नई दृष्टि से किया गया है। शोधार्थी ने महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित समय की न्यूनतम अविध एवं उपस्थिति को पूर्ण किया है।

अतः शोध प्रबंध सहृदय सुधीजनों के समक्ष परीक्षण हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है।

स्थानः बिलासपुर

दिनांकः

शोध निर्देशक

डॉ. बि.ए. मिश्रा

विभागाध्यक्ष-वाणिज्य विभाग सी.एम. दुबे महाविद्यालय, बिलासपुर

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.

सह निर्देशक का प्रमाण पत्र

मैं प्रमाणित करती हूं कि श्रीमती सुनीता शुक्ला ने उत्पादन एवं विपणन प्रणाली में स्थापत्य वेद की भूमिका (बिलासपुर जिले के सीमेन्ट उद्योग के संदर्भ में) शीर्षक के अन्तर्गत मेरे सहनिर्देशन में महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय जबलपुर के बिलासपुर परिसर से शोध कार्य पूर्ण किया है। इस शोध प्रबंध में भाषा शैली अच्छी है।

दिनांक :-

सह निर्देशक

डा. सीमा श्रीवास्तव

एम.ए. आचार्य, पी.एच.डी.

परिसर बिलासपुर

घोषणा पत्र

मैं श्रीमती सुनीता शुक्ला यह घोषित करती हूं कि 'उत्पादन एवं विपणन प्रणाली में स्थापत्यवेद की भूमिका' (बिलासपुर जिले के सीमेंट उद्योग के संदर्भ में) विषयक प्रस्तुत शोधप्रबंध स्वयं के द्वारा संकलित तथ्यों के आधार पर मेरी मौलिक कृति है। मेरी जानकारी में इस विषय पर शोध प्रबंध किसी उपाधि के लिये किसी भी वि.वि. एवं अन्य शिक्षण संस्थान में प्रस्तुत नहीं किया गया है।

अनुसंधात्री श्रीमती सुनीता शुक्ला म.म.यो.वै.वि.वि. परिसर बिलासपुर

संकल्पना

अपनी धुरी पर निरंतर चलायमान कालचक्र कभी ठहरता नहीं, इस अवधि में वह अपने निशान छोड़ता जाता है जिसे हम कभी युग के पैमाने पर रखकर तौलते हैं तो कभी परंपराओं के चश्में से देखते हैं। सतयुग से त्रेता, द्वापर फिर कलियुग तक लाखों वर्ष के सफरनामे का साक्षी या तो समय है या फिर हमारी सृष्टि का मूल 'वेद'। धर्मग्रंथों के अनुसार हमने कलियुग के चार लाख बत्तीस हजार वर्षों में से अब तक केवल पांच हजार वर्ष गुजारे हैं। यह अल्पाविध भी कितनी त्रासद रही है यह जाहिर है। भौतिकवादी समाज ने अपनी सांस्कृतिक व धार्मिक परंपराओं का साथ छोड़ने का खामियाजा भुगत लिया हैं निर्माण कार्यों में आज चहुंओर जिस वास्तु की चर्चा हो रही है वह आधुनिक समाज की नहीं हमारे वेदों की देन है। वास्तु शास्त्र का मूल स्थापत्य वेद में है। भवन निर्माण तो सहस्त्राब्दियों से हो रहा है, हजारों वर्ष पुरानी संरचनाओं के अवशेष भी विद्यमान हैं। लेकिन आधुनिकता की दौड़ में व्यस्त समाज सांस्कृतिक धरोहर की बारीकियों को देखने व सहेजने की फुरसत नहीं निकाल सका। अब जब यह तथ्य प्रामाणिक साबित हो चुके हैं तो समाज एक बार फिर पवित्रता व शांति के युगों के अनुसरण का मार्ग तलाश रहा है। निर्माण की अत्याधुनिक तकनीक हासिल करने के बावजूद द्वापर व त्रेता युग की वास्तु तकनीक का अध्ययन किया जा रहा है। द्वापर में कृष्ण की नगरी का निर्माण हुआ था, वहीं 21 लाख पैंसठ हजार 96 वर्ष पूर्व त्रेतायुग में भगवान श्री राम ने स्थापत्य नियमों के मुताबिक निर्माण कराया था। इसी काल में रावण ने श्रीराम द्वारा स्थापित रामेश्वर ज्योर्तिलिंग की वास्तु प्रतिष्ठा कराई थी। वेदों, पुराणों के अध ययन व अवशेषों से प्राप्त संकेतों के बाद वास्तुशास्त्री स्थापत्य सिद्धांतों का अनुसरण करने लगे है। वाणिज्य की छात्रा होने के कारण उद्योग, व्यवसाय के क्षेत्र में मेरी सहज रुचि रही है। पौराणिक ग्रंथों में व्यवसायिक गतिविधियों की जानकारी रखने की जिज्ञासा ने मेरे मन में अनेक सवाल छोड़े। स्थापत्य सिद्धांतों के प्रभाव का पौराणिक ग्रंथों में उल्लेख देखकर मेरी इस जिज्ञासा को बल मिला कि स्थापत्य सिद्धांत कहीं न कहीं औद्योगिक ईकाइयों, व्यवसायों को प्रभावित करते हैं, वरना ऐसी क्या वजह है जो सारी परिस्थितियों के अनुकूल होने के बाद भी व्यवसाय आशानुरुप सफल नही होते। इस सवाल के आते ही जिले के सीमेंट उद्योग की स्थिति स्वमेव उभरकर सामने आती है जहां सामान परिस्थितियों के बावजूद भी कुछ उद्योग निरंतर घाटे के बाद से बंद हैं तो कुछ उत्पादन के कीर्तिमान अर्जित कर रहे है। सीमेंट, निर्माण कार्य के लिए सबसे आवश्यक सामग्री है। इस जादुई पावडर के अविष्कार ने मानव सभ्यता को विकास की दुनिया में कहां से कहां पहुंचा दिया हैं पर यह विचार आना भी स्वाभाविक है कि सीमेंट के अविष्कार के पूर्व मानव ने निर्माण कला व वास्तुकला के बेजोड़ उदाहरण आखिर कैसे प्रस्तुत किए? जब सीमेंट जैसा कोई तत्व नहीं था तो अदभुत प्राचीन भवनों की संरचना कैसे हुई, स्थापत्य के छोटे छोटे सिद्धांतों का पालन किस तकनीक से हुआ? उद्योग निर्माण व स्थापत्य से जुड़े इन सवालों ने मुझे शोध के लिये उत्पेरित किया। इसी आधार पर इस शोधप्रबंध की भूमिका तैयार हुई।

वेदों, पुराणों के अध्ययन बिना वास्तुशास्त्र के महत्व को समझा नहीं जा सकता क्यों कि स्थापत्य का मूल ही 'वेद' है। वेद हमारी संस्कृति के नियामक हैं। वेदों के ज्ञान की दृष्टि से वर्तमान में किये जा रहे प्रयोगात्मक रासायनिक एवं भौतिक परिवर्तन विज्ञान की श्रेणी में रखे जा सकते है। भवन निर्माण की मूल विधि वेदों में निहित है। स्थापत्यवेद को अथर्ववेद का उपवेद माना जाता है। वेदों में जो ज्ञान है उसके आधार पर ही पुराणों में भी वास्तु सिद्धांतों को शामिल किया गया है। मालवा के प्रसिद्ध शासक राजा भोज ने ग्याहरवीं शताब्दी में जिस समरांगण सूत्रधार की रचना की, उसे स्थापत्य का प्राचीनतम ग्रंथ माना जाता है। इस कृति में यह श्लोक वास्तु शास्त्र के व्यापक क्षेत्र का आभास कराता है।

देशः पुरं निवासश्च सभा वेश्मासनानि च। यद्यदीदृशमन्यच्च तत्तच्छ्रेयस्करं मत्म वास्तुशास्त्रादृते तस्य न स्याल्लक्षणिनश्चयः। तस्माल्लोकस्य कृपया शास्त्रमेतदुदीर्यते।।

सीमेंट अथवा जोड़ने के किसी भी माध्यम (ज्वाइटिंग मीडिया) के परिप्रेक्ष्य में स्थापत्य संरचनाओं का अध्ययन केवल पौराणिक भवन निर्माण से ही नहीं किया जा सकता। इसलिए चित्रकला, मूर्तिकला, सिद्धांतों को भी समझना जरुरी है। स्थापत्य की आत्मा के स्वरुप को वेद,

वेदांग, कल्प, ज्योतिष, पुराण तथा अन्य शास्त्रीय ग्रंथ, मानसार मयमत, समरांगण सूत्रधार एवं अपराजितपृच्छा के समन्वयात्मक अध्ययन से जाना जा सकता है। प्थ्वी पर प्रथम भवन से लेकर आदिकालीन संरचनाओं व अवशेषों तक के इस सफर में ज्वाइटिंग मीडिया का स्वरुप निरंतर बदलता रहा है। आदिकाल में हड़प्पायुगीन अवशेषों में इस हेतु जुड़ाई और प्लास्टर के लिये मिट्टी, चूना तथा जिप्सम का व्यापक प्रयोग हुआ है, जैसा कि हम जानते हैं कि सिंधु सभ्यता में अधिकांश संरचना पकी अथवा कच्ची ईटों (आग में पकी और धूप में पकी) का उपयोग होता था। सिंधु सभ्यता में मोहन-जोदड़ों के उत्खनन से प्राप्त स्नान कुंड में प्लास्टर व उसे जलरोधी बनाने के लिये जिप्सम और बिदुमिन (प्राचीन संस्कृत साहित्य में गिरिपुष्पक नाम से ज्ञात) का प्रयोग किया गया है, यहां एक इंच मोटी गिरिपुष्पक का प्लास्टर किया गया है। वैदिक संरचनाओं में मिट्टी व लकड़ी का प्रयोग म्ख्यतः हुआ करता था, जबकि छप्परों के लिसे घांस फूस और आधार नींव के लिये पत्थर इस्तेमाल हुआ है। इस प्रकार मिट्टी की दीवारों को उठाते हुये अलग से किसी अन्य माध्यम तत्व की आवश्यकता नहीं होती थी और लकड़ी या लकड़ी-पत्थर को आपस में जोड़ने के लिये चूलें बनाई जाती थी, जो वस्तुतः काल संरचनाओं की तकनीक हैं वैदिक काल में स्तंभ लकड़ी के हुआ करते थे जिन्हें उर्द्धवाधर खड़ा करने के लिये पत्थर की कुंभियों का प्रयोग होता था। वैदिक काल के पश्चात के समय में स्थापत्य का स्वरुप, जिन प्राप्त अवशेषों के आधार पर ज्ञात होता है, वह स्तूप, लाट (विशाल एकाश्म स्तंभ) तथा शिलोत्खात है। वास्तु का यह स्वरुप सांश्लष्ट संरचनात्मक होने के बजाय सरल और एकांकी हुआ करता था और प्राप्त स्मारक अवशेषों से अनुमान होता है। कि इनमें यथा स्तूपों में प्लास्टर के लिये चूना-गारे का प्रयोग होता था तथा पत्थरों की आपस में जुड़ाई के लिये चूलो (होल साकेट) की काष्ठ माध्यम में प्रयोग होने वाली तकनीक का ही प्रयोग हुआ है। गुप्त काल भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग था। स्थापत्य के क्षेत्र में भी गुप्तकाल में ही नये आयाम उद्घाटित स्थापित हुये। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण मंदिर वास्तु संरचनाओं का नियमित क्रम इसी काल से मिलना आरंभ होता है, किंतु गुप्तकालीन आरंभिक मंदिर सादे, सपाट और न्यून प्रतिमा-अलंकरणों वाले होते थे जिनमें धीरे धीरे विकास होता गया। जहां तक ज्वाइंटिंग का प्रश्न है तो इस दृष्टि से भार संतुलन के सिद्धांत पर मुख्यतः निर्भर रहने के साथ साथ काष्ठ माध्यम की तकनीक का

अनुसरण किया ही गया है, क्लेप का प्रयोग भी आरंभ कर दिया गया, जो विकास काल में संरचनात्मक वास्तु का अभिन्न अंग बन गया।

वास्तु संरचनाओं के प्राचीन उदाहरणों में ईटों से निर्मित ऐतिहासिक काल के भवन, मंदिर पाये गये हैं, किसी संख्या तथा कलात्मक वैभव और विविधता की दृष्टि से दक्षिण कोसल (छत्तीसगढ़) क्षेत्र में निर्मित 6वीं सदी ई. से 8वीं सदी ई. के मध्य निर्मित ईटों के मंदिर विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पकी हुई लाल ईटों के ऐसे मंदिर पलारी, धोबनी, खरौद आदि स्थलों पर आज भी विद्यमान है साथ ही साथ सिरपुर की अन्य ईंट निर्मित संरचनाओं के साथ लक्ष्मण मंदिर इस कड़ी में सर्वोपरि है इन मंदिरों में एक विशेषता सामान्य रूप से परिलक्षित होती है वह है ईटों के थरों की अत्यंत बारीक जुड़ाई अर्थात ईटों के घर की जुड़ाई आपस में इस सफाई से की गई है कि उसे जोड़ने के लिये प्रयुत्त मसाले या माध्यम का अनुमान कठिन होता है क्योंकि बीच का अंतर कागज से भी पतला जान पड़ता है। प्राचीन स्थापत्य अध्येता गहन विचार के पश्चात इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि संभवतः धूप में पकी ईटों को अत्यंत बारीक पतली छनी मिट्टी के लेप से जोड़कर संरचना पूर्ण कर ली जाती थी तब एक साथ पूरी संरचना को भट्टे जैसा पका लिया जाता था। बाद की संरचनाओं में चूना-गारे का उपयोग किया जाने लगा। चूने की उपयोगिता ज्यों-ज्यों स्थपतियों को ज्ञात होती गई सीमेंट के अविष्कार की दिशा में कड़िया जुड़ती गई। सहस्त्राब्दियों की संरचनाओं और सिद्धांतों को सीमित दायरे में बांधना टेड़ी-खीर है, फिर भी इसे श्रृंखलाबद्ध करने का प्रयास कर रही हूं। विद्यार्जन का यह प्रयास मेरे लिये किसी धार्मिक अनुष्ठाान से कम नहीं है। पूरे जीवन में मनुष्य सृष्टि के मूल व ईश्वरीय ज्ञान ग्रंथ वेद के अध्ययन के लिये समय तलाशता रह जाता है लेकिन मुझे अल्पायु में इसके अध्ययन का सौभाग्य मिल गया।

शोध प्रबंध को आकार देने कुछ विराम व पड़ाव निर्धारित कर उन्हें छः अध्याय में बांटा गया है। प्रथम अध्याय में बिलासपुर जिले की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, प्राकृतिक रचना, कृषि, सिंचाई, खनिज एवं उद्योगों पर परिचयात्मक विवेचन किया गया है।

द्वितीय अध्याय में सीमेंट के इतिहास, आवश्यकता एवं महत्व पर प्रकाश डाला गया है। इसके अंतर्गत वैदिक परंपरा में जब सीमेंट का अविष्कार नहीं हुआ था तब सीमेंट के वैकल्पिक उपाय एवं तकनीक का विवरण है। वैदिककाल में नगरों का उल्लेख तथा नगर नियोजन एवं पूर्व व उत्तर वैदिक कालीन सीमेंट के इतिहास का संक्षिप्त समावेश किया गया है। स्वतंत्रता पूर्व 1900 से 1947 तक सीमेंट उद्योगों की स्थिति एवं स्वतंत्रता पश्चात कारखानों की स्थापना, पंचवर्षीय योजनाओं में सीमेंट उद्योगों की स्थिति एवं विकास, सीमेंट उत्पादक संघ, कांक्रिट एसोसिएशन के गठन को संकलित किया गया है।

तृतीय अध्याय में – सीमेंट उत्पादन की विधियों का वर्णन किया गया है। वैदिक परंपरा में सीमेंट सदृश्य तत्व मिट्टी, जिप्सम, वज्रलेप, सुधाबंधन, प्लाईऐश, जिप्सम, कोयला, स्लेग से सीमेंट बनाने की विधियों को इस अध्याय में शामिल किया गया है। साथ ही रेमंड एवं सीसीआई संयंत्र में सीमेट उत्पादन की आधुनिक तकनीक, श्रम, पूंजी एवं संगठन की जानकारी संकलित की गई है।

अध्याय चतुर्थ में बिलासपुर जिले के सीमेंट उद्योगों की विकास यात्रा को शामिल किया गया है। जिले में सीमेंट संयंत्रों की स्थापना, उत्पादन, एवं वितरण संबंधी विवरण इस अध्याय में दिए गए हैं। अकलतरा सीसीआई संयंत्र, गोपालनगर स्थित रेमंड संयंत्र एवं तिफरा स्थित नेशनल सीमेंट कार्पोरेशन संयंत्र की स्थापना, विकास, प्रगति एवं उत्पादन का विशेष अध्ययन किया गया है।

अध्याय पंचम में — उद्योग एवं व्यवसाय में स्थापत्यवेद के प्रभाव का सविस्तार वर्णन किया गया हैं स्थापत्यवेद का उद्भव,विकास, महत्व, वास्तु पुरुष की उत्पत्ति, स्थपित की योग्यताएं एवं वास्तु शास्त्र के ज्योतिष से संबंध का वर्णन किया गया हैं। इस अध्याय में वास्तु शास्त्र एवं दिशाओं के अलावा उद्योग एवं व्यवसाय में स्थापत्य के असर का सचित्र विवेचन किया गया हैं।

अध्याय षष्ठम में – जिले के सीमेंट उद्योगों का वास्तुशास्त्रीय सिद्धांतों के अनुसार अध्ययन किया गया है। इसके अंतर्गत संयंत्र की संरचना, समस्याएं एवं निराकरण हेतु सुझाव भी दिए गए हैं। इस अध्याय में शोध विषय उत्पादन एवं विपणन प्रणाली में स्थापत्यवेद की भूमिका (जिले के सीमेंट उद्योग के संदर्भ) पर निष्कर्ष तथा आंकलन का प्रस्तुतिकरण किया गया है। अंत में शोध के दौरान प्रयुक्त प्रश्नावली एवं संदर्भ ग्रंथों की सूची शामिल की गई है।

आभार

विद्यार्जन पूर्व जन्मार्जित सतकर्मों का फल होता है। किंतु भाग्य के साथ कर्म का भी योगदान कम नहीं है। कोई भी व्यक्ति अपने आप में पूर्ण नहीं होता, मार्गदर्शन एवं सहयोग देने वाले उसे पूर्णता प्रदान कर सफलता के शिखर तक पहुंचाते हैं। सफलता के इस सोपान को स्पर्श करते समय मैं उन समस्त विद्वतजनों एवं सहयोगियों के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करने की अभिलाषा रखती हूं। वेदों के साथ वर्तमान भौतिकवादी औद्योगिक संस्कृति का अध्ययन अन्वेषण का कार्य आसान नहीं था। ऐसे समय में विषय चयन व मार्गदर्शन दिया मेरे निर्देशक श्रद्धेय डॉ. बी. ए. मिश्रा (विभागाध्यक्ष वाणिज्य विभाग, सीएमडी महाविद्यालय बिलासप्र) ने। व्यस्तता के बीच उन्होंने अपने अनुभव, सुझावों से मेरी त्रुटियों को दूर कर उत्साहवर्धन किया उनकी मैं हृदय से आभारी हूं। प्रस्तृत शोध प्रबंध को मैं अपनी सह निर्देशक डॉ. सीमा श्रीवास्तव (प्रभारी ममयोवै विवि बिलासपुर) के आशीर्वाद बगैर पूर्ण करने की कल्पना भी नहीं कर सकती थी। उनके विद्वतापूर्ण, स्नेहिल व्यवहार की छाया तले यह ग्रुतर कार्य संभव हो सका। विषय संकल्पना से लेकर शोध के आकार लेने तक में दिए गए मार्गदर्शन एवं सहयोग के लिये में प्राविद् एवं संग्रहालयाध्यक्ष श्री राहुल कुमार सिंह के प्रति कृतज्ञ हूं, जिन्होंने न केवल उपयोगी जानकारी मुहैया कराई बल्कि शोध को परिष्कृत भी किया। उनके उपकार को मैं विस्मृत नहीं कर सकती। अंतिम चरण तक पुरातत्वविद् श्री रायकवार द्वारा दिए गए विद्वतापूर्ण सुझाव के लिये मैं उनकी आभारी हूं। सीमेंट उद्योग के संदर्भ में जिस उत्साह के साथ रेमंड सीमेंट के उप महाप्रबंधक कार्मिक श्री एस.के. सिंह ने सहयोग दिया उसे विस्मृत नहीं कर सकती, उनके सुझावों के बगैर यह साधना अधूरी रह जाती। मैं पत्रकारिता से

जुड़े उन स्नेहीजनों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहती हूं जिन्होंने समय-समय पर मुझे सहयोग दिया। सर्वप्रथम में दैनिक भास्कर के संपादक श्रद्धेय श्री प्राण चड्डा के प्रति आभार व्यक्त करती हूं जिन्होंने न केवल महत्वपूर्ण ग्रंथ उपलब्ध कराए बिल्क मार्गदर्शन भी दिया। दैनिक नवभारत के छायाकार अपूर्व दास एवं दैनिक भास्कर के उप संपादक श्री सुनील गुप्ता एवं श्री बुक डिपो एवं प्रशिक्षण संस्थान के संचालक श्री पीयूष गुप्ता, पेम्बर आफ कामर्स के सचिव श्री बेनी गुप्ता के सहयोग के बगैर यह शोध पूर्ण करना किंदन था जिन्होंने बहुमूल्य समय देकर छाया चित्र, संदर्भ ग्रंथ पुस्तकों पत्र-पित्रकाएं मुक्तहस्त से प्रदान किया म.म.यो.वै.वि.वि. बिलासपुर परिसर के समस्त गुरूजनों ने अपने सुझावों से शोध कार्य को पूर्णता प्रदान की तथा समय-समय पर उत्साहवर्धन किया। उनका यह सहयोग सदैव मेरे स्मरण में रहेगा। गुरुघासीदास विश्वविद्यालय, सीएमडी महाविद्यालय के ग्रंथालय प्रभारियों के प्रति भी में आभार प्रदर्शित करती हूं। शोध प्रबंध में उल्लेखनीय सहयोग के लिये मैं अपने परिवार जनों के साथ-साथ सर्वश्री शैलेष शर्मा, उमाशंकर वर्मा, विजय पांडेय एवं तेरस यादव के प्रति भी कृतज्ञ हूं जिन्होंने इस कृति को पूर्ण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। शब्द कोष भी अक्षम हैं, विद्वतजन के आभार हेतु।

अनुक्रमणिका

			पृष्ठ क्रमांक
अध्याय प्रथम	-	बिलासपुर जिले का सामान्य परिचय	01-30
		अ. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	
		ब. स्थिति एवं विस्तार	
		स. प्राकृतिक रचना एवं जलवायु	
		द. कृषि एवं सिंचाई	
		इ. खनिज एवं उद्योग	
अध्याय द्वितीय	-	सीमेंट का इतिहास, आवश्यकता एवं महत्व	31-73
		अ. वैदिक परम्परा में	
		ब. आधुनिक काल में –	
		1. स्वतंत्रता पूर्व	
		2. स्वतंत्रता पश्चात्	
अध्याय तृतीय	-	सीमेंट उत्पादन की विधि	74-93
		अ. उत्पादन एवं विपणन	
		ब. उत्पादन विधि –	
		1. वैदिक परम्परा	
		2. आधुनिक काल	

अध्याय चतुर्थ	-	बिल	ासपुर जिले में सीमेंट उद्योग का विकास	94-130
*		अ.	स्थिति	
		ब.	स्थापना	
		स.	विकास एवं प्रगति	
		द.	उत्पादन, विक्रय एवं वितरण	
अध्याय पंचम	-	उद्यो	ग एवं व्यवसाय में स्थापत्य	131-189
		वेद	की भूमिका	
		अ.	उद्भव, विकास एवं महत्ता	
		ब.	वैदिक परम्परा में स्थापत्य	
		स.	उद्योग एवं व्यवसाय में स्थापत्य का प्रभाव	
अध्याय षष्ठम	-	जिले	के सीमेंट उद्योग का	190-210
		वास्त्	तुशास्त्रीय अध्ययन	
		अ.	सीमेंट संयंत्रों की संरचना	
		ब.	सीमेंट उद्योग की समस्याएं एवं सुझाव	
		स.	उपसंहार	
परिशिष्ट ं	-	1.	प्रश्नावली	211-218
		2.	संदर्भ ग्रंथ-सूची	219-224

अध्याय प्रथम

बिलासपुर जिले का सामान्य परिचय

- अ. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
- ब. स्थिति एवं विस्तार
- स. प्राकृतिक रचना एवं जलवायु
- द. कृषि एवं सिंचाई
- ई. खनिज एवं उद्योग

अध्याय प्रथम

बिलासपुर जिले का सामान्य परिचय

- अ. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
- ब. स्थिति एवं विस्तार
- स. प्राकृतिक रचना एवं जलवायु
- द. कृषि एवं सिंचाई
- ई. खनिज एवं उद्योग

अध्याय प्रथम बिलासपुर जिले का सामान्य परिचय

(अ) ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

जिले का इतिहास :

वर्तमान बिलासपुर जिला प्राचीन दक्षिण कौशल का अंग था। इसका सांस्कृतिक इतिहास प्राप्त पुरातात्विक प्रमाणों के आधार पर ई.पू. 6वीं शताब्दी तक जाता है। इसके पूर्व की स्थिति कुछ अस्पष्ट सी है। इस क्षेत्र में मानव विकास की अवस्था प्रागैऐतिहासिक काल से प्रारंभ हो गई थी। रायगढ़ जिले में प्रागऐतिहासिक काल के चित्रित शैलाश्रय प्राप्त हुये हैं जो तत्कालीन मानव की समाजिक एवं धार्मिक मान्यताओं के प्रतीक हैं। बिलासपुर जिले से भी प्रागऐतिहासिक कालीन हसदो घाटी शस्त्र उपलब्ध हुये हैं जो उसके विकास की अवस्थाओं को प्रदर्शित करते हैं।

वैदिक काल में इस क्षेत्र की क्या स्थिति थी, कह सकना कठिन है, क्यों कि ऋगवेद में न तो नर्मदा का उल्लेख मिलता है न ही विन्ध्याचल का। किंतु उत्तर वैदिक युग में इस क्षेत्र के संबंध में जानकारी हो चुकी थी क्यों कि तत्कालीन ब्राम्हण ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि उन्हें यहां के घने जंगलों में निवास करने वाली अनार्य जातियों की जानकारी थीं ऐसा अनुमान है कि वैदिक काल में आर्यों का प्रवेश इस क्षेत्र में नहीं हुआ था।

पौराणिक आधार पर जिले का इतिहास चार युगों से संबंधित माना जाता है। 1. जनश्रुति के अनुसार जिले का वर्तमान रतनपुर ग्राम चारों युगों में अल अलग नामों से जाना जाता था। सतयुग में इसका नाम मणीपुर, त्रेता एवं द्वापर में इसका नाम माणिकपुर एवं हीरापुर तथा कलियुग में रतनपुर था। रामायण के अनुसार अयोध्या के राजा दशरथ की बड़ी रानी कौशल्या दक्षिण कौशल की थी 2. एक जनश्रुति के अनुसार महर्षि बाल्यिमकी का आश्रम रायपुर जिले के तुरतुरिया में था। 3. एक अन्य किवदंती के अनुसार भगवान श्री कृष्ण ने भी रतनपुर की यात्रा की थी। 4. इस संबंध में नैमिनी पुराण

स्त्रोत :- स्मारिका जिला बिलासपुर 1956-1981

में एक कथानिक का वर्णन आता है। जिसके अनुसार भगवान श्री कृष्ण के समकालीन राजा मयूरध्वज रतनपुर (रत्नपुर) में शासन करते थे। पाण्डवों के भाई युधिष्टिर ने अश्वमेघ यज्ञ का आयोजन किया तथा यज्ञ के अश्व की रक्षा के लिये अर्जुन को नियुक्त किया गया। संयोगवश यज्ञ का अश्व रत्नपुर राज में पहुंचा। मयूरध्वज के पुत्र ताम्रध्वज ने उस अश्व को पकड़ लिया। फलतः ताम्रध्वज एवं अर्जुन में युद्र हुआ जिसमें ताम्रध्वज बुरी तरह से घायल हो गया। श्री कृष्ण के यह कहने पर कि मयुरध्वज एवं उसका परिवार मेरा अनन्य भक्त है अतः युद्ध बंद कर दिया जाये। किन्तु अर्जुन के सहमत न होने पर श्री कृष्ण ब्राम्हण एवं अर्जुन उसके पुत्र का रूप धारण कर मयूरध्वज की परीक्षा लेने गये। उन्होंने उसका शरीर का दाहिना भाग सिंह के भक्षण हेतु मांग की। मयूरध्वज ने तत्काल अपना दाहिना हिस्सा आरे से काटकर दे दिया। अतः श्री कृष्ण ने प्रसन्न होकर चीरे हुये अंग को जोड़ दिया ऐसा कहा जाता है कि उसी समय से रतनपुर राज्य में आरे का प्रयोग मराठों के आगमन तक बंद था। 5 एक अन्यिकवंदती के अनुसार अर्जुन का पुत्र भबुवाहन की राजधानी भी इसी प्रदेश में थी।

पौराणिक पृष्ठभूमि :

रामायण में दो कौशल का वर्णन मिलता है उत्तर कौशल जो कि सरयू नदी के किनारे स्थित था दूसरा दक्षिण कौशल जो कि विंध्यांचल पर्वत श्रृंखला के दक्षिण भाग में स्थित था। वायु पुराण के अनुसार कौशल को सात उप भागों में बांटा गया। 1. मेकल कौशल, 2. कांती कौशल 3. चेदि कौशल 4. दक्षिण कौशल, 5. काशि कौशल 6. पूर्व कौशल एवं 7. किलंग कौशल। महाराजा दशरथ की पत्नी कौशल्या इसी दक्षिण कौशल की थी। रामायण के अनुसार भगवान राम ने अपने वनवास के समय लोकोद्धार संबंधी अनेक कार्य किये। यहां के कितने ही स्थान उनकी स्मृतियों के सपने संजोये हुए हैं। महाभारत में चेदि नरेश बब्रू वाहन का उल्लेख मिलता है जो कि अर्जुन का पुत्र था तथा इसकी राजधानी चित्रांगदापुर थी, जो कि वर्तमान में प्रसिद्ध पुरातात्विक स्थल सिरपुर (श्रीपुर) के नाम से प्रसिद्ध है। पाणिनी ने अपने व्याकरण में किलंग एवं कौशल संबंधी नियमों पर सूत्र लिखे है। अनेक भाष्यकारों ने इसका अर्थ दक्षिण कौशल से लिया है। गुप्त साम्राज्य की प्रयाग प्रशस्ती में कौशल का उल्लेख दक्षिण पथ के अभियान में मिलता है। ह्वेनसांग के यात्रा विवरण से कौशल का विस्तार 2000 योजन ज्ञात होता है।

स्त्रोतः - (1) रायपुर जिले में स्वतंत्रता आंदोलन, डा. आर.जी शर्मा

⁽²⁾ थामस वाटर्स, आनयुयान ट्रेवल इंन इंडिया, 200,201

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सन द्वारा डिप्टी कमिश्नर में सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ को में विभाजित किया गया। निर्माण की प्रक्रिया सन् दिया गया वर्ष 1901 में

जांजगीर कर दिया गया।

। सन् 1921 में कटघोरा

पना की गई तथा पुरानी

निकालकर बिलासपुर में

ी सक्ती तहसील में कर

1956 एवं 1981 में पुनः

43 वर्गमील का भूभाग

पूगाग मुंगेली तहसील में

पूगाग बिलासपुर तहसील

में प्रशासनिक दृष्टिकोण

नेर्माण किया गया तथा

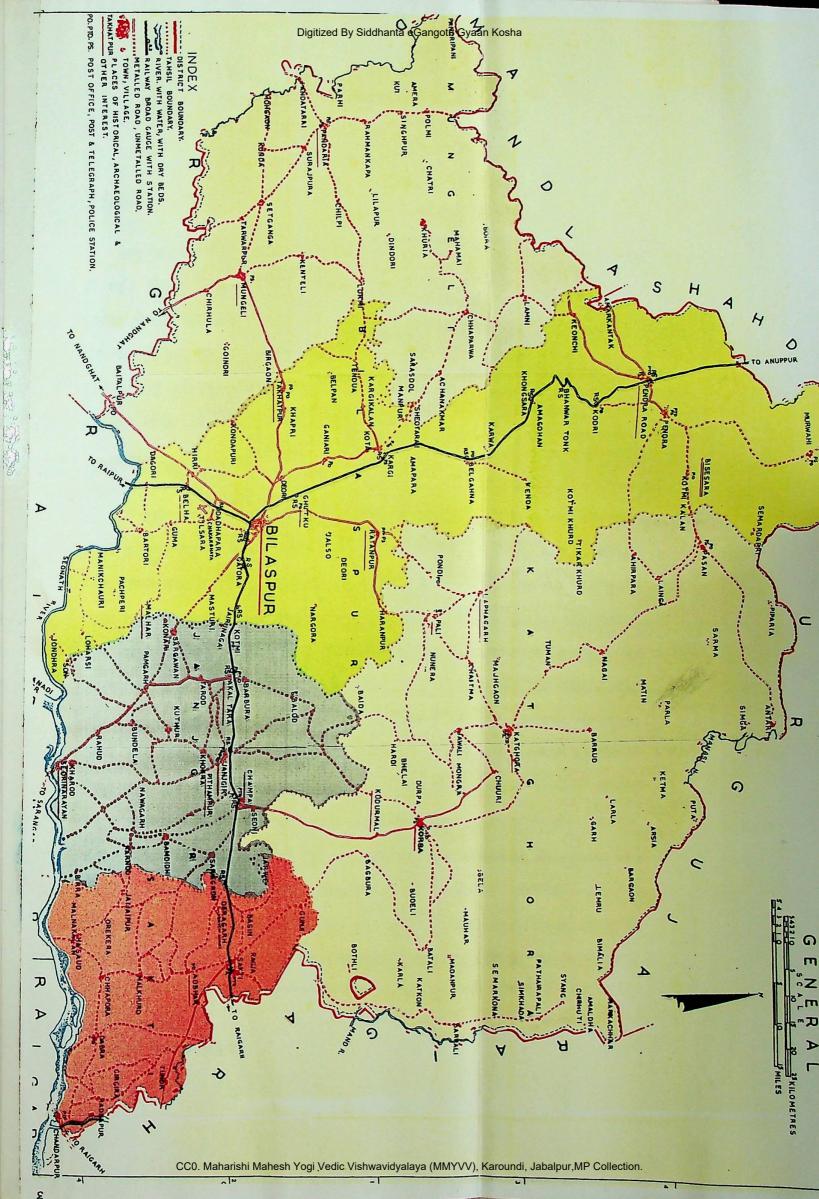
का दर्जा दिया गया।

गया जिसके तहत 27

तिर कोरबा को 3 पृथक

页

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.



Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.

जिले का निर्माण:

सन् 1854 में छत्तीसगढ़ में प्रथम बार अलग से ब्रिटिश शासन द्वारा डिप्टी कमिश्नर की नियुक्ति की गई। जिसका मुख्यालय रायपुर रखा गया। सन् 1856 में सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ को प्रशासनिक दृष्टिकोण से तीन तहसील 1 बिलासपुर 2. रायपुर एवं 3. धमतरी में विभाजित किया गया। सन् 1857 में दुर्ग को भी तहसील का दर्जा दिया गया। बिलासपुर जिले की निर्माण की प्रक्रिया सन् 1857 से ही प्रारंभ हो गई थी, किन्तु 1861 में बिलासपुर को जिले का दर्जा दिया गया वर्ष 1901 में जिले का कुल क्षेत्रफल 8341 वर्गमील एवं जनसंख्या 10,12,972 थी।

जिले एवं तहसीलों का पुनर्गठन :

वर्ष 1891 में शिवरीनारायण तहसील का मुख्यालय हटाकर जांजगीर कर दिया गया। सन् 1936 में इसका 80 वर्गमील का भाग उड़ीसा में सिम्मिलित कर दिया गया। सन् 1921 में कटघोरा तहसील का निर्माण किया गया तथा सन् 1935 में सक्ती तहसील की स्थापना की गई तथा पुरानी सक्ती एवं खरिसया तहसील का 155.2 वर्गमील का भूभाग रायगढ़ जिले से निकालकर बिलासपुर में सिम्मिलित कर दिया गया। जांजगीर तहसील का 42.32 वर्गमील का भूभाग भी सक्ती तहसील में कर दिया गया। बिलासपुर तहसील का पुनर्गठन सन् 1905–1906–1936–1948–1956 एवं 1981 में पुनः किया गया। सन् 1906 में पोड़ी छुरी उपरोड़ा इन तीन जमीदारियों का 1643 वर्गमील का भूभाग जांजगीर तहसील में तथा मिनहारी नदी के किनारे पश्चिम का 21 वर्गमील भूभाग मुंगेली तहसील में सिम्मिलित कर लिया गया। वर्ष 1953 में पुनः 17 ग्रामों के 1.8 वर्गमील का भूभाग बिलासपुर तहसील से मुंगेली तहसील में सिम्मिलित किया गया। पुनः रजत जयंती वर्ष 1981–82 में प्रशासनिक दृष्टिकोण से पेण्ड्रा गौरेला एवं मरवाही विकास खंडों को मिलाकर पेण्ड्रा तहसील का निर्माण किया गया तथा कोरबा, चांपा, पंडरिया, कोटा एवं डभरा तखतपुर विकासखंडों को तहसील का दर्जा दिया गया।

जिले का पुर्नगठन- 1997 में बिलासपुर जिले का पुनः पुनर्गठन किया गया जिसके तहत 27 विकासखंडों के इस जिले को 3 भागों में बांटा गया। बिलासपुर, जांजगीर, और कोरबा को 3 पृथक

स्त्रोत :- (1) जिला गजेटियर

⁽²⁾ संयुक्त संचालक जनसंपर्क

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जिलों का दर्जा दिया गया। विकासखंड वार नये जिलों को क्षेत्र भी सौंप दिया गया। इस पुर्नगठन के समय संभाग में जशपुर, मनेन्द्रगढ़ भी नये जिले बनाये गये। वर्तमान में नये जिलों में जिलाध्यक्ष एवं जिला पुलिस अधीक्षक की पदस्थापना की जा चुकी है लेकिन विकास कार्य अभी भी पूर्व की तरह चल रहा है। पंचायती व्यवस्था में जिला ग्रामीण विकास अभिकरण बिलासपुर से तीनों नये जिलों का कामकाज चल रहा है।

(ब) स्थिति एवं विस्तार :

बिलासपुर जिले का निर्माण अंग्रेजों ने सन 1861 में किया था। इस जिले के निर्माण से लेकर अब तक इसकी सीमाओं में कई परिवर्तन हुये। यह जिला मध्यप्रदेश के जिलों में क्षेत्रफल की द्रष्टि से चौथा एवं जनसंख्या की दृष्टि से तीसरा सबसे बड़ा जिला है। यह जिला छत्तीसगढ़ के ''धान का कटोरा'' कहलाने वाले क्षेत्र का एक भाग है। तथा कृषि प्रधान है। औद्योगिक दृष्टि से यह जिला आज भी पिछड़ा हुआ है, किंतु इसमें प्रगति की असीम संभावना है।

वर्तमान बिलासपुर जिला प्राचीन साहित्य में उल्लेखित दक्षिण कौशल का एक अंग था। दिक्षण कौशल के इतिहास एवं पुरातत्व में इस क्षेत्र का उल्लेखनीय योगदान रहा है। प्राचीन इतिहास से संबंधि ति सामग्री शिलालेख सिक्के जितने अधिक मात्रा में इस जिले से प्राप्त हुये उतने छत्तीसगढ़ के अन्य किसी भी जिले से नहीं हुए हैं। इसी क्षेत्र से भारत वर्ष की सबसे प्राचीन अभिलेखित विष्णु प्रतिमा भी प्राप्त हुई है। धार्मिक समन्वय की दृष्टि से इस क्षेत्र का विशेष महत्व रहा है। क्योंकि इस भूभाग में बौद्ध, जैन, हिन्दू, धर्मों का एक साथ विकास होता रहा। विदेशी व्यापार की दृष्टि से भी क्षेत्र का काफी महत्व था, क्योंकि प्राचीन रोमन, चीन एवं कुषाण सिक्कों का इस जिले से मिलना तत्कालीन विदेशी व्यापार की ओर इंगित करता है। जिले से सातवाहन कालीन, शरभपुरीय, सोमवंश एवं कलचुरी कालीन शिलालेख ताम्रलेख, स्थापत्य कला खंड इतने अधिक मात्रा में जिले से उपलब्ध हुए हैं जो इस सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ में विशेष स्थान प्रदान करते हैं यदि जिले को संपूर्ण छत्तीसगढ़ का केन्द्र बिन्दु भी कहा जाये तो अतिश्योक्ति न होगी। अ

मध्यप्रदेश के पूर्वी भाग में स्थित बिलासपुर जिला अक्षांश 21 41' और 23' 7' उत्तर तथा देशांतर 81' 12' और 83' 19' पूर्व में वर्तमान छत्तीसगढ़ के उत्तर मध्य में स्थित है। यह जिला उत्तर प. में

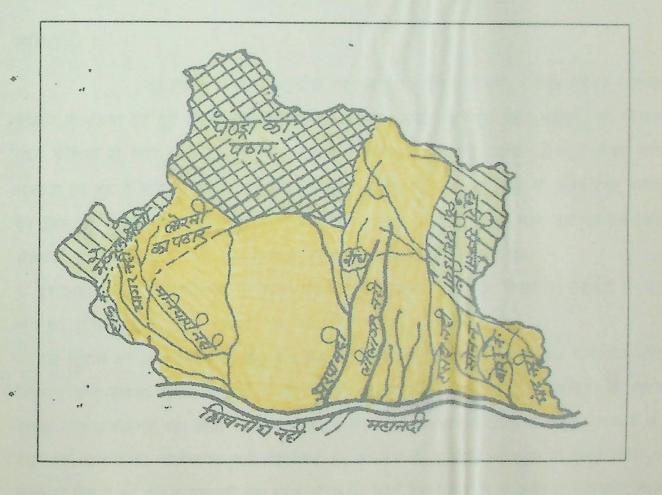
स्त्रोत :- (1) जिला गजेटियर

⁽²⁾ प्राचीन छत्तीसगढ़

⁽³⁾ स्मारिका बिलासपुर जिला 1956-81⁴

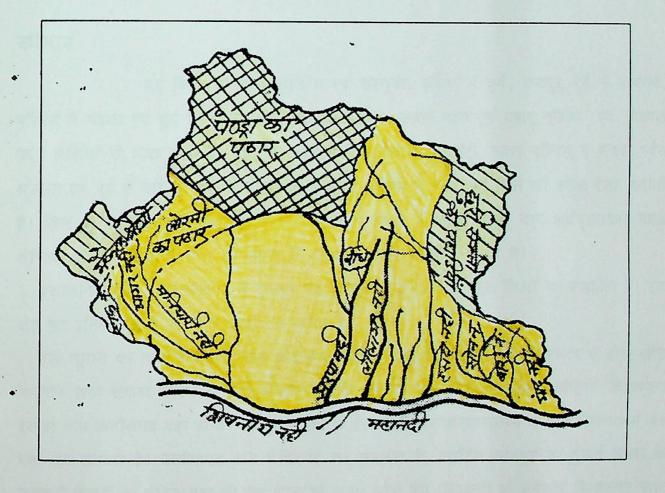
जिला बिलासपुर

भ-रचना



जिला बिलासपुर

भू-रचना



232.0 किमी लम्बा एवं उत्तर दक्षिण में 145 किमी चौड़ा है। जिले का कुल क्षेत्रफल 19,905 वर्ग किमी है। मध्यप्रदेश के विस्तार की दृष्टि से बड़े जिलों में इसका चौथा स्थान है तथा मध्यप्रदेश के औसत जिलों की अपेक्षा आकार में दुगुना है। वर्ष 1972 की जनगणना प्रतिवेदन के अनुसार यह मध्यप्रदेश का तीसरा आ़बादी पूर्ण जिला तथा 1981 के जनगणना के अनुसार इसका स्थान दूसरा था। वर्तमान जनगणना के अनुसार इसकी कुल जनसंख्या 29,53,383 है। 1991 में जिले की जनसंख्या 3793556 दर्ज की गई है।

सीमाएं :

यह जिला उत्तर में शहडोल एवं सरगुजा, दक्षिण में दुर्ग, रायपुर पूर्व में रायगढ़, पश्चिम में मंडला एवं दुर्ग जिलों से सीमांकित है। इसका सबसे महत्वपूर्ण पहलू निदयों एवं विशाल पर्वत श्रेणियों से घिरा होना है। यह जिला दिक्षण में शिवनाथ, महानदी, उत्तर पश्चिम में मेकल पर्वत श्रृंखला एवं पूर्व में मांड निदयों से सीमांकित हैं उत्तर पश्चिम में हाफ नदी जिले की सीमा रेखा बनाती है। जिले के मैदानी भाग, दिक्षण में महानदी घाटी में स्थित हैं किंतु उत्तरी भाग अर्धवृत्ताकार पर्वत श्रेणियों से घिरा हुआ है तथा आवागमन के साधन के रूप में कार्य करता है।

प्रशासनिक दृष्टि से छत्तीसगढ़ में रायपुर एवं बिलासपुर संभागों के सात जिलों का समावेश है। इस क्षेत्र का इतिहास ई.पू. 6 वीं शताब्दी तक जाता है।²

इस भूभाग का नाम छत्तीसगढ़ कब और क्यों पड़ा। किसी लिखित साक्ष्य के अभाव में ठीक-ठीक अनुमान लगा सकना कठिन है ऐसा अनुमान है कि रतनपुर एवं रायपुर के छत्तीसगढ़ियों के कारण इसका नाम छत्तीसगढ़ पड़ा होगा। रायपुर शाखा के हैहयवंशी राजाकल्याणसाय के लेखा पुस्तक में 48 गढ़ों का उल्लेख है। छत्तीसगढ़ नाम चेदिसगढ़ का अपभ्रंश है, क्योंकि रतनपुर या तुमान शखा के कलचुरी त्रिपुरी का चेदिस वंश की एक शाख से संबंध था। एक किवदन्ती के अनुसार बिलासपुर नगर का नाम बिलासा केवटिन के नाम पर पड़ा क्योंकि इसकी स्थापना 400 वर्ष पूर्व उसी के द्वारा की गयी थी।

स्त्रोत :- स्मारिका बिलासपुर जिला

२, ३.संदर्भ छत्तीसगढ़, देशबन्धु प्रकाशन

(स) प्राकृतिक रचना एवं जलवायु

यह जिला आंशिक रूप से छत्तीसगढ़ के मैदानी भूभाग उत्तरीय पठार एवं मेकल की पहाड़ियों पर स्थित है। उत्तर-पश्चिम की पहाड़ियां सतपुड़ा की मेकल पर्वत की श्रेणियों से संबंधि ति है, जबिक उत्तर पूर्व एवं उत्तर का भाग छोटा नागपुर पठार से संबंधित है।

मेकल पर्वत श्रेणी :

यह पर्वत श्रेणी सतपुड़ा की पूर्वी पर्वत श्रेणी है इस पर्वत श्रेणी का विन्यास उत्तर पूर्व से दिक्षण पूर्व की ओर है इससे निकलने वाली निदयों के श्रोत उत्तर पश्चिम दिशा पर स्थित है। यह पर्वत श्रेणी जिले के बम्हनगढ़ नामक स्थान पर प्रवेश करती हुई अमरकंटक के दिक्षण शिखा तक चली गई है। जो कि दिक्षण पश्चिम में हाफ नाला के उद्गम स्थल तक फैली हुई है। इनका विस्तार दुर्ग, बालाघाट जिलों तक है जहां पर यह चिल्फी घाट पर्वत श्रेणी के नाम से जानी जाती है। भारत वर्ष की प्रमुख दो निदयां नर्मदा एवं सोन इसी पर्वत श्रेणी के अमरकंटक नामक स्थान से निकली है। इस पर्वत श्रेणी की प्रमुख पहाड़िया रझकी 3405 फीट, बीजा पहाड़ 3299 फीट, धोबे की पहाड़ी 3215 फीट, महोबा डोंगर 2023 फीट चंदेली पहाड़ 2695 फीट है।²

उत्तर पूर्व पठार :

जिले का उत्तर पूर्वी भाग छोटा नागपुर पठार से घिरा हुआ है। छोटा नागपुर पठार से संबंधित प्रमुख पर्वत श्रेणियां पश्चिम में विभक्त होकर जिले के दक्षिणी किनारे तक फैली हुई हैं। ये पर्वत श्रेणिया पूर्व से पश्चिम की ओर पंक्तिबद्ध रूप में फैली हुई है। तथा मेकल पर्वत श्रृंखला से जिले के खोडरी एवं खोंगसरा नामक स्थानों के मध्य एक दूसरे से मिलती है। ये पर्वत श्रेणियां महानदी एवं शिवनाथ नदी घाटियों के लिये अर्धवृत्ताकार रूप देती हैं। इस पठार की प्रमुख पहाड़ियां पोंखरा पहाड़ 3215 फीट, खरंगली 3356 फीट, करेला 3252 फीट, महादेव पहाड़ 3244 फीट, चतुरगढ़ 3240 फीट ऊंची है।³

स्त्रोत :- (1) जिला गजेटियर बिलासपुर

⁽²⁾ संदर्भ छत्तीसगढ़, देशबन्धु प्रकाशन

⁽³⁾ स्मारिका बिलासपुर जिला

महानदी शिवनाथ घाटी :

जिले का दक्षिणी भाग जो कि पश्चिमी से पूर्व की ओर लगभग 200 किमी लम्बा एवं उत्तर से दक्षिण की ओर लगभग 80 किलोमीटर चौड़ा समतल मैदानी भाग छत्तीसगढ़ मैदानी भाग का एक हिस्सा है। इसकी ऊंचाई समुद्र तल से 200 से 300 मीटर के मध्य है ये दोनों निदयां जिले की दिक्षणी सीमा रेखा बनाती हुई बहती है। यह मैदानी भाग उत्तर पश्चिम में पंडरिया, लोरमी तक उत्तर में बेलगहना कोरबा एवं पोंड़ी तक विस्तृत है। इस क्षेत्र में पर्वत श्रृंखला का विस्तार लगातार न होकर पृथक-पृथक पहाड़ियों के रूप में है। चांपा से 16 किमी की दूरी पर स्थित पुरेना, भवरखोल, कुमार पहाड़ आदि पहाड़ियां अपर हसदो घाटी को मैदानी भाग से अलग करती है।

नदियां :

जिले की सीमा रेखा पर बहने वाली प्रमुख निदयां महानदी एवं शिवनाथ है। जो कि जिले के दक्षिण में बहती है। शिवनाथ की सहायक निदयां हाफ, टेसुआ, आगर, मोफर, मिनहारी, अरपा, खारुन, एवं लीलागर है इसमें से प्रथम छैः मैकल पर्वत श्रेणियों से निकलती है। महानदी की सहायक निदयां शिवनाथ, हसदो, बोरई एवं मांड है। हसदो, अरपा, लीलागर बिलासपुर जिले की प्रमुख निदया हैं जो कि उत्तर से बहकर शिवनाथ के बायें पार्श्व में मिलती है। पहाड़ी क्षेत्रों में इन निदयों का पानी छोटे-छोटे नालों से होकर बहता है। अधिकतर निदयों की धारायें सकरी हैं एवं इनके किनारे ऊंचे हैं अधिकांश निदयां वर्षाकालीन है जो कि मार्च के पश्चात पूर्णतया सूख जाती हैं। महानदी, शिवनाथ, हसदो, मांड निरंतर बहने वाली प्रमुख निदयां हैं।

महानदी:

पुराणों में चित्रोत्पल्ला के नाम से उल्लेखित महानदी रायपुर जिले के नगरीय के पूर्व में सिहावा पर्वत से निकलकर कुछ दूरी तक पश्चिम की ओर बहती हुई अचानक उत्तर की ओर मुड़ जाती है तथा बिलासपुर जिले की सीमा रेखा खरगहनी गांव से बिलासपुर जिले में प्रवेश करती है। इसी स्थान पर शिवनाथ नदी का भी संगम है। यह नदी बिलासपुर जिले में 915 किमी बहती हुई रायगढ़ जिले से बहते हुए उड़ीसा राज्य में प्रवेश करती है। बिलासपुर जिले का प्रमुख धार्मिक स्थान शिवरीनारायण THE PARTY OF THE P

इसी नदी पर अवस्थित है। इस नदी का उल्लेख महाभारत एवं वृहद संहिता में भी प्राप्त होता है। रिवनाथ :

यह नदी दुर्ग जिले के दक्षिण-पश्चिम पर्वत श्रेणियों से निकलकर बिलासपुर रायपुर की 67 किमी सीमा बनाती हुई बैतलपुर के समीप बिलासपुर जिले में प्रवेश करती है तथा खरगहनी के समीप महानदी में समाहित हो जाती है।

हसदो :

पद्म पुराण में हस्तीसोमा नाम से उल्लेखित यह नदी नागपुर पठार से निकलकर बिलासपुर जिले के मध्य से बहती हुई शिवरीनारायण के समीप महानदी में मिल जाती है। इस नदी के किनारे जिले के प्रसिद्ध औद्योगिक नगर कोरबा एवं चांपा स्थित है। इस पर पुल बांध भी बनाया गया है।

मनिहारी:

मेकल पर्वत से निकलकर दक्षिण पूर्व में बहती हुई शिवनाथ नदी में मिल जाती है। इसकी प्रमुख सहायक नदियां आगर एवं टेसुआ है। इसी नदी पर खुड़िया जलाशय बना है। सिंचाई के लिये निकास होती है।

अरपा :

बिलासपुर नगर के मध्य से बहने वाली यह नदी पेण्ड्रा के भूभाग से निकलकर मानिकचौरी के पास शिवनाथ में मिल जाती है। इसकी सहायक नदी खारून है। खारून नदी पर सिंचाई हेतु खारंग जलाशय बना हुआ है।

माण्ड :

यह नदी मेनपाट नामक पठार से निकलकर रायगढ़ जिले में बहती हुई बिलासपुर के चन्द्रपुर नामक स्थान के समीप महानदी में मिल जाती है।

सोन :

रामायण, भगवत पुराण, वृहद संहिता में उल्लेखित एकमात्र उत्तर वाहनी सोन नदी बिलासपुर जिले के पेन्ड्रा एवं केन्दा के मध्य में स्थित सोनमुड़ा (सोनभद्र) नामक स्थान से निकलकर बिलासपुर शहडोल एवं सीधी जिले से बहती हुई बिहार में गंगा में मिल जाती है अमरकोष में इसे हिरण्यवाह कहा गया है। हर्ष चरित्र विधान चिंतामुणी में भी इसका उल्लेख है।

(द) कृषि एवं सिंचाई

जिले की अर्थ व्यवस्था का मुख्य आयार मिष है तथा कृषि उत्पादन में वृद्धि के बिना जिले में सुख समृद्धि लाना संभव नहीं। विति किस्मों के उन्नत तथा विपुल उत्पादन वाली किस्मों के प्रसार, उन्नत कृषि प्रणाली के प्रयोग, रासायनिक खाद्य, कीटनाशक औषधियों के प्रयोग में आशातीत वृद्धि हुई है। सिंचाई का क्षेत्र भी बढ़ा है तथा साग सब्जी, फलोद्यान विकास कार्यक्रम में प्रगति आई है।

बिलासपुर जिला मध्यप्रदेश के खाद्यान्न, दलहन एवं साग सब्जी फसलों की उत्पादन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। धान फसल के क्षेत्र एवं उत्पादन के रूप में इस जिले का प्रदेश में रायपुर जिले के बाद दूसरा स्थान है जिले में 810000 हेक्टर क्षेत्र में खेती की जाती है जो जिले के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 41 प्रतिशत है। जिले का कुल सिंचित क्षेत्र 1,45,849 हेक्टर है, जो जिले के कुल कृषि के अंतर्गत क्षेत्र का लगभग 18 प्रतिशत है।

जिले की मुख्य फसल धान लगभग 6,56,840 हेक्टर में बोई जाती है। जो कुल खरीफ फसलों के क्षेत्र का लगभग 88 प्रतिशत है। अन्य खरीफ फसलों जैसे कोदो कुटकी 31300 हेक्टर, मक्का 112000 है, अरहर 6100 हेक्टर, उड़द 10,800, कुलबी 9700 हेक्टर मुंगफली 3300 हेक्टर, तिल रामतिल 4600, हेक्टर, एवं अन्य खरीफ फसलों 15830 में ली जाती है। इस तरह खरीफ फसलों का कुल क्षेत्र 7,48,830 हेक्टर है। रबी फसलों में तिवरा 1,23,787 हेक्टर, चना 41500 हेक्टर अलसी 33890 हेक्टर गेंहूं 26200 हेक्टर में लिया जाता है। जिले में फसलों का क्षेत्र 1,94,742 हेक्टर है।

जिले की मुख्य फसल धान की खेती, वर्ष 55-56 में 693000 हेक्टर में की जाती थी, विकास की

प्रक्रिया के फ्लस्वरुप जबिक अन्य वर्ष 81-82 में 65,6840 हेक्टर में धान की कृषि की जाती है। गत वर्ष 25 वर्षों में धान के क्षेत्र में 58,840 हेक्टर का विस्तार हुआ। अत धन के क्षेत्र में 10 प्रतिशत वृद्धि हुई है। वर्ष 55-56 में चावल का प्रति हेक्टर उत्पादन में 40 प्रतिशत की वृद्धि हुई यह वृद्धि धान के विपुल उत्पादन किस्मों के फैलाव, रासायनिक खाद एवं पौध संरक्षण दवाइयों के उपयोग के एवं धान की खोती में उन्नत विधियों के अपनाने के कारण प्राप्त हुई।

जिले में विभिन्न फसलों के उत्पादन की संभावनाओं को दृष्टिगत रखते हुये सितंबर 73 से सघन कृषिं प्रसार एवं अनुसन्धान परियोजना विश्व बैंक की सहायता से चल रही है। इस योजना के अंतर्गत 600 से 800 कृषक परिवारों पर 1–1 ग्रामसेवक एवं 6 ग्रामसेवकों पर 1–1 कृषि विस्तार अधिकारी का प्रावधान किया गया है। अनुविभागीय स्तर पर एक-एक अनुविभागीय अधिकारी कृषि एवं विषयवस्तु विशेषज्ञों का प्रावधान किया गया है।

इस योजना के अंतर्गत बिलासपुर जिले को 2 कृषि इकाइयों में विभाजित कर जांजगीर में एक उप संचालक, कृषि का कार्यालय स्थापित किया गया है। ग्राम सेवकों एवं कृषकों विस्तार अधिकारियों को योजना के अंतर्गत प्रशिक्षण देने का भी प्रावधन रखा गया हैं इस योजनान्तर्गत जवाहरलाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय प्रक्षेत्र सरकंडा पर एक क्षेत्रीय अनुसन्धान केन्द्र की भी स्थापना की गई है। जहां विशेषज्ञों द्वारा विभिन्न फसलों के उत्पादन बढ़ाने के लिये अनुसन्धान किये जाते हैं और उनके द्वारा उन्नत विधि ायों की सिफारिशों का प्रसार कृषकों में किया जाता है।

प्रम्ख फसलों का उत्पादन

वर्ष	गेहूं.	चावल	ज्वार		मक्का	चना	तुअर
1992-93	16350	724168	909		16748	23357	6833
1993-94	19919	943714	1044	1	18971	24429	10792
1994-95	19927	1164446	668	, 1	11727	29219	7189
1995-96	17124	920985	923	1	16037	20929	6147

वर्ष

उड़द	अलसी	मूंगफली	तिल	सोयाबीन	गन्ना	
1992-93	2737	3589	5153	652	539	2538
1993-94	3081	4668	4694	714	1073	2024
1994-95	2492	5673	5007	581	2105	4274

वर्ष		चांवल	गे	ह्	ज्वा	र	मक्का	कोदो	चना
In Action	सिंचित	असिं चित	सिंचित	असिंचित	खारीब	रबी			
1992-93	1393	932	1382	671	812	-	1410	322	580
1993-94	1796	1233	1358	700	918	-	1594	310	586
1994-95	1906	1588	1392	842	686	-	1802	252	663
1995-96	1713	1220	1426	723	825	-	1351	272	520

वर्ष	तुअर	मूंगफली	अलसी	तिल	सोयाबीन	राई
1992-93	1185	1007	193	160	774	637
1993-94	1462	1083	217	200	1174	500
1994-95	1066	978	213	167	926	475

स्त्रोत: - संचालक, आर्थिक एवं सांटिब्यकी, म.प्र.

बिलासपुर जिले का सामान्य परिचय

भौगोलिक क्षेत्रफल	-	19897 वर्ग कि.मी.
तहसील	-	16
आबांद ग्राम	-	3501
ग्राम पंचायत	-	1799
जनपद पंचायत	-	25
राजस्व निरीक्षक मंडल	-	32
पटवारी हल्का	-	530
आरक्षी केन्द्र	-	42
कुल जनसंख्या	-	3793566
दस वर्षीय जनसंख्या वृद्धि	-	28.44 प्रतिशत
स्त्री पुरुष अनुपात	-	978
अनुसूचित जाति जनसंख्या	-	87,221
कुल जनसंख्या से प्रतिशत	_	18.11 प्रतिशत
अनुसूचित जनजाति	_	8737414
कुल जनसंख्या से प्रतिशत	-	23.03
कुल साक्षरों की संख्या	-	1377634
साक्षरता का प्रतिशत	-	36.31
विद्युतीकृत ग्रामों की संख्या	-	3280
सिनेमा	-	17
पेयजल सुविध युक्त	-	3475
प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र	-	113
परिवार कल्याण केन्द्र	-	29



0 GEOLOGY

ति अत्यधिक महता है।

कड़ी तथा वन उपज की

क्या जिले में काफी है।

स किये गये हैं। साथ

ग एवं विकास पर भी

तर्गत हैं, जो कि कुल
लिये जिले को क्रमशः
। पच्चीस वर्ष पूर्व भी
था अन्य वनोत्पाद के

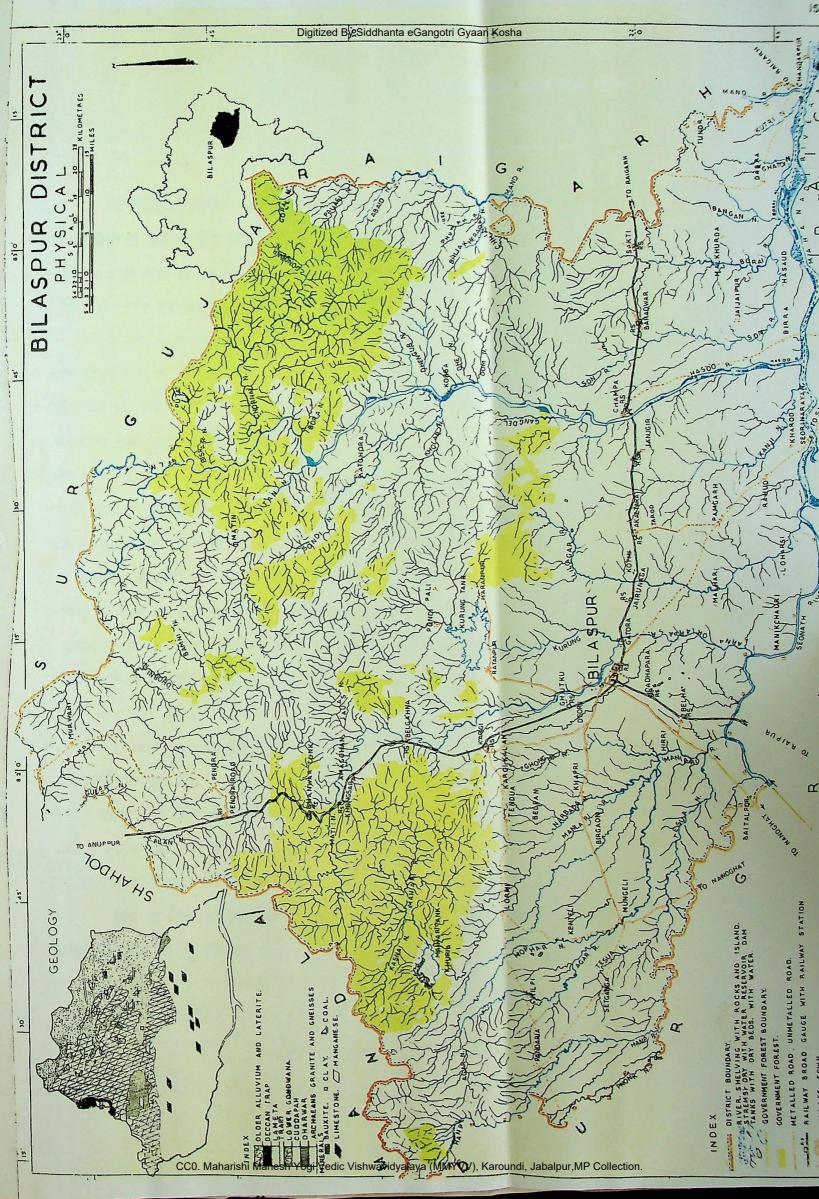
गरखाव व उचित दोहन

रहा है। किया जा रहा है। ने का कार्य किया जा

मरने की योजना

को काटकर उनमें

डलों के अंतर्गत 408 1956 में बिलासपुर Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha



Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection. वन

सन्तुलित पर्यावरण तथा अर्थ व्यवस्था की दृष्टि से वनों की अत्यधिक महत्ता है। जिले का 40 प्रतिशत से अधिक क्षेत्र वनाच्छादित है। जो कि बहुमूल्य इमारती लकड़ी तथा वन उपज की पूर्ति करता है। साथ ही वनों से आदिवासियों का गहरा संबंध है जिनकी जनसंख्या जिले में काफी है। वृक्षारोपण, वनों के दोहन एवं वन उपज के विक्रय हेतु शासन द्वारा विशेष प्रयास किये गये हैं। साथ ही जिले में अचानकमार अभ्यारण्य की स्थापना कर वन्य प्राणियों के संरक्षण एवं विकास पर भी समुचित ध्यान दिया गया है जिले का 7974.492 वर्ग किलोमीटर भूक्षेत्र वनान्तर्गत हैं, जो कि कुल भौगोलिक क्षेत्र का 40 प्रतिशत है। वनों के वैज्ञानिक और प्रशासनिक प्रबंध के लिये जिले को क्रमशः विलासपुर वनमंडल तथा उत्तर बिलासपुर वनमंडलों में विभाजित किया गया है। पच्चीस वर्ष पूर्व भी उक्त वन क्षेत्र दो क्षेत्रीय वन मंडलों में बंटा हुआ था किंतु इमारती लकड़ी तथा अन्य वनोत्पाद के राष्ट्रीयकरण के साथ ही कई विकास कार्य प्रारंभ होते गये। जिले में वनों के रखरखाव व उचित दोहन के निम्नांकित वनमंडलों का गठन किया गया जिनकी कार्यप्रणाली निम्नानुसार है–

- 1. उत्पादन वनमंडल के वनों ्क्रे विदोहन कार्य हेतु गठित किया गया।
- 2. वृक्षारोपण वनमंडल के द्वारा वनों का विकास वृक्षारोपण करके किया जा रहा है।
- 3. प्रबंध वनमंडल के द्वारा वर्ष 1976 के पहले के अतिक्रमणों का व्यवस्थापन कार्य किया जा रहा है।
- 4. सामाजिक वानिकी वनमंडल द्वारा गैर कृषि भूमि का सर्वेक्षण करके वन लगाने का कार्य किया जा रहा है।
- 5. गहन प्रबंध वन मंडल द्वारा वैज्ञानिक ढंग से बनाने का दोहन एवं विकास करने की योजना क्रियान्वित की जा रही है।
- 6. विक्रय वन मंडल द्वारा इमारती लकड़ी के विक्रय का कार्य किया जा रहा है।
- 7. वन विकास निगम (कोटा-पंडरिया परियोजना) द्वारा निम्न स्तर के जंगलों को काटकर उनमें बहुमूल्य सागौन के वृक्ष लगाये जा रहे है।

वनों के विदोहन तथा संवर्धन हेतु वर्ष 1956 में विभिन्न वनमंडलों के अंतर्गत 408 लोगों का अमला कार्यरत था जो कि वर्ष 1981 में बढ़कर 1286 हो गया है। वर्ष 1956 में बिलासपुर

स्त्रोत: - वनमंडलाधिकारी बिलासपुर

जिले के कुल वन क्षेत्र से 797086 रुपये वन रास्व के रुप में शासन को प्राप्त हुये। वनों का विदोहन तात्कालीन व्यवस्था के अनुसार ठेकेदारों द्वारा किया जाता था। धीरे धीरे शासन द्वारा वनोपज का राष्ट्रीयकरण करके विदोहन पद्धति में स्धार लाया गया। वर्ष 1965 में तेंद्रपत्ता का राष्ट्रीयकरण किया गया और शासन को इसमें अप्रायातित सफलता मिली। इसी वर्ष बिलासप्र जिले को वन राजस्व प्राप्ति बढकर प्रतिवर्ष 4941387 रुपये हो गई इसी से प्रेरित होकर शासन ने गौण वनोपज जैसे गोंद, हर्रा लाख आदि का भी राष्ट्रीयकरण 1969 में किया और इस तरह प्नः राजस्व में वृद्धि हुई। वर्ष 1973 एवं वर्ष 1975 में सालबीज इमारती लकड़ी एवं बांस का राष्ट्रीयकरण किया गया जिससे एक और वनों के ठेके की पद्धति समाप्त हो गई तथा वनों की सुरक्षा अधिक बढ़ गई। साथ ही साथ वनों का वैननिक पद्धति से विदोहन प्रारंभ हुआ। वर्ष 1981 में वन राजस्व से शासन को 37297944 रु. की आय हुई। वृक्षारोपण पिछले पच्चीस वर्षों के दौरान बहुमूल्य प्रजाति का वृक्षारोपण 12560.610 हेक्टर औद्योगिक वृक्षारोपण 773 हेक्टेयर मिश्रित वृक्षारोपण 143 334-हेक्टर हरिजन बाहुल्य क्षेत्र में वृक्षारोण 60 हेक्टेयर भूमि में किया गया। इसके अतिरिक्त सड़क किनारे वृक्षारोपण 658 कि.मी. तथा नहरों के किनारे 156 किमी. दूरी तक किया गया वर्तमान में प्रतिवर्ष 2000 हेक्टेयर भूमि में विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत वृक्षारोपण का कार्य चेल रहा है। ग्रामीण की निस्तार आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जलाऊ लकड़ी इमारती लकड़ी बांस आदि की मात्रा वनरोपण के अन्तर्गत बढ़ायी जा रही है। निस्तार व्यवस्था अलोचय अवधि में ग्रामीणों के निस्तार व चराई सुविधा के लिये प्रयास किये गये ग्रामीणों को बांस बल्ली व जलाऊ लकड़ी का प्रदाय वन विभाग द्वारा किया जा रहा हैं इसके अतिरिक्त चार, तेंदू, महुआ, गुल्ली कांटेदार झाड़ियां कंद मूल तथा अन्य खाने योग्य फल फूल को भी निस्तार सुविधा ग्रामीणें को दी जा रही है। जिले में 24 तालाब बनाये गये हैं साथ ही चिकित्सा सुविधा देने के लिये अस्पताल भी अचानकमार में खोला गया है।

वर्ष 1981 में आवास योजना के अन्तर्गत लगभग 500 आवासहीनों को 80 हजार बल्ली व 2.25 लाख बांस प्रदाय किये गये, वन विकास कार्यों के साथ साथ ग्रामीणों एवं वन विभाग के कर्मचारियों के लिये सुख सुविधा का पूरा पूरा ख्याल रखा गया निवास गृह, श्रम कुटीर, निरीक्षण कुटीर विश्रामगृह आदि भवनों का विस्तार किया गया वर्ष 1956 में ऐसे भवनों की संख्या 153 थी जो वर्ष 981 में बढ़कर 471

हो गई।

90 के दशक में अंचल के वनों को विक्षित करने के प्रयास नये सिरे से प्रारंभ किये गये। अकलतरा पेण्ड्रा, चांपा, कानन पेंडारी, आदि क्षेत्रों में वृक्ष लाये गये। कुछ स्थानों पर पर्यटन स्थल बनाने की योजना शुरु हुई। इसी दौरान अचानकमार अभ्यारण का निर्माण किया गया। अभ्यारण विकास के साथ साथ यहां वन्य प्राणियों की संख्या भी बढ़ी। 1980 की गणना के अनुसार यहां 19 तेंदुए, 2 भालू, 29 गौर, 330 चीतल, 370 सांभर, सहित अन्य पशु पक्षी दर्ज किये गये। वन विकास के लिये विश्ववानिकी परियोजना की शुरुआत की गई। विश्व बैंक से इस परियोजना के लिये मिली धन राशि से वन विकास का कार्यक्रम चल रहा है। वन प्रबंधन के क्षेत्र में सबसे ज्यादा दिक्कत सालबोरर को लेकर आई है। साल वन बोरर (कीट) का शिकार हो गये हैं जिससे करोड़ों का नुकसान हुआ है। अब बोरर से निपटने की योजनायें चल रही है। इस दौरान वनों की रक्षा के लिये सुप्रीम कोर्ट ने कटाई एवं परिवहन पर रोक भी लगा दी है।

वर्षा तथा जलवायु

भौगोलिक स्थिति

जिला- तहसील	अक्षांश	दे शांश	समुद्र तल से ऊंचाई
			(मीटर में)
जिला- बिलासुपर	21'.36' से 23'.07'उत्तर	81.12'' से 83. 40'' पूर्व	262
तहसील- बिलासपुर	92.09''	82.40''	262
जांजगीर-	22.08''	82.34''	262
कटघोरा	22.30''	83.33''	327
मुंगेली	21.40''	81.42''	292
सक्ती	22.01''	82.48''	231

स्त्रोत :- जनगणना पुस्तिका 1981

बिलासपुर जिले में औसत वर्षा

तहसील का नाम	1992-93	1993-94	1994-95	1995-96	1996-97
बिलासपुर	1379.6	768.6	1041.2	1076.6	1102.6
बिल्हा	-	-		_	_
तखतपुर	980.0	575.7	782.2	704.4	871.8
मुगेली	943.7	603.6	1027.1	799.0	1168.1
लोरमी	1024.2	558.5	714.0	827.0	858.0
पंडरिया	778.4	507.5	835.5	853.1	1099.6
जांजगीर	955.3	978.2	1262.8	1040.2	1489.9
वांपा	963.0	841.0	927.0	768.0	1052.0
सक्ती	1274.0	989.5	1052.7	1238.2	1352.5
पामगढ्	1304.8	1190.2	960.8	818.0	104.0
डभरा	1321.2	1280.6	1165.3	944.0	1027.0
कोटा	13 40 .8	741.0	840.0	1240.3	1320.4
गौरेला	1356.6	706.4	1088.2	1066.4	1226.3
कटघोरा	1273.6	732.6	1053.6	1281.4	1309.8
कोरबा	1234.2	944.0	1253.0	1540.8	_
मालखरौदा	<u>-</u>	The second	-	-	1352.6
				औस	त वर्षाः कि.मी.

स्त्रोतः- अधीक्षक भू-अभिलेख बिलासपुर

सिंचाई :

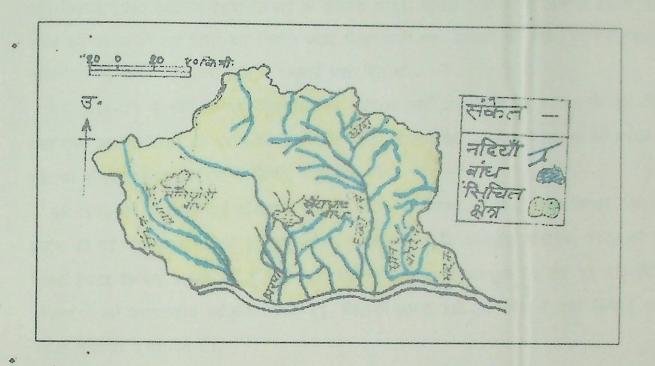
प्रकृति ने 7710 वर्ग मील क्षेत्र में इस जिले के दक्षिण में शिवनाथ एवं महानदी, पश्चिम से हाफ नदी एवं पूर्व में मांड नदी में घेर दिया है। जिले की मुख्य नदियां मिनयारी, अरपा, आगर, खारंग तथा हसदेव हैं जो उत्तर दिशा से निकलकर जिले के मध्य में बहती हुई दक्षिण में शिवनाथ एवं महानदी में मिलती है। ये नदियां जिले के लिये वरदान हैं। वर्ष 1902 में प्रथम भारतीय सिंचाई आयोग की सिफारिशों पर मध्यप्रदेश के पुनर्गठन के पूर्व दो मध्यम (खारंग एवं खुड़िया) एवं 11 लघु सिंचाई योजनायें निर्मित की गई थी जिससे 69490 हेक्टेयर भू-क्षेत्र में सिंचाई प्रस्तावित थी। इस प्रकार मध्यप्रदेश में पुनर्गठन के समय जिले में कुल सिंचाई क्षमता 69486 हेक्टेयर थी।

सिंचाई की महत्ता को ध्यान में रखते हुये द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल (1956-61) के अंत तक 9 नई सिंचाई योजनायें 58.09 लाख रु. की लागत से पूर्ण की गई जिससे 6186 हेक्टेयर अतिरिक्त सिंचाई क्षमता प्राप्त की गई। तीसरी पंचवर्षीय योजना अविध में (1961-66) 34 लघु सिंचाई योजनायें 59.34 लाख रु. की लागत से पूर्ण की गई तथा 8615 हेक्टेयर भू-क्षेत्र में सिंचाई क्षमता का विकास हुआ। चतुर्थ पंचवर्षीय योजनाकाल 19966-74 में 122.91 लाख रु. की लागत से 16 लघु सिंचाई योजनायें निर्मित हुई, जिससे 3563 हेक्टेयर में सिंचाई सुविधा प्रदान की गई। पंचवर्षीय योजनाकाल का प्रथम वर्ष 1974 दुर्भिक्ष का वर्ष रहा। सूखे की स्थिति निर्मित हो जाने से शासन द्वारा राहत कार्य प्रारंभ किये गये। राहत कार्यों के अंतर्गत श्रमिकों को रोजगार के अवसर दिये गये। इन योजनाओं में से 100 योजनायें 26.89 लाख लागत की थी। इन ''टार बांध'' योजनाओं की सिंचाई क्षमता 2580 हेक्टर थी।

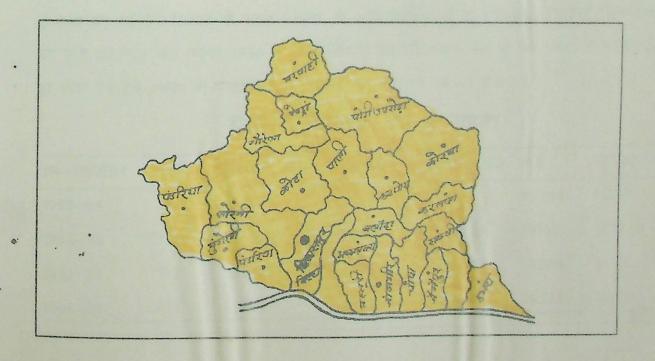
वर्ष 1976-77 में अरपा नदी पर बिलासपुर व्यपवर्तन मध्यम योजना की स्वीकृति प्राप्त हुई। इसकी लागत 95.20 लाख रुपये तथा सिंचाई क्षमता 2712 हेक्टेयर है। इसका निर्माण कार्य वर्ष 1977 में प्रारंभ किया गया। वर्ष 1977-78 में आदिवासी उपयोजना के अंतर्गत गौरेला एवं कटघोरा उप योजना क्षेत्र बताये गये जिनमें 17 लघु सिंचाई योजनायें स्वीकृत की गई। जिसकी कुल लागत 302 लाख रुपये तथा सिंचाई क्षमता 15558 हेक्टेयर है। जिले की मुंगेली, बिलासपुर, सक्ती एवं जांजगीर के गैर आदिवासी क्षेत्र में सिंचाई योजनायें प्रारंभ की गई। मध्यम सिंचाई योजना के अंतर्गत घोंघा सिंचाई

जिला बिलासपुर

सिंचाई के साधन

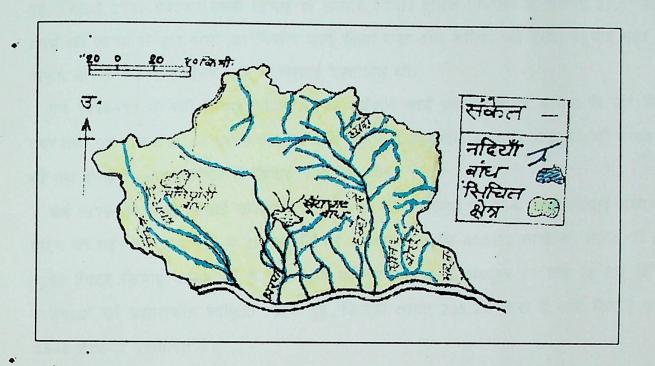


बिलासपुर जिले का प्रशासनिक विभाजन

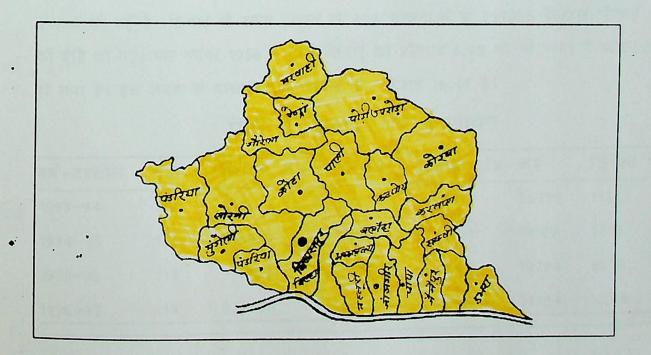


जिला बिलासपुर

सिंचाई के साधन



बिलासपुर जिले का प्रशासनिक विभाजन



योजना 201 लाख रुपये की लागत से प्रारंभ की गई इसमें 7690 हेक्टेयर सिंचाई क्षमता बढ़ी। इसके साथ साथ गैर आदिवासी क्षेत्र में 67.07 लाख रु. की लागत से 25 लघु सिंचाई योजनायें प्रारंभ की गई, जिससे 2780 हेक्टेयर रकबा सिंचाई के अंतर्गत आया। दुर्भिक्ष निवारण के अंतर्गत 37.01 लाख रुपये की लागत से टार बांघों का निर्माण कार्य किया गया तथा श्रमिकों को राहत पहुंचाई गई। इन योजनाओं से 11530 हेक्टेयर भूमि में सिंचाई प्रस्तावित थी।

वर्ष 1978-79 में नयी सिंचाई योजनाओं का सर्वेक्षण कार्य प्राथमिकता के आधार पर पूर्ण किया गया तथा 21 योजनाओं को प्रशासकीय स्वीकृति मिली। ये योजनायें 452.91 लाख रु. की लागत की थी तथ इनसे 10457 हेक्टेयर में सिंचाई प्रस्तावित थी।

वर्ष 1979-80 में दो सिंचाई योजनायें 1958 लाख रु. की लागत एवं 314 हेक्टर सिंचाई क्षमता की प्रारंभ की गई। वर्ष 1980-81 में 20 लघु सिंचाई योजनायें जो कि 495.32 लाख रु. लागत की तथा 7290 हेक्टर सिंचाई क्षमता की है प्रारंभ की गई। वर्ष 1981 में अक्टूबर 81 तक 12 लघु सिंचाई योजनाओं को प्रशासकीय स्वीकृति प्राप्त हुई, जिसकी लागत 255.24 लाख है तथा सिंचाई क्षमता 4548 हेक्टेयर प्रस्तावित है।

जिले में हसदेव नदी पर निर्मित हसदेव बराज से 40486 हेक्टेयर भूमि में सिंचाई की जा रही है। एक नवंबर 1981 तक समस्त शासकीय सिंचाई योजनाओं से 1,36,721 हेक्टेयर भूमि में सिंचाई क्षमता उपलब्ध की गई है। सिंचाई के सतत प्रयत्नों से 424 योजनाओं से 677235 हैक्टेयर सिंचाई क्षमता की वृद्धि की गई। माह नवंबर 1956 में जिले सिंचाई का प्रतिशत 8.48 था जो 1981 में बढ़कर 16.70 हो गया है। इस क्षमता से वास्तविक में सिंचाई का प्रतिशत 16.47 है।

जिले में सिंचाई: क्षेत्र व साधन

वर्ष-तहसील	नहरें	सिंचित क्षेत्र	नलकूप	सिंचित क्षे	त्र कुएं	सिंचित क्षेत्र
1993-94	121	212147	2943	7611	35785	11387
1994-95	119	216999	3464	9361	19107	9617
1995-96	119	215197	3495	9507	19294	9378
1996-97	119	228094	4231	18764	19384	11066

वर्ष-तहसील	तालाब	सिंचित	अन्य स्त्रोत	समस्त स्त्रोतों	एक बार	सकल	शुद्ध सिंचित
विकास खंड	संख्या	क्षेत्र	से सिंचिंत	से शुद्ध सिं.	से अधिक	सिंचिंत	का शुद्ध
			क्षेत्र	क्षेत्र	सिंचिंत		बोया क्षेत्र
							से प्रतिशत
1993-94	15051	6405	5782	243332	12146	255478	29.30
1994-95	16216	8551	6724	250852	29263	280115	30.30
1995-96	16216	20686	6454	261472	11397	272869	31.52
1996-97	16337	14401	4545	268870	42596	311466	32.48

वर्ष-तहसील	तालाब	सिंचित	अन्य स्त्रोत	समस्त स्त्रोतों	एक बार	सकल	शुद्व सिंचित
विकास खंड	संख्या	क्षेत्र	से सिंचिंत	से शुद्ध सिं.	से अधिक	सिंचिंत	का शुद्ध
			क्षेत्र	क्षेत्र	सिंचिंत		बोया क्षेत्र
							से प्रतिशत
1993-94	15051	6405	5782	243332	12146	255478	29.30
1994-95	16216	8351	6724	250852	29263	280115	30.30
1995-96	16216	20686	6454	261472	11397	272869	3152
1996-97	16337	14401	4545	268870	42496	311466	72.34

स्त्रोत : जिला सांरियकी पुस्तिका 1997

उद्योग एवं खनिजः-

प्रचुर खनिज एवं वनसम्पदा के बावजूद वर्ष 1956 तक जिले में कोई महत्वपूर्ण औद्योगिक इकाइयां कार्यरत नहीं थीं। परम्परागत उद्योगों के अन्तर्गत जिले में केवल चावल मिल, दाल मिल, कोसा उद्योग, बांस उद्योग तथा चर्म उद्योग का प्रचलन था। वर्ष 1958 में बिलासपुर में उद्योग कार्यालय की स्थापना हुई तथा विस्तार अधिकारियों का अमला पदस्थ हुआ। परिणाम स्वरुप विकासखंड स्तरीय औद्योगिक विकास की योजनायें प्रारंभ हुई। प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित कर प्रशिक्षितों को रोजगार मुहैया कर पाना सहकारी समितियों का गठन एवं ऋण पर मशीनें उपलब्ध कराना आदि प्रमुख कार्य इस योजना के अंतर्गत चलाये जा रहे थे। वर्ष 1958 से 1965 तक विकास खंडों का पुराना स्वरुप विद्यमान था। इस अविध में विभिन्न इकाइयों को 272 लाख रुपये का ऋण प्रदान किया गया। इसके बाद के वर्षों में उद्यमियों को स्थापित कराने तथा नये उद्योगपितयों को बढ़ावा देने के लिये उद्योग विभाग की विभिन्न नीतियों को लागू किया गया। इसके तहत चुंगीकर, विद्युत अनुदान, विक्रयकर लागत पूजी अनुदान, ऋण अनुदान देकर नयी औद्योगिक इकाइयों की स्थापना व प्रानी इकाइयों को प्रोत्साहन दिया गया। जिससे नये-नये उद्योग खुलते गये तथा उनमें वेष्ठित पूंजी में वृद्धि हुई तथा जनशक्ति को रोजगार मिला। सन् १९५८ से १९७४ तक स्थापित ३६० उद्योगों में कुल वरिष्ठ पूंजी २. 18 लाख थी जिसमें 5.491 व्यक्ति रोजगार में लगे हुये थे। वर्ष 1974 से 75 में कुल 63 उद्योग स्थापित थे जिसमें 86.87 लाख की पंजी लगी हुई थी जिससे 157 व्यक्तियों को रोजगार मिला। वर्ष 1076-77 में 107 स्थापित उद्योगों में 50.41 लाख पूंजी लगी हुई थी वो वर्ष 1980-81 में 1366 स्थापित उद्योगों में 92.52 लाख हो गई। विक्रयकर अनुदान के रूप में वर्ष 1974-75 से वर्ष 1979-80 तक ५४ औद्योगिक इकाइयों को ३.१७ लाख रुपये वितरित किये गये।

यह जिला खनिज सम्पदा से परिपूर्ण है तथा यहां कोयला, बाक्साइट, डोलोमाइट, लाइम स्टोन तथा फायर क्ले आदि खनिज उपलब्ध है। जिले में वृहद, मध्यम तथा लघु उद्योगों की स्थापना पिछले दो दशकों में हुई है। कोयले का दोहन पूर्व में नेशनल कोल डेवलपमेंट कारपोरेशन द्वारा किया जाता था। इस परियोजना में अम्बिकापुर, बांकीमोगरा, छुराकछार आदि कोयला खाने आती थी। बाक्साइट पर आधरित वृहद श्रेणी उद्योग एल्यूमिनियम लिमिटेड कोरबा में कार्यरत है। इस परियोजना के लिये फुटका

पहाड़ एवं अमरकंटक से बाक्साइट निकालकर एल्युमिनियम बनाने का कार्य होता है। इस समय बालको द्वारा ई.सी. ग्रेड तथा कमर्शियल ग्रेड एल्यूमिनियम निर्माण किया जाता है। साथ ही साथ एल्यूमिनियम एक्सक्यूटेड मेटल का भी उत्पादन हो रहा है। अकलतरा विकासखंड में सीमेन्ट कारपोरेशन आफ इंडिया द्वारा 1200 टन सीमेंट प्रतिदिन उत्पादन करने की क्षमता का संयंत्र पोर्टलैंड सीमेन्ट बनाया जाता है। इसके अतिरिक्त रेमंड सीमेन्ट वर्क्स ने अकलतरा विकासखंड के अंतर्गत ही आरसमेटा ग्राम में सीमेन्ट संयंत्र लगाया है तथा सीमेन्ट उत्पादन जारी है जिले के हिर्री नाम स्थान से डोलोमाइट निकालकर भिलाइ इस्पात संयंत्र को पूर्ति की जा रही है। विकासखंड पाली में फायरक्ले का बहुत भंडार है जिसके दोहन के पश्चात इस पर आधारित उद्योग प्रारम्भ किया जा सकेगा।

मध्यम श्रेणी के उद्योगों के अंतर्गत जिले में बिलासपुर स्पीनिंग मिल, ऋषि गेसेज प्रा. लिमिटेड, एम. पी. एलाय एंड कास्टिंग तथा इण्डो बर्मा पेट्रोलियम कंपनी ऐसे उद्योग स्थापित हुये हैं।

लघु श्रेणी के अंतर्गत इस जिले में काफी औद्योगिक इकाइयां स्थापित हुई हैं लोहे पर आधारित उद्योगों से स्टील के फर्नीचर, रोलिंग शटर्स, इंजीनियरिंग वर्कशाप, गेट ग्रिल्स, लोहे की छड़ एगिल्स, चेनल्स बनाने तथा रिपेयरिंग वर्कशाप की लगभग 20 इकाइयां जिले में कार्य कर रही है। सीमेन्ट पर आधारित उद्योगों के अंतर्गत 4 इकाईयां, सीमेन्ट की 4 इकाइयां सीमेन्ट टब व गमले बनाती है। इसके अतिरिक्त हयूम पाइप व मोजेक टाइल्स बनाने के 2 कारखने भी यहां स्थापित है।

प्लास्टिक पर आधारित उद्योगों के अंतर्गत जिले में एक्रीलिक प्लास्टिक शीट बनाने का कारखाना स्थापित है। जो पूरे मध्यप्रदेश में दूसरे नंबर पर है।छत्तीसगढ़ प्लास्टिक इंडस्ट्रीज, सिया इंडस्ट्रीज, भारत प्लास्टिक इंडस्ट्रीज एवं अमरदीप प्लास्टिक इंडस्ट्रीज प्लास्टिक के विभिन्न उत्पादन में जुटी हुई हैं। जिले में इस प्रकार की कुल 8 इकाईयां प्लास्टिक पर आधारित है।

जिले के केमिकल उद्योग की शृंखला में मेसर्स केमिकल इण्डस्ट्रीज द्वारा फेरो बेन्डियम उत्पादन किया जा रहा है। इसके अलावा गुड़ाखु, दन्तमंजन, संगन्धित तेल, इत्र, अगरबित्तयां, औषधियां, साइन्टिफिक अंकेक्षण, केल्सियम साल्वेन्ट, मिनर, पेंट तथा वार्निश, सोडियम सिलीकेट डी आइल्डकेर आदि वस्तुओं का निर्माण हो रहा है। एल्यूमिनियम पर आधारित उद्योगों के अन्तर्गत 2 इकाईयां ए.सी.सी. एवं ए.सो. कन्डक्टर्स निर्माण कर रही है जिसका पूरा उत्पादन मध्यप्रदेश विद्युत मंडल एवं अन्य राज्यों के विद्युत

मंडलों को विक्रय किया जाता है। शाट्स एवं बाबिन बनाने की दो इकाईयां भी बिलासपुर में कार्यरत है। इसके अतिरिक्त नलीदार कोयला, सागौल सीमेन्ट, स्क्रू फायर ब्रिकेट कन्फेक्शनरी, साबुन, होजियरी तथा ग्रील के बनाने के उद्योग भी लगे हैं।

जिला उद्योग केन्द्र की स्थापनाः-

यर्ष 1978 में जिला उद्योग केन्द्र की स्थापना औद्योगिक एकाग्रता लाने हेतु जिले में हुई तथा शासन द्वारा नई औद्योगिक नीति अपनाई जाकर औद्योगिक विकास के नये आयाम खोजे गये। इसका उद्देश्य उद्योगों को एक ही छत के नीचे सुविधायें मुहैया कराने का रहा। स्थानीय साधनों का समुचित उपयोग बेरोजगारी की समाप्ति तथा शहरों की ओर ग्रामीण जनसंख्या के निरन्तर प्रवाह की प्रवृत्ति को रोकना है। जिला उद्योग केन्द्र का प्रभारी अधिकारी महाप्रबंधक है तथा तहसील स्तर पर इनके अधीनस्थ प्रबंधक है जो क्रमशः सूचना, विभागीय सुविधा, ग्रामीण-कुटीर उद्योग, हाथ करघा तथा रेशम से संबंधित कार्यों के प्रभारी हैं। उद्योगों को एक ही जगह भूमि, जल और विद्युत प्रदाय तथा यातायात, कच्चा माल वित्त सुविधायें आदि देने हेतु जिला उद्योग केन्द्र के द्वारा ही कार्य किया जाता है।

औद्योगिक संस्थान-प्रक्षेत्र का विस्तार :-

जिले में बिलासपुर नगर में सर्वप्रथम औद्योगिक संस्थान की स्थापना वर्ष 1961-62 में हुई। इस संस्थान की स्थापना 54.45 एकड़ भूमि क्षेत्र में की गई तथा इसमें 6 शेड तथा 17 प्लाट बनाये गये। बाद में 99.1 एकड़ भूमि औद्योगिक प्रक्षेत्र तिफरा में ली गई, जिससे अब 14 शेड निर्मित है। तथा उद्यमियों को उद्योग स्थापना हेतु सभी भू-खंड आबंटित किये जा चुके हैं। इसके पश्चात सिरगिट्टी में भी उद्योगों के लिये भी भुखंड आबंटित किये गये।

औद्योगिक प्रक्षेत्र चांपा वर्ष 1969-70 में विकसित हुआ तथा उसमें 54 प्लाट औद्योगिक इकाइयों की स्थापना हेतु निर्मितिकिये गये। औद्योगिक प्रक्षेत्र चांपा, कोरबा में 100 एकड़ भूमि वन विभाग द्वारा प्रक्षेत्र की गई है जिसमें 10 शेड बनाकर आबंटित किये गये। नये ओद्योगिक प्रक्षेत्र की स्थापना हेतु बिलासपुर नगर के पास ग्राम सिरगिटी, हरदीटोला बसिया एवं सिलपहरी की लगभा 1500 एकड़ भूमि अर्जित करना प्रस्तावित है।

परम्परागत कोसा उद्योग का विस्तार :-

जिले में कोसा उद्योग बहुत पुराना उद्योग है। कोसा कासा-कंचन पर आधारित उद्योग के लिये चांपा विख्यात रहा है। इसके अतिरिक्त चन्द्रपुर एवं बलौदा में भी कोसा वस्त्र का निर्माण किया जाता है। हस्त करघा साड़ियां तथा पिटलूम पर साड़ियां निर्माण करने का कार्य बिलासपुर, मुंगेली, रानीगांव, छुरी, अकलतरा, बलौदा तथा चन्द्रपुर में वर्षों से किया जा रहा है। इस उद्योग को बढ़ावा देने के लिये राज्य वस्त्र निगम की शाखा बिलासपुर में कार्यरत है। इस संस्था द्वारा बुनकरों को कच्चा माल प्रदाय किया जाता है तथा उत्पादित वस्त्रों के विक्रय के लिये विपणन की सुविधा भी जुटायी जाती है। कोसा उद्योग के विकास के लिये कोसा फल का उत्पादन कोरबा, कटघोरा तथा बलौदा रिथत फार्म पर होता है जिसमें कोसा-कीड़ों का पालन किया जाता है। बिलासपुर में कोनी तथा सिवनी चांपा में कोसा धागा बनाने की इकाइयां कार्यरत हैं। कोसा उत्पादन को बढ़ावा देने के लिये जापान की संस्था ओ ई सी.एफ. ने 780 करोड़ रुपये की वृहत योजना जिले में प्रारंभ की है। संभाग में 10 वर्षों में मुर्तरुप लेने के बाद कोसा उत्पादन 10 गुना से भी अधिक होने की संभावना है।

खादी ग्रामोद्योगः-

खादी ग्रामोद्योग के अंतर्गत व्यक्तिगत एवं सहकारी सिमितियों के माध्यम से ऋण एवं अनुदान उपलब्ध कराया जाता है। बढ़ईगिरी, सुतारी, कुम्हारी तथा चर्मोद्योग आदि के लिये ऋण और अनुदान शासन द्वारा काफी पूर्व से ही उपलब्ध कराया जा रहा है। खादी ग्रामोद्योग परिषद द्वारा औद्योगिक प्रक्षेत्र बिलासपुर में माचिस प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किया जा रहा है। इस योजना के अन्तर्गत ग्रामीणों को माचिस उद्योग में व्यवसाय स्थापना हेतु 6 माह का प्रशिक्षण दिया जावेगा तथा प्रशिक्षण के बाद उसे शर्तों पर ऋण उपलब्ध कराया जा सकेगा।

स्त्रोत- संयुक्त, संचालक रेशम

खनिज

जिले में खनिज संपदा का भरपूर भण्डार है। कोयला, बाक्साइट, डोलोमाइट व चूने का पत्थर जैसे महत्वपूर्ण खानिज प्रच्र मात्रा में यहां उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं फायरक्ले, अभक, क्वार्टज, मेगनीज, लोहा आदि खनिज भी पाये गये हैं किन्तु व्यावसायिक दृष्टि से लाभप्रद न होने के कारण इनका उन्मूलन नहीं हो सका है। कटघोरा तहसील में मुख्य रूप से कोयला एवं बाक्साइट का भंडार है। वर्ष 1956 में भारत शासन का ध्यान इस खनिज भंडार की ओर गया तब से राष्ट्रीय कोयला विकास निगम ने कोयले के उत्खानन के लिये सात पट्टे स्वीकृत करके कार्य प्रारंभ किया। कोयला उद्योग के राष्ट्रीयकरण हो जाने के बाद उब्लू सी एल कंपनी ने अंचल की कोयला खदानों से काले हीरे का खनन प्रारंभ किया। भारत एल्यूमिनियम कंपनी कोरबा सहित मध्यप्रदेश विद्युत मंडल, एन.टी.पी.सी., एवं अन्य इकाइयों को यहां से कोयला आपूर्ति की गई। बाद के वर्षों में डब्लू सी एल (वेस्टर्न कोल फील्ड लिमिटेड) का विभाजन हो गया। बिलासपुर संभाग में साउथ ईस्टर्न कोल फील्ड (एसईसीएल) अस्तित्व में आया। बिलासपुर संभाग सहित अन्य प्रदेशों में यहां से कोयला आपूर्ति की गई। 4 वर्ष पूर्व एम.सी. एल. (महानदी कोल फील्ड लिमिटेड) बनाया गया। एसईसीएल के रायगढ़ और उड़ीसा क्षेत्र की खदानों को इसमें शामिल किया गया। इस दौरान कोयला उत्खनन जारी रहा। कोयला से सर्वाधिक आय संभाग को मिली। रायल्टी की रकम प्रदेश सरकार के हिस्से में गई। 1996-97 में 346366 मूल्य का कोयला उत्पादन किया गया। सक्ती एवं बिलासपुर तहसील में डोलोमाइट के अक्षय भंडार है। वर्ष 1957-58 में यहां पट्टेदार कार्यरत थे। जैसे-जैसे उद्योगों का विकास होता गया इनकी संख्या में वृद्धि होती गई। वर्ष 1980-81 के अनुसार जिले में 18 पट्टेदार कार्यरत है। डोलोमाइट मध्यप्रदेश में स्थित भिलाई स्टील प्लान्ट के अतिरिक्त दुर्गापुर एवं राउरकेला स्टील प्लाण्ट को भी कच्चे माल के रूप में प्रदाय किया जा रहा है। जांजगीर, सक्ती एवं बिलासपुर तहसील में चूना पत्थर भी बहुतायत से उपलब्ध ा है। प्रारंभ में चूना पत्थर की कुल 6 पट्टेदारी थी जो वर्ष 80-81 में बढ़कर 150 हो गई।

वर्ष 1956 में खनिज दोहन के लिये पृथक से कोई नियम नहीं है। वर्ष 1961 में मध्यप्रदेश में गौण खनिज नियमावली बनाई गई तथा वर्ष 1964 से संपूर्ण गौण खनिजों का वाणिज्य मूल्य घोषित किया गया। भवन निर्माण में लगने वाले पत्थर, मिट्टी, मुरुम पर भी रायल्टी निर्धारित की गई।

वर्ष 1957-58 में खनिजों से 50 हजार रु. की आय प्रतिवेदित की गई थी। खनिजों के दोहन के साथ ही आय में भी उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। वर्ष 1978-71 में 3595 लाख रु. की आय आंकी गई। राज्यीय आय की बढ़ोतरी में खनिजों से 221.27 लाख रु. की आय हुई जो जिले के राजस्व प्राप्ति के लेखे में उल्लेखनीय है।

खनिज से आय

वर्ष	कोयला		डोलोम	गइट	बाक्साइट	
	उत्पादन	मूल्य	उत्पादन	मूल्य	उत्पादन	मूल्य
1992-93	24000	773376	300.00	7003	117.00	2902.00
1993-94	अप्राप्त	823879	434.00	9037	114.00	2370.00
1994-95	30885	12357088	338.00	67437	69.00	25015
1995-96	-	328206	563.59	167279	73.37	36497
1996-97	_ 4	346366	508.64	195464	73.95	36940

स्त्रोत : जिला सांख्यिकी पुस्तिका 1997

CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.

वर्ष	रेत		चूना पत्थ	ार	मि	मिट्टी	
	उत्पादन	मूल्य	उत्पादन	मूल्य	उत्पादन	मूल्य	
1991-92	468	2806	235	2354	352	2114	
1992-93	600	3460	250	4165	325	2452	
1993-94	928	5567	1796	37421	227	4740	
1994-95	715	24375	194	8879	अप्राप्त	अप्राप्त	
1995-96	875	28000	252.60	11604	_'''_	-*'-	

वर्ष	उत्पादन	ा मुरुम	मिह	
	उत्पादन	मूल्य	उत्पादन	मूल्य
1991-92	36	130	214	1284
1992-93	40	199	250	1638
1993-94	396	198	208	1248
1994-95	42	1292	124	22952
1995-96	137.25	4208	298.10	22952

स्त्रोत : जिला सांरिव्यकी पुस्तिका १९९७

अध्याय द्वितीय

सीमेन्ट का इतिहास, आवश्यकता एवं महत्व

- अ. वैदिक परंपरा में
- ब. आधुनिक काल में
 - 1. स्वतंत्रता पर्व
 - 2. स्वतंत्रता परचात

अध्याय द्वितीय

सीमेन्ट का इतिहास, आवश्यकता एवं महत्व

- अ. वैदिक परंपरा में
- ब. आधुनिक काल में
 - 1. स्वतंत्रता पूर्व
 - 2. स्वतंत्रता पश्चात

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अध्याय द्वितीय

सीमेन्ट का इतिहास, आवश्यकता एवं महत्व

(अ) वैदिक परंपरा में

सीमेन्ट अथवा वज्रलेप या ज्वाइंटिंग मटेरियल के परिप्रेक्ष्य में वैदिक काल का अध्ययन काफी दुष्कर कार्य है। अपितु शोध के उद्देश्य से वैदिक संरचना के बीच काल विभाजन कर यह जाना जा सकता है कि पूर्व वैदिक एवं उत्तर वैदिक काल में निर्माण कार्य की संरचनाएं कैसी थीं। वैदिक काल में साहित्य अथवा अन्य संरचनाओं सभी का प्रार्दुभाव ईसा से पूर्व 2500 वर्ष से लेकर ईसा पूर्व 200 वर्ष तक में हुआ। यद्यपि वेदों की रचना का किसी एक युग अथवा किसी एक व्यक्ति से संबंध नहीं है इसलिए सीमा विभाजन करना आसान नहीं है। सबसे पहले ऋग्वेद के व संहिता के मंत्रों की रचना हुई। इसके पश्चात उपनिषद आदि रचे गए। दीर्घवैदिक काल को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) पूर्व वैदिक काल (2) उत्तर वैदिक काल

पूर्व वैदिक काल को ऋग्वैदिक काल भी कहा जाता है। माना जाता है कि इस प्राचीनतम वेद की रचना में लगभग एक सहस्त्र वर्ष लगे हैं। इस अवधि में आयों का उल्लेख मिलता है। ऋग्वैदिक काल में आर्य अधिकतर गांवों में बसे थे।' गांवों में घर मिट्टी, लकड़ी के होते थे जिनकी छत घास फूंस की मोटी चादर के रूप में होती थी। इतिहास पर बारीक नजर दौड़ाई जाए तो यह प्रतीत होता है कि ऋग्वैदिक काल में शिल्प व्यवसाय ने आकार ले लिया था। जुलाहे और बुनकर सूती और रेशमी वस्त्र बुनने लगे, वहीं चर्मकार और कुम्भकार बढ़ई, आदि व्यवसाय में रत दिखाई पड़ते थे। शुताररथ गाड़िया कृषि उपकरण, नौकाएं, कवच-बाण, ढाल, धनुष प्रत्यन्वाएं आदि का निर्माण किया जाने लगा था पर भवन निर्माण कला अपेक्षाकृत कम विकसित हुई थी। पूर्व वैदिक काल में लकड़ी और बांस की बनी दीवारों पर मजबूती लाने के लिए मिट्टी का लेप चढ़े होने का प्रमाण मिलता है। यहीं से निर्माण कार्य में लेप

स्त्रोत :- (1) प्राचीन भारतीय समाज, अर्थ व्यवस्था एवं धर्म- रमानाथ मित्र

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अध्याय द्वितीय

सीमेन्ट का इतिहास, आवश्यकता एवं महत्व

(अ) वैदिक परंपरा में

सीमेन्ट अथवा वज्रलेप या ज्वाइंटिंग मटेरियल के परिप्रेक्ष्य में वैदिक काल का अध्ययन काफी दुष्कर कार्य है। अपितु शोध के उद्देश्य से वैदिक संरचना के बीच काल विभाजन कर यह जाना जा सकता है कि पूर्व वैदिक एवं उत्तर वैदिक काल में निर्माण कार्य की संरचनाएं कैसी थीं। वैदिक काल में साहित्यं अथवा अन्य संरचनाओं सभी का प्रार्दुभाव ईसा से पूर्व 2500 वर्ष से लेकर ईसा पूर्व 200 वर्ष तक में हुआ। यद्यपि वेदों की रचना का किसी एक युग अथवा किसी एक व्यक्ति से संबंध नहीं है इसलिए सीमा विभाजन करना आसान नहीं है। सबसे पहले ऋग्वेद के व संहिता के मंत्रों की रचना हुई। इसके पश्चात उपनिषद आदि रचे गए। दीर्घवैदिक काल को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) पूर्व वैदिक काल (2) उत्तर वैदिक काल

पूर्व वैदिक काल को ऋग्वैदिक काल भी कहा जाता है। माना जाता है कि इस प्राचीनतम वेद की रचना में लगभग एक सहस्त्र वर्ष लगे हैं। इस अविध में आर्यों का उल्लेख मिलता है। ऋग्वैदिक काल में आर्य अधिकतर गांवों में बसे थे। गांवों में घर मिट्टी, लकड़ी के होते थे जिनकी छत घास फूंस की मोटी चादर के रूप में होती थी। इतिहास पर बारीक नजर दौड़ाई जाए तो यह प्रतीत होता है कि ऋग्वैदिक काल में शिल्प व्यवसाय ने आकार ले लिया था। जुलाहे और बुनकर सूती और रेशमी वस्त्र बुनने लगे, वहीं चर्मकार और कुम्भकार बढ़ई, आदि व्यवसाय में रत दिखाई पड़ते थे। शुताररथ गाड़िया कृषि उपकरण, नौकाएं, कवच—बाण, ढाल, धनुष प्रत्यन्चाएं आदि का निर्माण किया जाने लगा था पर भवन निर्माण कला अपेक्षाकृत कम विकसित हुई थी। पूर्व वैदिक काल में लकड़ी और बांस की बनी दीवारों पर मजबूती लाने के लिए मिट्टी का लेप चढ़े होने का प्रमाण मिलता है। यहीं से निर्माण कार्य में लेप

[्]स्त्रोत :- (1) प्राचीन भारतीय समाज, अर्थ व्यवस्था एवं धर्म- रमानाथ मिश्र

एवं अन्य जोड़ने वाले पदार्थ (ज्वाइटिंग मटेरियल) की शुरूआत मानी जा सकती है। 'व्हीलर' की रचना 'दी इन्डस सिविलाइजेशन' में चित्रांकन सहित इस काल का विभाजन दर्शाया गया है।

पूर्व वैदिक काल -

पूर्व वैदिक काल में सैन्धव सभ्यता का उल्लेख आर्यों की जीवन शैली को दर्शाने के रूप में किया जा सकता है। सैन्धव सभ्यता काल के पश्चात भारत वर्ष में नगर जीवन का अभाव था। इस समय की सभ्यता का रूप हम ऋग्वैदिक काल में ऋग्वेद में पाते हैं। इस समय की आर्य सभ्यता मूलतः ग्रामीण सभ्यता थी। ऋग्वेदकालीन आर्य, नगरों के ज्ञान से पूर्णतया वंचित थे। वे लोग छोटे-छोटे ग्रामों में रहते थे, जिनकी रक्षा के लिए वे बास की चहार दीवारी खड़ा करते थे तथा झाड़ियां लगाते थे। कालान्तर में नगरों के चतुर्दिक मिलने वाली लकड़ी की चहार दीवारी ऋग्वेदकालीन बास की चहार दीवारी का उत्तर विकास थी। इसमें प्रत्येक दिशा में लकड़ी के द्वार बने होते थे जिन्हें 'गमद्वार' कहा जाता था। आर्यों के पशु इन दरवाजों से होकर ग्राम के बाहर चारागाह की ओर जाते थे। इसी गमद्वार से गोपुर शब्द निकला जिसका प्रयोग कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा अमरकोष में पुर द्वार के अर्थ में हुआ है। सांची के तोरण 'गमद्वार' के आदर्श पर बनाये गये थे।

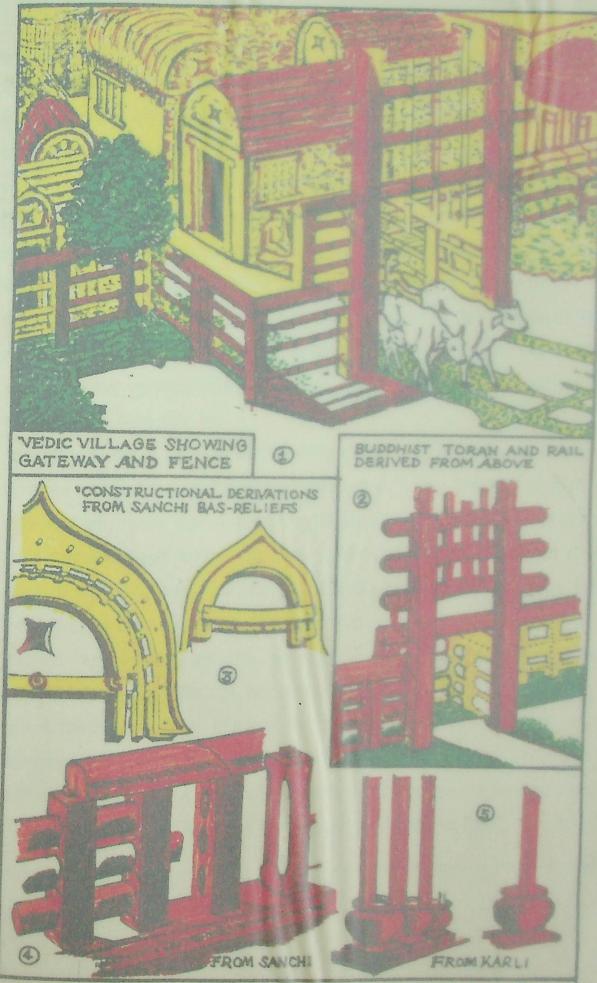
आयों के घर आकार में गोल होते थे यह इस बात का द्योतक है कि प्रारंभिक मनुष्य का गोल आकार से प्रेम था। गोलाकार भवन बनाने की प्रथा कालांतर में भी विद्यमान थी। प्राचीन राजगृह के घरों की नींव इस बात के प्रमाण हैं कि वहां गोलाकार घर बनाये जाते थे। आज भी उत्तरी भारत के गांवों में लकड़ी और बांस के द्वारा गोलाकार कोठारों का निर्माण किया जाता है। पूर्व वैदिक काल के भवनों की दीवालें लकड़ी तथा बांस की बनी होती थीं। मजबूती लाने के लिए उनके ऊपर मिट्टी का लेप चढ़ा दिया जाता था। इन घरों की छत घास फूस तथा पत्तियों की बनी होती थी। पूर्व वैदिक कालीन काष्ठ गृह का एक सुंदर दृष्टांत बराबर पहाड़ियों की सुदामा की गुफा की एक दीवाल के ऊपर अंकित मिलता है। इस समय एक ही घेरे में तीन या चार घर बने होते थे। ग्राम के बीच में मिट्टी का एक दुर्ग होता था, जिसके लिए ऋग्वेद में 'पुर' शब्द मिलता है। संकट के समय में आर्य लोग इस प्रकार के दुर्ग में शरण लेते थे। ऋग्वेद में जिन दुर्गों का उल्लेख मिलता है वे वास्तव में सिंधु उपत्यका के दुर्ग हैं, जिनका विनाश आर्यों ने किया था। ऋग्वेद में विर्णत इन्द्र के द्वारा अनेक पुरविनाश आर्यों के द्वारा

[,] स्त्रोत :- (1) दी इंडस सिविलाइजेशन

⁽²⁾ भारतीय स्थापत्य-डॉ. द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

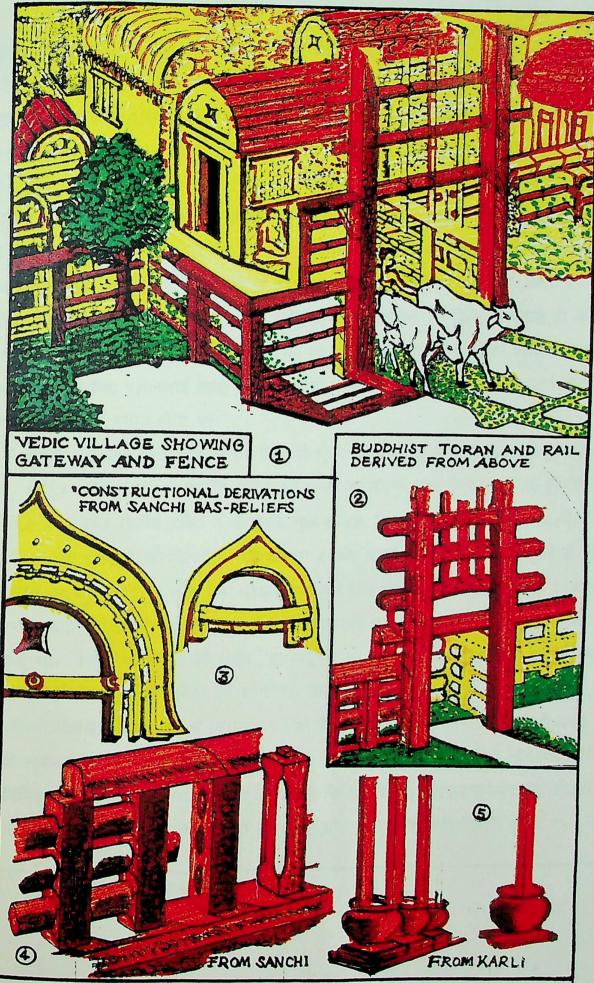
वैदिक गाम की संरचना



The Indus Civilization - Ernest Mackay Condo

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वैदिक ग्राम की संरचना



The Indus Civilization - Ernest Mackay (Londo

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection. इन दुर्गों के प्रति ध्वन्सात्मक कार्यों की ओर ही संकेत करते हैं।

सैन्धव सभ्यता के भग्नावशेष से भी निर्माण कार्यों का जो स्वरूप उभरता है, वह एक लघु नगर के सदृश है। इस समय पश्चिमी देशों में पृथक-पृथक घरों की परंपरा की शुरुआत के साक्ष्य मिलते है। इस काल में तेल-एल-अर्मना के सीमा प्रांत में कब बनाने वालों के घर बने हुए थे। इसी प्रकार 1600 ई. पू. में देर-एल-मदीनह में समाधि निर्माताओं के घर उपकंठ पर निर्मित किये जाने के प्रमाण मिलते हैं। संभव है कि इस प्रकार का श्रम संगठन हड़प्पा में भी प्रचलित रहा हो। इसी तरह दूसरे वर्ग में आने वाले श्रमिकों के चबूतरे जिन पर गेंहू पीसने का कार्य किया जाता था, 1946 ई.पू. इसका पता लगा था। यह चबूतरा ईंटनुमा सख्त मिट्टी से बना हुआ था। इसके केन्द्रीय भाग में छोटा सा गड्डा था जिसमें लकड़ी की ओखली लगी हुई थी। इसमें अनाज के छिलके भी मिले हैं। इससे ही यह अनुमान लगाया गया कि अन्नागार उत्तर में बने हुए थे। ज्वाइंटिंग मीडिया नहीं होने की वजह से लकड़ी पत्थर को जोड़ने के लिए चूलें बनाई जाती थीं एवं लकड़ी के स्तम्भों को उध्विकार खड़ी करने के लिए पत्थर की कुम्भियों का प्रयोग होता था।

आधुनिक उत्खनन के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि सिन्धु सभ्यता 2500 ई.पू. तथा 1500 ई. पू. की है। प्राचीन भारत में नगरीय जीवन की झलक हड़प्पा के नगर विन्यास से ही मिलती है। प्रथम पंक्ति में 7 तथा द्वितीय पंक्ति में 8 भवन सुनियोजित विन्यास के तहत बनाये गए थे। प्रत्येक के चर्तुदिक एक चहार दीवारी मिलती है। वह लगभग 4 फीट चौड़ी गली के द्वारा एक दूसरे से विभक्त है। प्रत्येक घर की लम्बाई 56 फीट तथा चौड़ाई 24 फीट थी। प्रत्येक घर में आंगन तथा 3 कमरे होने के प्रमाण मिलते हैं। इनकी फर्श ईंट सदृश हैं। मोहन जोदड़ों में दुर्ग भाग एक कृत्रिम चबूतरे के ऊपर बसा हुआ था। हड़प्पा के चबूतरे की भांति यह चबूतरा भी अंशतः मिट्टी की सख्त ईट से निर्मित था। मोहन जोदड़ों के दुर्ग के दक्षिण पूर्व कोने पर पकी ईटों द्वारा निर्मित बुर्ज के अवशेष मिले है। इसके पश्चिमी किनारे पर एक बुर्ज के ध्वंसावशेष मिले है। जिसकी ऊंचाई 10 फिट है। इसी काल में चबूतरे के साथ—साथ सीढ़ी बनाने की भी झलक मिलती है। 22 फिट चौड़ी एक सीढ़ी और पास ही एक कुआं निर्मित कराया गया। इतिहास विदों का अनुमान है कि यह विशाल स्नानागार प्रवेश पूर्व शुद्धता लाने हेतु किया गया था। हड़प्पा युगीन अवशेषों में जुड़ाई और प्लास्टर के लिए मिट्टी, चूना, तथा जिप्सम का

स्त्रोत :(1)'दी इण्डस सिविलाईजेशन' 'व्हीलर'

प्रयोग किया गया है। सिंधु सभ्यता में आग व धूप में पकी ईंटे इस्तेमाल की गई। कुंड व कुंओं मे प्लास्टर व उसे जलरोधी बनाने के लिए जिप्सम और बिटुमिन का उपयोग किया गया, जिसे संस्कृत साहित्य में गिरीप्ष्पक के नाम से जाना जाता है। उत्खनन में ऐसे 7 पर भाग प्रकाश में आये हैं। इन सभी में ईंटों का प्रच्र प्रयोग किया गया है। सड़कों के किनारे नालियां भी ईंटों से बनाई गयी थी। जो ऊपर से पत्थरों से ढंकी हुई थी। सिंधु उपत्यका की नागरिक शालाओं में आधुनिक ईटों के सदृश्य सामग्री का उपयोग हुआ था। दीवालों का निर्माण पकी ईंटों से किया गया था। फर्श भी ईंट की बनी होती थी। पूर्व वैदिक काल में खम्भों पर अवलंबित छत का जिक्र कम मिलता है लेकिन मोहन जोदडों के उत्खनन से 90 फिट के वर्गाकार भवन की छत का मिलना यह प्रमाणित करता है कि इस काल में घास-फूंस की छत के बजाय कुछ उच्च तकनीक के इस्तेमाल की कोशिश की गई थी। इतिहास विद मार्शल का कथन है कि मोहन जोदड़ों के विशाल स्नानागार का निर्माण आश्चर्यजनक था जिसकी समानता विश्व की किसी तात्कालीन वास्त्कला में नहीं मिलती। इसी काल में मिट्टी के बर्तनों का प्रचलन शुरू हुआ जिसका निर्माण चाक के द्वारा किया जाता था। बर्तनों के ऊपर लाल एवं काला रंग का लेप चढ़ाया जाता था। कालांतर में कारीगरों ने महीन मिट्टी का लेप सीमेन्ट के रूप में किया जिसका उपयोग वे बर्तन आदि बनाने में किया करते थे। सैन्धर्वे सभ्यता एवं पूर्व कालीन आर्य सभ्यता में अंतर कुछ काल तक विचारकों के मस्तिष्क को चक्कर में डाल देता है। ऐसा आभास होने से लगता है कि उस काल के लोग एक समय नगर निर्माण से परिचित होकर कालान्तर में उसे भूल गए। मार्शल के मोहन जोदड़ों एंड इण्डस सिविलाईजेशन एवं इंडियन कल्चर के अनुसार कुछ भारतीय विद्वानों ने सैन्ध ाव सभ्यता को पूर्व कालीन आर्य सभ्यता का उत्तर विकास बतलाया है। इस दिशा में कार्य करते हुए डॉ. लक्ष्मण स्वरूप ने पूर्व आर्य सभ्यता की अधिक प्राचीनता तथा सैन्धव सभ्यता की उत्तरकालीनता का निर्देश किया है। इस मत का समर्थन करते हुए श्री कुशालकर ने आर्यों को सैन्धव सभ्यता का कर्ता माना है। उनका मत है कि इस सभ्यता को आर्य सभ्यता का उत्तर विकास कहना असंगत नहीं है। श्री वेंकटेश्वर ने ऋग्वैदिक सभ्यता को सैन्धव सभ्यता का पूर्वज माना है। ग्रामीण रूप का नगर रूप में परिवर्तन और छोटी झोपड़ियों का विशाल भवनों में रूपांतर कुछ हद तक विश्वासयुक्त प्रतीत होता है। वैदिक ग्रामीण जीवन और सैन्धवकालीन नगर रूपांतर पर जब सीमेन्ट अथवा ज्वाइंटिंग मटेरियल के

स्त्रोत :- वैदिक संस्कृति- डॉ. थपलियाल एवं भारत का इतिहास-कामेश्वर प्रसाद के आधार पर।

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परिप्रेक्ष्य में अध्ययन किया जाए तो इसके तारों को जोड़ना इतिहास विदों के लिए भी कम दष्कर कार्य नहीं है।

च्नाई:

समरांगण स्त्रधार के 41 वें अध्याय चयन विधि में चुनाई की कला का बड़ा ही वैज्ञानिक एवं पारिभाषिक वर्णन देखने को मिलता है। इस ग्रंथ को छोड़कर अन्य शिल्प ग्रंथों में चुनाई की प्रक्रिया का वैज्ञानिक उद्घाटन अप्राप्त है। अतः समरांगण सूत्रधार की यह देन बड़ी महत्वपूर्ण है। चय को डॉ. आचार्य ने प्लिथ कहा है जो वास्तव में अशुद्ध है। चय का तात्पर्य यहां पर चुनाई (मैसनरी) से है। हिन्दी में च्नाई को कहीं-कहीं चेजा कहा जाता है जिसका अर्थ रद्दा है। ग्रन्थ में चुनाई की प्रक्रिया के उपपादन के प्रथम चुनाई के निम्न 20 गुणों का वर्णन है, जिनकों देखकर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि चुनाई की इस प्रकार की सफाई प्राचीनों में तो कहीं लिखी नहीं है, प्राचीन स्थापत्य शास्त्र में भी चुनाई के इतने गुण कहीं भी संभवतः उपलब्ध नहीं हो सकते।

चयन के ग्णः

(9)

(10)

अन्त्रम

अन्द्वृत

(1)	सुविभक्त	(11)	अकुब्ज
(2)	सम	(12)	अपीडित
(3)	चारू	(13)	समान खंड
(4)	चतुरस	(14)	ऋज्वन्त
(5)	असंभ्रान्त	(15)	अन्तरंग
(6)	असंदिग्ध	(16)	सुपार्श्व
(7)	अविनाश्य	(17)	संधि सुरिलष्ट
(8)	अन्यवर्हित	(18)	सुप्रतिष्ठित

स्त्रोत: भारतीय स्थापत्य, चयन विधि

स्संधि

अजिहा

(19)

(20)

''एतेषां वैपरीत्येन दोषानामपि विंशतिः''

अर्थात् चुनाई में किसी प्रकार की असावधानी नहीं बर्दाश्त की जा सकती। मान के अनुसार हस्त कौशल की पराकाष्टा चुनाई है। निर्माण कार्यों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि चुनाई के दोष से बचने के लिए तात्कालिक विशेषज्ञों ने अलग विधान बना रखा था। समरांगण सूत्रधार के कुछ अध्यायों में वास्तुकला की इस बारीक नियमावली का उल्लेख मिलता है। चुनाई की 20 विधियों के साथ कुछ पारिभाषिक संज्ञाएं भी मिलती है। जैसे तनुमध्य, कुर्मून्नत, आदि आदि। इस सामग्री को देखकर वास्तुकला की उत्कृष्टता का अंदाजा लगाया जा सकता है। निर्माण एवं उसके वास्तुशास्त्रीय अध्ययन में भी समरांगण का यह अध्याय अनेक विशिष्टताओं को परिभाषित करता है। अतः चुनाई के दोष से बचने के लिए भी आदर्श संहिता का पालन किया जाता था।

वैदिक युग में चुनाई का वास्तुशास्त्रीय अध्ययन-

वैदिक परंपरा में निर्माण कार्यों में उपयोग में लाये जाने वाले पदार्थ को सीधे तौर पर भले ही सीमेन्ट न कहा गया हो लेकिन चुनाई की प्रक्रिया ने कारीगरों के बीच गारे या मोस्टार जैसे तत्वों की तकनीक विकसित कर दी थी। साथ ही साथ चुनाई में 'डिस्प्रप्रोर्शन' का भी विशेष ख्याल रख गया। भवन सदैव उत्कृष्ट बने और जो अमांगलिक न हो इसका भी ध्यान रखा गया। शायद वास्तुशास्त्र के प्रथम ग्रंथ में इसीलिए चुनाई की प्रक्रिया में सावधानी बरतने के निर्देश का उल्लेख मिलता है।

तलं स्यात पंचिम षड़िमः करपादाडंगु लैस्तूरिगरिष्यते सप्तिम (छिदिं) ष्टिरष्यिमरडंगुलैस्तु निरिष्यते उदकेन समं नीत्वा सम्यङ् निश्चयकारणम् ।। त (त्रास्मा) हतेन चान्यत् स्यान्निश्वयार्थ चयस्य। चिन्हं दद्यात् स कर्णः स्यादेवं दोषान् प्रसाधयेत् ।। भूरि नाच्छादनं दद्यान्न भिन्धात् तत्र चेष्टकाः विषमस्थाः कुणरेण चिछत्वा ताः कल्पयेत समाः।। यथा न च स्पृशेत् सूत्रं विचिन्वीत तथा बुधः।²

स्त्रोत: (1) समरांगण सूत्रधार 41.4

⁽२) समरांगण सूत्रधार ४१.२१-२६ एवं ४१, २७-२३

1

इति भाषितरूपितमायाचरताचयकर्म यथाविधि शिल्पिकृतम्। भवतीह यशो भुवने विततं गृहभतुर्ररिप प्रचुरो विभवः ।।¹

चुनाई करते समय आच्छादन अर्थात् गारे का उपयोग बहुत अधिक नहीं होना चाहिए ईंटों की बराबर रखा जाना चाहिए। चुनाई इतनी सफाई से की जानी चाहिए कि साहुल फेंकने पर चुनाई का कोई भी भाग उसको स्पर्श न कर सके। इसके अतिरिक्त दीवार की चुनाई के प्रारंभ, मध्य एवं अंत में दृष्ट सूत्र से परीक्षा कर लेनी चाहिए। एक कमरे की रचना में चारों ओर की दीवारों को एक साथ उठाना चाहिए। इसके अलावा नाप जोक के अनेक नियम कायदे का उल्लेख भी पूर्व वैदिक काल के निर्माण कार्यों में मिलता है।

उत्तर वैदिक युग :

ऋग्वेद के बाद का समय उत्तर वैदिक युग के रूप में जाना जाता है। उत्तर वैदिक युग में अथर्ववेद, सामवेद तथा यजुर्वेद व सूत्र ग्रंथों की रचना हुई। ये तीनों वेद और सूत्र ग्रंथ ईसवी पूर्व सन् 1200 वर्ष से लेकर ईसवी सन् 200 की अविध में लिखे गए। पूर्व वैदिक और उत्तर वैदिक काल के मध्य सभ्यता और संस्कृति में काफी परिवर्तन आ गया। ऋग्वेदकाल में आर्य अफगानिस्तान से लेकर गंगा की उपरी घाटी के क्षेत्र तक बस चुके थे। नगरों एवं भवनों का व्यवस्थित निर्माण इस काल में होने लगा था। ग्रामीण जीवन से अभ्यस्त पशुपालक आर्यों का इस समय यह नगर ज्ञान आश्चर्यजनक नहीं था। उन्होंने नगर निर्माण भारत वर्ष के निवासियों से सीखा होगा। उत्तर वैदिक काल में आर्यों की युद्ध क्रिया समाप्त हो गई तथा व्यवस्थित जीवन का श्री गणेश हुआ। इस कारण इन लोगों ने स्थाई गृहों और बस्तियों की कल्पना की। आर्य संस्कृति का केन्द्र बाद के वर्षों में पंजाब से हटकर सरस्वती और गंगा जमुना के बीच आ गया। इसी मध्य देश से आर्यों की संस्कृति सुदूरपूर्व की ओर बंगाल और बिहार में फैली। उत्तरी भारत पर उन्होंने अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। इस प्रदेश को आर्यावर्त कहा गया। इसे मनु ने ब्रम्हावर्त कहा है।

सरस्वती दृष्द्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्। तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्न्त प्रचक्षते।।²

स्त्रोत- (1) समरांगण सूत्रधार, 41 वां अध्याय

⁽²⁾ मनु स्मृति, 2/17

इतिहासविद् डॉ. राजिकशोर सिंह के अनुसार ऋग्वेद काल की संस्कृति एवं सभ्यता का समय 1400 ई पू. से लेकर 600 ई पू. तक माना जा सकता है। आयों के राज्य की सीमा का विस्तार कुरुपांचाल देश तक हो गया इसीलिए इसे कभी-कभी कुरुपांचाल संस्कृति भी कहा जाता है। बाद में मगध (दक्षिणी बिहार) कोशल (मगध) काशी विदेह (उत्तरी बिहार) अंग (पूर्णी बिहार) आदि तक आयों के फैलाव ने इन स्थानों को सभ्यता का प्रमुख अंग बना दिया इस काल में गान्धार कैकय, मद्र, उसीनार, मत्स्य, काशी, कोशल, किलंग, अष्यक, दंडक आदि राज्य विकसित हुए जहां के निर्माण में उत्तर वैदिक संस्कृति के प्रमाण मिलते हैं। उत्तर वैदिक युग में बड़े बड़े ग्राम, नगरों में विकसित हो गए थे। मकान कच्ची तथा पक्की ईटों के लकड़ी बांस तथा मिट्टी की सहायता से बनाये जाते थे। प्रत्येक निवास गृह में यज्ञ के लिए अग्नि शाला और पशुओं के लिए अलग स्थान होता था। चार वर्णों में विभाजित वर्ण व्यवस्था के इस दौर में व्यवसाय और व्यापार भी पनपा। राजतंत्र की इस प्रणाली में वैश्यों ने व्यापार, कृषि और विभिन्न दस्तकारियों के धंधे अपनाये। शृद्ध श्रमिक वर्गीय थे। वर्ण व्यवस्था के कारण सामाजिक संरचना प्रभावित हुई। राज्य सत्ता के साथ-साथ इस युग में राजनीतिक संस्थाओं और कर तथा न्याय व्यवस्था का भी समावेश था।

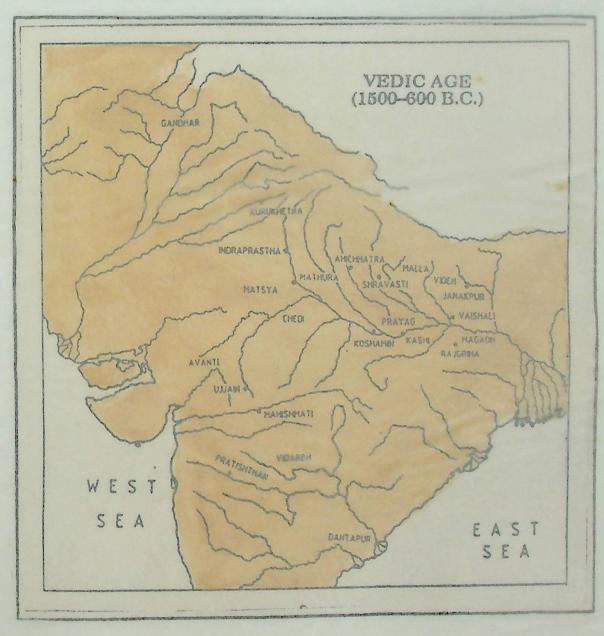
इस काल में ईटों के जिस्ये बनाये गये भवन, मंदिर प्रचलन में आये। काष्ठकला पर आधारित स्थापत्य के साक्ष्य इस काल में मिलते हैं। ईटों को मिट्टी की महीन परत से जोड़कर पूरी संरचना को एक साथ भट्ठे की तरह पका लिया जाता था। अंचल के सिरपुर के लक्ष्मण मंदिर की संरचना भी इसी तकनीक पर किये जाने का अनुमान इतिहास विद् लगाते हैं। दो कच्ची ईंटों के बीच की परत पकने के बाद ऐसी हो जाती है जिससे जोड़ का पता नहीं चलता। गन्धार कला की प्रतिमाओं के निर्माण में कहीं—कहीं सीमेन्ट शब्द का उपयोग आता है। राजगीर में तथा अंचल के मल्हार में ईटों को जोड़ने की तकनीक में समानता झलकती है। भारतीय स्थापत्य के उत्तर वैदिक काल में लकड़ी के स्तंभों को उध्विधर खड़ा करने के लिए पत्थर की कुम्भियों का प्रयोग होता था। वैदिक काल के पश्चात मिले अवशेषों से यह ज्ञात होता है कि स्तूप, लाट में भी प्लास्टर के लिए चूने और गारे का उपयोग हुआ, वहीं पत्थरों को आपस में जोड़ने के लिए चूलों (होल-साकेट) का उपयोग किया गया। इतिहासविदों का मानना है कि उत्तर वैदिक काल काष्ठ आधारित स्थापत्य को नई दिशा देने वाला युग था।

स्त्रोत – (1) प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन – सत्यकेतु विद्यालंकार

⁽²⁾ प्राचीन छत्तीसगढ़

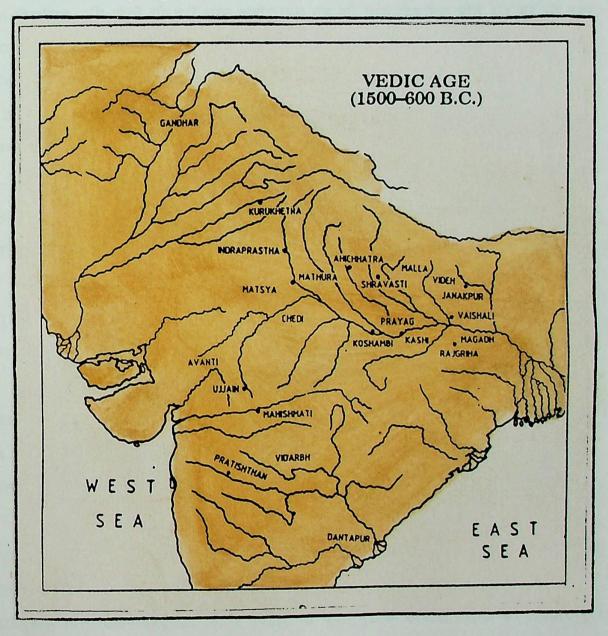
Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha THE RESIDENCE BETWEEN THE PARTY OF THE PERSON OF PERSON CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.

भारत-(वैदिक काल में)



Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.

भारत-(वैदिक काल भें)



उत्तर वैदिक काल में नगरों का उल्लेख-

नगर- तैतिरीय संहिता में नगर शब्द का उल्लेख पुर के अर्थ में हुआ है। (नैतमृषि विदित्वा नगरं प्रविशेत)

नगर के संबंध में पौराणिक गाथों में अलग-अलग उल्लेख मिलते हैं।शिल्प शास्त्रों में नगर एवं ग्राम के जो उल्लेख हैं उनमें इसे आकार भेद माना गया है न कि प्रकार भेद। नगर अपेक्षाकृत विकसित भूमि होती थी वहीं ग्राम कुटीर कुल गृह की तरह विकसित होते थे। पुर भी नगर का पर्याय है, लेकिन प्राचीन साहित्य में कहीं-कहीं पुर का उपयोग विशाल नगरों के लिए किया गया है। प्राचीन साहित्य में जिस प्रकार एक नग (पर्वत) में पाषाण शिलाओं के कारण दृढ़ता एवं स्थायित्व होता है उसी प्रकार ऐसी बस्ती जिसमें मकान पक्के हो, दीवारें तथा छते विशेषकर पाषाण शिलाओं अथवा तप्त इष्टिकाओं से निर्मित हो उसे नगर कहा गया है।

पुर – इस शब्द का उल्लेख तैत्ररीय ब्राह्मण तथा क्षतपथ ब्राह्मण में मिलता है। समरांगण सूत्रधार के पुर आवास का जो विवरण पुराविद् बताते हैं वह अग्नि पुराण से मिलता-जुलता है। प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत के नगरों व आवासों स्वरूप आर्यों की वर्णाश्राम व्यवस्था के सिद्धांतों के अनुरूप था ब्राह्मणों की बस्ती के लिए एक प्रमुख एवं विशिष्ट स्थान नियत था। इसी प्रकार अन्य वर्णों के लिए भी स्थान सुरक्षित थे। पुर के मध्य में राजभवनों के साथ-साथ जनभवनों, सभा, उर्जन विहार, पुर देवता आदि का स्थान नियत था। समरांगण ने पुर की बस्ती के लिए जातीय वर्णाधिवास शब्द का प्रयोग किया। पिशेल का मत है कि यहां पर पुर शब्द से तात्पर्य प्राकार एवं परिखा से परिवेष्ठित नगर से है। भगवानपुरा (हरियाणा) की खुदाई से मिट्टी अथवा ईटों का बना हुआ 13 कक्षों वाला भवन प्रकाश में आया है जिसकी तिथि 1600–1000 ई. पूर्व मानी जाती है। इसे आधार मानकर कुछ विद्ववान नगरों की अस्तित्व की बात स्वीकारते हैं। इस स्थान पर बड़े परिवार के रहने का प्रमाण मिलता है। (6)

महापुर- यजुर्वेद संहिता (1 7 1-3) तथा गोपद ब्राम्हण में महापुर शब्द का उल्लेख मिलता है। मैकडानल तथा कीथ के अनुसार पुर एवं महापुर में अंतर आकार की दृष्टि से था। नवद्वारपुर - श्वेताश्वरोपनिषद् (3, 18) में नवद्वारों से युक्त पुर का उल्लेख मिलता है। (नवद्वारे पुरे)

स्त्रोत - (1) भारतीय इतिहास - कामेश्वर प्रसाद

⁽²⁾ भारतीय स्थापत्य पृष्ठ-57

⁽³⁾ तिभिरीय ब्राह्मण (1, 33, 2, 11) शातपथ ब्राह्मण (तेनेमां मानुषीं पुरं) जयन्ति - 3 4 4 3

⁽⁴⁾ भारतीय वास्तु शास्त्र (5) भारतीय स्थापत्य (6) भारत का इतिहास- कामेश्वर प्रसाद।



एकादशद्वार पुर- कठकोपनिषद् (1 5 1) में ग्यारह द्वारों से युक्त पुर का उल्लेख आता है। (पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः)

प्रासाद — प्रासाद रचना के जन्म व विकास के पीछे देववाचन तथा देव प्रतिष्ठा की कहानी है। मानव सम्यता जैसे—जैसे विकसित हुई वह अदृश्य शक्ति के प्रति श्रद्धावनत होती गई। कभी—कभी मानव ने वृक्षों की पूजा की तो कभी सूर्य, चंद्र, आकाश, पर्वत निदयों आदि के प्रति नतमतस्तक होकर नमन किया। यही पूजा भावना बाद में उपास्य देवों के लिए भवन बनाने का कारण बनी। अद्भुत ब्राह्मण में प्रासाद शब्द का प्रयोग राजमहल के अर्थ में हुआ है।

प्राकार – परिखाओं एवं वप्रों के अलावा नगर के रक्षा संविधान का तीसरा अंग प्राकार विनिवेष है। प्राकार का साधारण अर्थ मोटी दीवार है जो पुर के चारों ओर बनायी जाती है। इसकी रचना भारी पाषाण शीलाओं से की जाती थी अतएव ये दीवारें अभेद्य बन जाती थी। आज भी पुरातन नगरों में मौजूद भाग्नावशेष इसके प्रमाण माने जा सकते हैं। प्रकारों की रचना में दो उपांग होते हैं किप शीर्षक तथा कांडवारिणी माने जाते है। शांखायन श्रोत सूत्र में प्राकार शब्द का प्रयोग नगर, दीवाल के अर्थ में हुआ है। इसके अलावा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में ही प्राकारों का जिक्र है। चाणक्य तथा चंद्रगुप्त मौर्य की नगरी में अर्थशास्त्र अनुरूप प्राकारा भित्तिया बनायी गयी थी।3

वप्र – नगर के रक्षा संविधान प्रकादि निवेश का कारण वप्र से होता है। वप्र भूमि की परिकल्पना के लिए पुर के चारों ओर परिखाएं खोदी जाती है। समरांगण सूत्रधार तथा कौटिल अर्थशास्त्र में चारों ओर तीन-तीन परिखाओं का खनन निर्दिष्ट है। परिखाओं का खनन एवं वप्र भूमि का निर्माण संयुक्त कार्य है। परिखाओं के खनन से निकली हुई मिट्टी के द्वारा ही वप्र भूमि की रचना की जाती है। विभिन्न ग्रंथों में परिखाओं के परिणाम दिए गए है। घंटा मार्ग के जो पुर के चारों ओर जाता है समानांतर परिखेयी भूमि का विन्यास माना जाता है। प्राचीन पुरों में परिखाएं रक्षा व्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण थी वहीं नगर की जल निकासी के लिए भी इसका उपयोग होता था। खातिकाराचितं कार्यप्रणालीभिः समन्वित् । वप्र का उल्लेख वेदों में भी मिलता है।

देही – कात्यायन श्रोत तथा कौशिक तथा कौशिक सूत्र में देही शब्द का उल्लेख नगर परिखा के अर्थ में हुआ है।

स्त्रोतः (1) भारतीय स्थापत्य वेद।

⁽२) (३) कोटिल्य अर्थशास्त्र

⁽⁴⁾ देवी पुराण अध्याय 72

⁽⁵⁾ अथर्ववेद (7 71 1)

⁽⁶⁾ कात्यायन सूत्र(२, १, २२), कौशिक सूत्रं (३-५)

a street have not say a stay to the speciment of the first first first for the stay of the

we was the mile to the proper party of the fine factories and to they a tree

काम्पिल – तैत्तरीय संहिता तथा मैत्रायणी संहिता में एक स्त्री को काम्पिलवासिनी कहा गया है। काम्पिल उसी नगर का नाम है जिसे कालान्तार के साहित्य में काम्पिलय तथा पंचाल की राजधानी कहा गया है।

कौशाम्बी – शतपथ ब्राह्मण तथा गोपथ ब्राह्मण में कौशाम्बेय शब्द (प्रोतिर्दि कौशाम्बेयः) का उल्लेख मिलता है।²

आसन्दीवन्त – उत्तर वैदिक साहित्य में इसका उल्लेख जन्मेजय परीक्षित की राजधानी के रूप में हुआ है। उनके प्रसिद्ध अश्वमेघ यज्ञ का अनुष्ठान मिलता है।

उत्तर वैदिक काल में नगरों एवं ग्रामों का जो उल्लेख मिलता है उससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वर्तमान ग्राम तथा नगरीय संस्कृति की तरह मिली जुली निर्माण तकनीक का इस्तेमाल किया गया। बिहार के राजगृह से लेकर उड़ीसा के पुराने गांव में निर्माण कार्य समय—समय पर परिवर्तित तकनीक से होते गए। वैदिक ग्राम का उल्लेख करते हुए 'अर्नेस्ट मैकी' ने कहा कि बांस के उपयोग से मुख्य द्वार, तोरण, गोपुरम, कुटिया आदि का निर्माण किया गया। इन निर्माण कार्यों में बुद्धिष्ठ आर्किटेक्चर की झलक मिलती है। वहीं कालान्तर में निर्माण कार्य जो कच्ची ईटों को जोड़कर किये जाते थे, उस पर प्लास्टर के बाद पोताई की परंपरा उड़ीसा में दूरस्थ क्षेत्रों में मिलती है। मिट्टी की छवाई पर कलाकृतियों को उभारने का दौर भी यहीं से शुरू हुआ। उत्तर वैदिक काल वह समय था जब भारत नव युग में प्रवेश कर रहा था। काष्ठ की कला को पक्की ईट व पत्थर पर उभारने का काम भी इस काल में हुआ। गारे और अन्य पदार्थों से जोड़कर संरचना को सुदृढ़ करने की विभिन्न तकनीक उत्तर वैदिक युग के नगरों में नजर आती है।

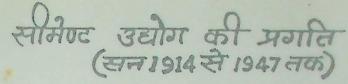
(1) स्वतन्त्रता पूर्व सन् 1900 से 1947

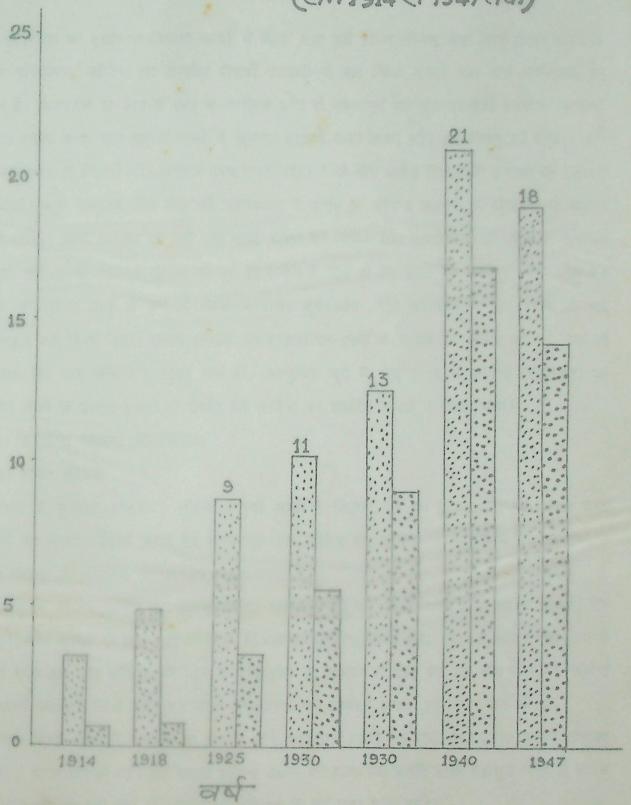
स्वतंत्रता पूर्व अर्थात् 1947 के पहले भारत में यूं तो आधुनिकतम सीमेन्ट का उपयोग किया जाने लगा था लेकिन भारतीय उद्योग इतने विकसित नहीं थे कि स्वयं उत्कृष्ट श्रेणी का सीमेन्ट उत्पादन कर सकें। बीसवीं शताब्दी में प्रथम महायुद्ध के पूर्व तक देश में केवल एक हजार टन सीमेन्ट का उत्पादन किया जाता था। रोमन साम्राज्य के दौरान चूना, जिप्सम और कोयले से तैयार

स्त्रोत- (1) समुद्रिका काम्पीलवासिनी- मैत्रायिणी संहिता 3-12-20

⁽²⁾ सतपथ ब्राम्हण 12.2.2.13 तथा गोपथ ब्राम्हण 1.2.24

^{(3) &#}x27;दी इन्डस सिविलाईजेशन'

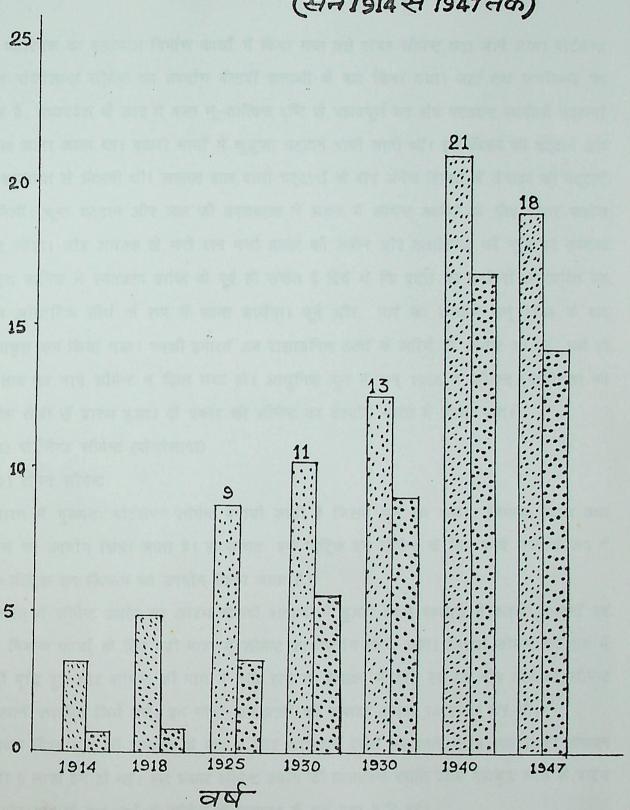




ःः-सीमेण्ट कारखाने ःः-उन्पादन (सारवीं में)

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.

सीमेण्ट उद्योग की प्रगति (सन 1914 से 1947 तक)



ःः-सीमेण्ट कारखाने ःः-उत्पादन (सारवीं में) Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जिस मटेरियल का इस्तेमाल निर्माण कार्यों में किया गया उसे रोमन सीमेन्ट कहा जाने लगा। पोर्टलैण्ड अथवा पोजोलाना सीमेन्ट का उपयोग बीसवीं शताब्दी के बाद किया गया। जहां तक छत्तीसगढ़ का सवाल है, मध्यप्रदेश के उदर में बसा भू-तात्विक दृष्टि से महत्वपूर्ण यह क्षेत्र परतदार पथरीली चट्टानों के लिए जाना जाता था। पठारी भागों में कुड़ुप्पा चट्टाने पायी जाती थीं। इस किस्म की चट्टान आंध्र में बहुतायत से मिलती थी। समतल ढाल वाली चट्टानों के बीच अनेक हिस्सों में ग्रेनाइट की चट्टानें भी मिलीं। चूना चट्टान और जल की उपलब्धता ने अंचल में सीमेन्ट उद्योगों के लिए बेहतर माहौल तैयार किया। लौह अयस्क से भरी रत्न गर्भा बस्तर की जमीन और छत्तीसगढ़ की भूमि पर उपलब्ध बहुमूल्य खिनज ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व ही संकेत दे दिये थे कि प्रदेश का वनों से आच्छादित यह अंचल औद्योगिक तीर्थ के रूप में जाना जायेगा। चूने और गारे का उपयोग सन् 1756 के बाद अपेक्षाकृत कम किया गया। पक्की इमारतें अब रासायनिक तत्वों के जिरये ही तैयार की गई, भले ही उस तत्व का नाम सीमेन्ट न दिया गया हो। आधुनिक युग में सन् 1956 में सीमेन्ट (मटेरियल) का उपयोग तेजी से प्रारंभ हुआ। दो प्रकार की सीमेन्ट का उपयोग भारत में किया गया।

- (1) पोर्टलैण्ड सीमेन्ट (पोजोलाना)
- (2) रोमन सीमेन्ट

भारत में मुख्यतः पोर्टलैण्ड सीमेन्ट बनायी जाती है जिसमें चूने का पत्थर, जिप्सम, चिका तथा कोयले का उपयोग किया जाता है। सामान्यतः एक मीट्रिक टन सीमेन्ट के लिए कच्चे माल के रूप में 1.60 मीट्रिक टन जिप्सम का उपयोग किया जाता है।

भारत में सीमेन्ट उद्योग का आरंभ बीसवीं शताब्दी में हुआ। प्रथम महायुद्ध में सड़कों, भवनों एवं अन्य निर्माण कार्यों के लिए बड़ी मात्रा में सीमेन्ट का उपयोग किया गया। जिससे सीमेन्ट की मांग में काफी वृद्धि हुई और सीमेन्ट की मांग में वृद्धि होने से उत्पादन में वृद्धि एवं इस बीच तीन बड़े सीमेन्ट कारखानें स्थापित किये गये। इन तीनों कारखानों की उत्पादन क्षमता 76 हजार टन थी।

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद 7 और कारखाने खोले गए तथा 1924 तक इनकी उत्पादन क्षमता 5 लाख टन हो गई। इस प्रकार सीमेन्ट उद्योग की वास्तविक प्रगति प्रथम महायुद्ध काल से प्रारंभ हुई और चार से दस वर्षों में सीमेन्ट के उत्पादन में कई गुना वृद्धि हुई।

स्त्रोत : (1) इकानॉमिक डेव्हलपमेन्ट ऑफ इंडिया

THE RESIDENCE OF A STREET AND ADDRESS OF THE PARTY OF THE

भारत में सन् 1904 में समुद्री सीपियों के माध्यम से सीमेन्ट बनाने का प्रयास किया गया किन्तु यह पूर्णतः सफल नहीं हुआ। इसके बाद मद्रास में साउथ इंडिया इंडस्ट्रीयल लिमिटेड की स्थापना की गई, इसे छोटी सीमेन्ट फैक्ट्री के रूप में स्थापित किया गया परंतु यह भी सफल नहीं हुई। देश को सीमेन्ट के आवश्यकता पूर्ति के लिए विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता था। प्रथम विश्व युद्ध के कारण सीमेन्ट की मांग में तेजी से वृद्धि हुई जिसकी पूर्ति के लिए सन् 1914 से 1918 तक तीन सीमेन्ट कारखानों की स्थापना की गई।

- (1) कटनी सीमेन्ट एवं औद्योगिक कंपनी मध्यप्रदेश के कटनी शहर में खटाहु समूह द्वारा इस कंपनी की स्थापना की गई।
- (2) इंडिया सीमेन्ट कंपनी- गुजरात राज्य के पोरबंदर नामक स्थान पर टाटा एंड संस द्वारा इस कंपनी की स्थापना की गई।
 - (3) बुंदी पोर्टलैण्ड सीमेन्ट कंपनी

इस सीमेन्ट कंपनी को लाखेरी के किलिक निक्सन द्वारा स्थापित किया गया।

उक्त तीनों कारखानों की स्थापना के समय इनका सम्मिलित उत्पादन 76 हजार टन था। सन् 1918 तक सीमेन्ट का उत्पादन 84 हजार टन हो गया। सीमेन्ट के उत्पादन को अग्रलिखित तालिका द्वारा स्पष्ट किया गया है।

सारिणी क्रमांक-1

सन्		उत्पादन	
1914		1 हजार टन	
1916		19 हजार टन	
1018		84 हजार टन	

सन् 1919 से 1924 के मध्य गुजरात, मध्यप्रदेश और बिहार में निम्न तीन नवीन सीमेन्ट इकाईयों की स्थापना की गई

(1) मध्य जावला - बिहार

(2) वायस्का – गुजरात

(3) बानमौर - मध्यप्रदेश

स्त्रोत : मनोरमा ईयर बुक

इन तीन नवीन कारखानों की मिश्रित उत्पादन क्षमता 3.63 लाख मीट्रिक टन थी। सन् 1924 के बाद सीमेन्ट की मांग में युद्ध कालीन तेजी समाप्त हो गयी एवं सीमेन्ट उद्योग को आंतरिक एवं बाह्य प्रतिस्पर्ध पिओं का सामना करना पड़ा। इस हेतु सरकार से संरक्षण मांगने पर सरकार द्वारा कोई सहायता नहीं दी गयी परिणामस्वरूप निम्नलिखित संघों की स्थापना की गई:-

(1) भारतीय सीमेन्ट उत्पादक संघ

भारतीय सीमेन्ट उत्पादकों के द्वारा विदेशी प्रतिस्पर्धा से बचने एवं उत्पादन तथा मूल्यों को नियंत्रित करने के उद्देश्य से 1925 में भारतीय सीमेन्ट उत्पादक संघ (इंडियन सीमेन्ट मैन्यूफैक्चरिंग एसोसिएशन) की स्थापना की गयी।

(2) कांक्रीट एसोसिएशन ऑफ इंडिया का गठन

कांक्रीट एसोसिएशन ऑफ इंडिया का गठन 1927 में किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य सीमेन्ट की मांग में वृद्धि करना था। वर्ष 1930 में सीमेन्ट बाजार कंपनी की स्थापना की गई। सन् 1935 तक उत्पादन क्षमता बढ़कर 8 लाख 10 हजार मीट्रिक टन हो चुकी थी। अगस्त 1934 को 11 सीमेन्ट कंपनी का विलय करके एसोसिएटेड सीमेन्ट कंपनी (एसीसी) की स्थापना हुई। यह संगठन विवेकीकरण की दृष्टि से किया गया एक महत्वपूर्ण प्रयास था। एसीसी द्वारा सीमेन्ट इकाईयों के विक्रय का कार्य किया जाता है। एसीसी की स्थापना के पश्चात देश का सीमेन्ट उद्योग क्रमशः एसीसी समूह एवं डालिमया जैन समूह में विभाजित हो गया फिर भी सीमेन्ट उत्पादकों का संघ पूर्णतः संगठित रहा।

भारतीय सीमेन्ट उद्योग के विकास का प्रमुख रहस्य यही है कि सीमेन्ट कंपनी पूर्णतया संगठित थी तथा विदेशी प्रतियोगिता से रक्षा करने में समर्थ थी। विदेशी व्यापारियों से प्रतियोगिता तीव अवश्य थी पर परस्पर सहयोग एवं उत्पादन लागत के कारण अधिक होने पर भारतीय सीमेन्ट की खपत बढ़ती गई और सीमेन्ट का आयात घटता गया। सन् 1925 एवं 1940 के बीच सीमेन्ट का आयात 1.5 लाख टन से घटकर 21 हजार टन रह गया। इस अवधि में सीमेन्ट का उत्पाइन 3.6 लाख टन से बढ़कर 17. 4 लाख टन हो गया।

सीमेन्ट उद्योग के प्रारंभ से स्वतंत्रता के पूर्व तक सीमेन्ट कारखानों की संख्या एवं उत्पादन निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट है-

स्त्रोत : (1) उद्यमिता विकास, सुश्री वोरा एन्स्टे

सारिणी क्रमांक -2¹ संयंव एवं उत्पादन

वर्ष	कारखानों की संख्या	उत्पादन लागत टनों में		
1914	3	.76		
1918	5	.84		
1925	9	3.60		
1930	11	5.63		
1940	21	17.40		
1947	18	14.70		

स्वतंत्रता के बाद सीमेन्ट उद्योगों का इतिहास एवं विकास

भारत के वृहद पैमाने के उद्योगों की शुरूआत उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुई, लेकिन उनका वास्तविक विकास 20 वीं शताब्दी में स्वतंत्रता के बाद हुआ, चूंकि स्वतंत्रता के बाद हमने अपने राष्ट्र के आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए नए सिरे से सोचा नई योजनाएं बनाई गई। चूंकि भारत प्रारंभ से ही कृषि प्रधान देश रहा है अतः उसके विकास एवं उत्पादन के लिये हमें कृषि के अतिरिक्त ऐसी अर्थव्यवस्था का निर्माण करना था जिसमें वृहद् एवं लघु कुटीर उद्योग को भी पर्याप्त स्थान मिल सके इसलिए हमने अपनी योजनाओं के माध्यम से वृहद पैमाने के उद्योगों पर भी ध्यान दिया। इसके अंतर्गत हमने लोहा इस्पात उद्योग, सीमेन्ट उद्योग, कोयला उद्योग, रासायनिक उद्योग एवं भारी इंजीनियरिंग उद्योगों को आधारभूत उद्योगों की श्रेणी में रखा है तथा सूती वस्त्र उद्योग, जूट उद्योग, चीनी उद्योग, कागज उद्योग को हमने उपभोक्ता माल उद्योग श्रेणी में रखा है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सीमेन्ट उद्योग के विकास पर पर्याप्त ध्यान दिया गया क्यों कि यह उद्योग देश की औद्योगिक एवं आर्थिक विकास का माप है एवं इसका आधार भूत उद्योगों में प्रमुख स्थान है। आज विकास का पैमाना बदल गया है। आज जिस देश में सीमेन्ट का जितना अधिक उत्पादन एवं उपयोग

स्त्रोत:- (1) उद्यमिता विकास

होता है, वह देश उतना ही अधिक विकसित एवं समृद्धशाली माना जाता है। भारत में ही नहीं वरन् विश्व के किसी भी देश की औद्योगिक प्रगित इस उद्योग के विकास के बिना संभव नहीं है। इस उद्योग से लाखों व्यक्तियों को रोजगार मिलता है वहीं सरकार को करोड़ों रूपयों की आय होती है। अतः इसके महत्व को देखते हुए स्वतंत्रता के बाद सरकार के द्वारा इस उद्योग के विकास के लिए विभिन्न योजनाओं के माध्यम से प्रयास किये जा रहे हैं।

पंचवर्षीय योजनाओं में विकास

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से ही विभिन्न कारणों जैसे द्वितीय महायुद्ध के फलस्वरूप देश की बिगड़ी हुई आर्थिक स्थिति, खाद्यान्न का अभाव आदि समस्याओं व कितनाईयों को हल करने के लिए यह अनुभव किया गया कि देश का विकास नियोजित ढंग से किया जाना चाहिए। इसके लिए आर्थिक कार्यक्रम समिति बनाई गई जिसकी सिफारिश के परिणाम स्वरूप 15 मार्च 1950 को योजना आयोग की विधिवत स्थापना की गई। इसके प्रथम अध्यक्ष प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू बने। इस आयोग ने 1 अप्रैल 51 से अपनी पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से देश में विकास कार्य आरंभ किया। इन्हीं पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत सीमेन्ट उद्योगों का विकास निम्नानुसार हुआ—

(1) प्रथम पंचवर्षीय योजना (1 अप्रैल 1951 से 31 मार्च 1956)

प्रथम योजनाकाल में सीमेन्ट का उत्पादन 27 लाख टन (1950 का स्तर) से बढ़कर 46 लाख टन हो गया। देश की कुल खपत का 80 प्रतिशत सन् 1956 में केवल केन्द्रीय एवं राज्य सरकार की योजनाओं की पूर्ति हेतु प्रयुक्त किया जाता था। इस समय सीमेन्ट की मांग बहुत अधिक थी जिसके कारण 1956 में 5 लाख टन सीमेन्ट का आयोजन किया गया था।

(2) द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1 अप्रैल 1956 से 31 मार्च 1961)

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत सीमेन्ट का उत्पादन 85 लाख था इस प्रकार दो योजनाओं की अविधि में सीमेन्ट का उत्पादन तिगुना से भी अधिक हो गया। इस अविध में लंका, मलाया, जावा एवं इरान को पर्याप्त मात्रा में भारत से सीमेन्ट का निर्यात किया जाने लगा।

स्त्रोत: - योजना पत्रिका के आधार पर

(3) तृतीय पंचवर्षीय योजना (1 अप्रैल 61 से 31 मार्च 66)

तीसरी योजना का कार्यकाल 1 अप्रैल 61 से 31 मार्च 1966 तक रहा। इस काल में सीमेन्ट का वास्तविक उत्पादन 1 करोड़ टन तक ही बढ़ सका। 1 मार्च 1966 के अंत में भरतीय उद्योग की क्षमता 1.20 करोड़ टन की तथा कुल मिलाकर इस उद्योग में 60 करोड़ की पूंजी लगी हुई थी। सन् 1965 में भारत सरकार द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र में सीमेन्ट कार्पोरेशन की स्थापना की गई। इसका प्रमुख कार्य सीमेन्ट उद्योग में अनुसंधान का कार्य चूने के पत्थर के नये क्षेत्रों की खोज करना तथा सीमेन्ट के वितरण की उपयुक्त व्यवस्था करना है।

तीन एक वर्षीय योजनाएं

तीन पंचवर्षीय योजनाओं के बाद भारत सरकार के द्वारा कुछ कठिनाईयों के कारण तीन एक वर्षीय योजनाएं चलायी गयी। इन एक वर्षीय योजनाओं में सीमेन्ट का उत्पादन निम्न तालिका के अनुसार रहा– सारणी क्रमांक–3

वर्ष		उत्पादन	(लागत	टन	में)
1966-67			111		
1967-68	. 266		115		
1968-69			112		
1992-93			132		
1993-94			147.70)	

स्वतंत्रता के बाद सन् 1947 से 1957 तक सीमेन्ट उत्पादन की वृद्धि की दर 15 प्रतिशत रही जबिक 1957 से 1967 तक इसकी वृद्धि दर 6.5 प्रतिशत ही रही। इस तरह सीमेन्ट उत्पादन की औसत वृद्धि दर 9 प्रतिशत रही। देश में 44 सीमेन्ट के कारखनों में 31 दिसम्बर 1968 को 1 लाख से अधिक श्रमिक कार्य कर रहे थे। सीमेन्ट कार्पोरेशन तथ राज्य व्यापार निगम ने संयुक्त रूप से सितम्बर 1968 में 2. 58 लाख टन सीमेन्ट निर्यात हेतु कुवैत, श्रीलंका तथा अन्य पश्चिमी एशियाई देशों से अनुबंध किये हैं। इससे सीमेन्ट उद्योग को 34 करोड़ रूपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई तथा 1954 से निर्यात का नया अध

स्त्रोतः- मनोरमा ईयर बुक, 1995

याय आरंभ हुआ तथा 1954 से 1968 के बीच सीमेन्ट उद्योग की क्षमता 44.5 लाख टन से बढ़कर 1. 45 करोड़ टन तथा उत्पादन 44 लाख टन से बढ़कर 1.27 करोड़ हो गया।

सीमेन्ट मूल्य तथा वितरण पर 1965 के अंत तक राज्य का नियंत्रण था, केवल अधिकृत विक्रेता ही नियंत्रित मूल्य पर सीमेन्ट बेच सकते थे, परंतु आर्थिक नियोजन के दौरान राजकीय तथा निजी दोनों क्षेत्रों में निर्माण कार्य बहुत बड़े पैमाने पर हुए और जिसके फलस्वरूप सीमेन्ट की कालाबाजारी बहुत होती थी। काफी समय तक सीमेन्ट कारखानों के व्यवस्थापकों की ओर से कंद्रोल की समाप्ति की मांग के प्रति सरकार का रवैया उपेक्षापूर्ण रहा। सन् 1966 के आरंभ से ही सीमेन्ट के वितरण पर चल रहा सरकारी नियंत्रण हटा दिया गया, परंतु इससे समस्या हल नहीं हो सकी तथ 1968 में पुनः सीमेन्ट के वितरण का कार्य राज्य द्वारा स्थापित सीमेन्ट निगम द्वारा ले लिया गया। इसके साथ ही केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों को अनुबंधित मूल्य पर सीमेन्ट की पूर्ति करने के आदेश कारखानों को दिए गए। शेष सीमेन्ट राज्य द्वारा स्वीकृत मूल्य पर खुले बाजार में बेचने की छूट दी गई सन् 1966 से 1968 तक सीमेन्ट का वितरण निम्नांकित हुआ-

सारणी क्रमांक-4

	(लाख टन में)			
सीमेन्ट की पूर्ति	1966	1967	1968	
(अ) अनुबंधित मूल्य	पर			
(1) केन्द्रीय सरकार	30.00	25.1	12.1	
(२) राज्य सरकार	16.20	13.7	5.9	
योग	46.20	38.8	18.0	
(ब) अन्य उपभोक्ता				
(खुले बाजारों में)	62.05	71.9	37.9	
कुल योग	108.25	110.07	55.9	

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(4) चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1 अप्रैल 1969 से 31 मार्च 1974)

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में विकास संबंधी कार्यों हेतु सीमेन्ट की मांग को देखते हुए उत्पादन का लक्ष्य 180 लाख टन निर्धारित किया गया, इसके साथ ही उत्पादन क्षमता में वृद्धि के लिए 19 करोड़ रूपये की मशीनरी के निर्माण की व्यवस्था की गई। इसके अतिरिक्त योजना के अंत तक 10 लाख टन प्रतिवर्ष सीमेन्ट के निर्यात का लक्ष्य रखा गया परंतु वास्तविक उत्पादन 147 लाख टन हुआ। इस समय सीमेन्ट कारखानों की संख्या 55 थी।

(5) पांचवी पंचवर्षीय योजना (1 अप्रैल 74 से 31 मार्च 79)

पांचवी पंचवर्षीय योजना का कार्यकाल 1 अप्रैल 1974 से 31 मार्च 1979 तक था। सत्ता परिवर्तन के कारण इसके संचालन में कुछ किनाईयां हुई। इस योजना में उद्योगों में 10,120 करोड़ रूपये अर्थात् संपूर्ण व्यय का 25.9 प्रतिशत खर्च करना था, परंतु वास्तविक व्यय 9,581 अर्थात् 24.3 प्रतिशत ही खर्च हुआ। इसमें सीमेन्ट उद्योग पर किये गये व्यय सिम्मिलित थे।

पांचवी योजना काल में सीमेन्ट का लक्ष्य 208 लाख टन रखा गया था, परंतु वास्तविक उत्पादन 193 लाख टन ही हुआ। इस योजना के प्रारंभ में सीमेन्ट कारखानों की संख्या 55 थी जो अंत तक केवल 58 ही हो सकी।

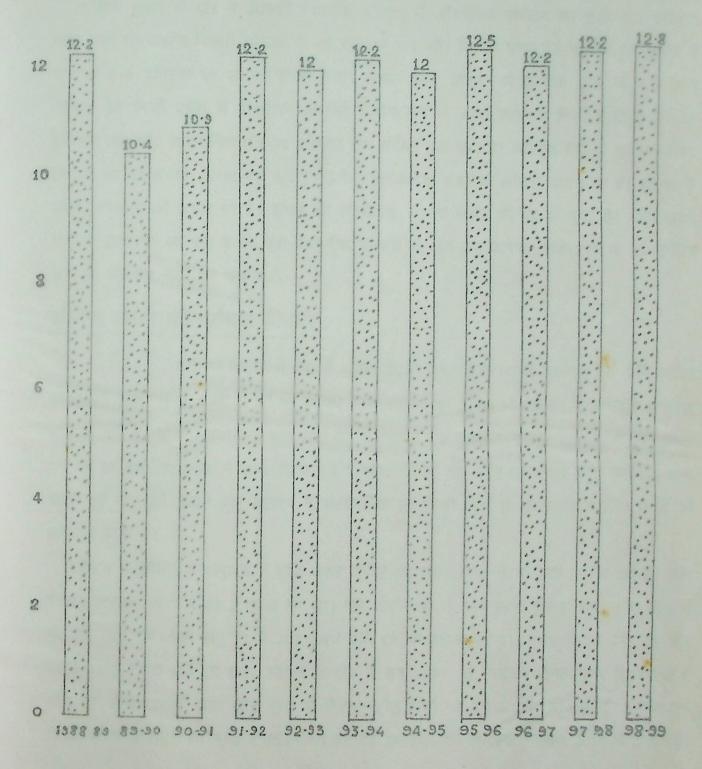
(6) छठवीं पंचवर्षीय योजना (1 अप्रैल 80 से 31 मार्च 85)

छठवीं पंचवर्षीय योजना का कार्यकाल 1 अप्रैल 80 से 31 मार्च 85 तक रखा गया। इस योजना में उत्पादन का लक्ष्य 345 लाख टन रखा गया परंतु वास्तविक उत्पादन 305 लाख टन ही हुआ। इस योजना काल में सीमेन्ट के 29 नये कारखाने लगाये गए। इसमें सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों द्वारा संयुक्त रूप से लगाये गए।

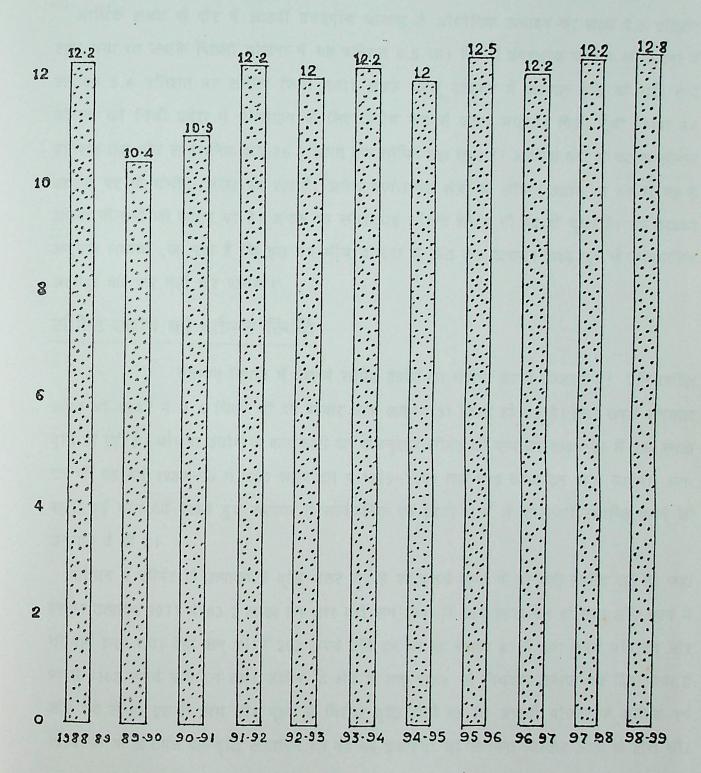
(7) सातवीं पंचवर्षीय योजना (1 अप्रैल 85 से 31 मार्च 91 तक)

सातवीं पंचवर्षीय योजना काल में सीमेन्ट कारखानों की संख्या में 31 कारखाने निजी एवं सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों द्वारा मिलाकर स्थापित किए गए। यह संख्या 89 से बढ़कर 120 तक हो गई। उत्पादन का लक्ष्य 566.9 निर्धारित किया गया था परंतु वास्तविक उत्पादन 566 लाख टन हुआ।

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection. 14



Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.



Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(8) (आठवीं एवं नौंवी पंचवर्षीय योजनाएं) (1992 से 1997)

आर्थिक संकट के दौर में आठवीं पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक उत्पादन का लक्ष्य 7.5 प्रतिशत रखा गया था जबिक पिछली योजना में यह प्रतिशत 8.5 था। पिछली पंचवर्षीय योजना की तुलना में उत्पादन 8.4 प्रतिशत पर सीमित किया गया। सकल घरेलू उत्पादन में आयात वृद्धि की गई। नवीं योजना को निजी प्रवेश में प्रोत्साहन के लिए विशेष रूप से जाना जाएगा। निजी पूंजी निवेश 64 प्रतिशत तक और सार्वजिनक क्षेत्र 36 प्रतिशत तक सीमित रख गया है। आर्थिक मंदी के कारण सीमेन्ट उद्योगों पर भी गंभीर असर पड़ रहा है। अनेक सार्वजिनक क्षेत्रों के सीमेन्ट उद्योग या बंद हो गए हैं अथवा नीलामी की कगार पर है। अंचल का सीसीआई सीमेन्ट संयंत्र भी बंद हो चुका है। यह देखकर अनुमान लगाया जा रहा है कि इस पंचवर्षीय योजना के अंत तक उत्पादन लक्ष्य पूर्व के आनुपातिक आंकड़ों को पार नहीं कर पायेगा।

सीमेन्ट उद्योग की वर्तमान स्थिति

वर्तमान स्थिति में देश में सीमेंट उद्योग का भविष्य काफी उज्जवल है। प्रति व्यक्ति खपत जो 1947 में 4.4 किलो थी वह बढ़कर आज लगभग 51 किलो हो गई है। तथा सबसे लगातार वृद्धि हो रही है। योजना उद्योग के कार्यकारी दल केअनुसार सीमेंट की मांग जो 1980-81 में 280 लाख टन थी वह वर्ष 1989-90 में 490 लाख टन व 1999-2000 तक 870 लाख टन पहुंच जाएंगी। अतः बढ़ती हुई मांग को देखते हुये सरकार ने सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों में कारखाने स्थापित करने की अनुमति दे दी है।

वर्तमान में सीमेंट के उत्पादन में वृद्धि जरुर जुई है पर इसके दामों में भी यही प्रवृत्ति रही है। जहां इसका उत्पादन 1971 में 83.2 लाख टन था। वहीं सन 1991 में 567 लाख टन हो गया और मूल्य में भी वहीं रुख रहा। वहां सन् 71 में 202 रुपये प्रति टन था वह बढ़कर 81 में 501 रुपये प्रति टन और 91 में 1165 रुपये प्रति टन रहा। सीमेन्ट के क्षेत्र में सन् 1989 से नियंत्रण समाप्त कर दिया गया हैं और तब से ही इसकी मांग और मूल्य में निरंतर वृद्धि होती गई है। आठवीं योजना के अंतर्गत वर्ष 1990-91 के अन्तर्गत जो वृद्धि संभावित थी वह नई इकाईयों की स्थापना विस्तार आदि के द्वारा थी।

स्त्रोत :- (1) मनोरमा ईयर वुक के आधार पर।

नई इकाईयों के रूप में सीसीआई दिल्ली और दामोदर सीमेंट थी 91-92 में जो विस्तार की योजनायें थी उनमें सेन्वुरी सीमेंट, तिल्दा 2 लाख टन, उड़ीसा सीमेंट 2.75 और रेमंड सीमेंट 6 लाख टन था। 1992-93 के जो विस्तार कार्यक्रम है वह पिछले दो वर्षों से ज्यादा है। इस तरह 9293 में जो कुल वृद्धि होगी वह 49.05 लाख टन होगी और कुल उत्पादन क्षमता बढ़कर 642.35 लाख टन हो जायेगी। इसी तरह 1993-94 में कुल उत्पादन बढ़कर 709.65 लाख टन होना संभावित है।

सीमेन्ट की आवश्यकता एवं महत्व

(अ) वैदिक परंपरा में-

ईसा से ढाई हजार वर्ष पूर्व आज की तरह सीमेन्ट की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। भवन या किसी संरचना के स्थाई होने की कल्पना उस समय मानव ने नहीं की थी। वैदिक परंपरा में संरचनाएं कैसी होती थी इसकी तस्वीर शायद इसीलिए आज तक पूरी तरह स्पष्ट नहीं है। प्रमाणिक तथ्य न होने की स्थिति में बाद के वर्षों के ऐतिहासिक प्रमाण से इस काल की संरचना का अनुमान लगाया जाता है। सीमेंट जिसे आज हम औद्योगीकरण और आधुनिक जीवन से सीधा जुड़ा पाते हैं। वह प्रारंभ में केवल सख्त मिट्टी का ही रूप मानी जाती थी। सृष्टि की शुरुआत से यह माना जाता है कि मानव की स्थापना के विकास में हजारों वर्ष लगे हैं। जंगलों में स्वच्छ्द विचरण करने वाले मानव ने अपने लिए सुरक्षित ठिकानों की तलाश की तब घांस-फूंस से ढकी लकड़ी की चारदीवारी बनाई गई। वैदिक काल से पूर्व मानव के रहन सहन का क्या तरीका था इसके प्रमाण नहीं मिलते। वैदिक काल में इतिहासविद जो अनुमान लगाते हैं उसके मुताबिक वैदिक संरचनाएं मिट्टी व लकड़ी की हुआ करती थी। सीमेन्ट के अध्ययन के समय मिट्टी के परिचर्तित होने के क्रम को ध्यान रखना जरुरी है। वैदिक संरचनाओं के अध्ययन से पता चलता है कि कान्छ तकनीक का उपयोग भी इस काल में किया जाने लगा था। माना जाता है कि घांस फूंस व बांस की झोपड़ीनुमा संरचना को वायुरोधक बनाने की दिशा में सबमे मिट्टी के लेप का उपयोग किया गया। मिट्टी का लेप हालांकि स्थाई नहीं होता था लेकिन वह पानी व वायुरोधी के उपयोग में लाया जाता था। पुराविद मानते हैं कि प्राकृतिक आपदाओं की अधिकता ने उस समय लगातार तबाही की लेकिन जंगल की आग ने कई नए प्रयोग भी सिखाएं। आग से मिट्टी का सख्त हो जाना मानव के लिए कोई कम आश्चर्यजनक घटना नहीं थी। मिट्टी के सख्त टुकड़ों ने मानव

को यह सिखाने में मदद दी कि कच्ची मिट्टी के बजाए यदि आग में पकी मिट्टी का उपयोग किया जाये तो वह ज्यादा स्थाई होगा। इसी के बाद से मिट्टी की संरचना बनाने का क्रम शुरु हुआ। इस दौरान मानव के संगठित होकर रहने का क्रम भी प्रारंभ हुआ। सैंधव सभ्यता में आर्यों की जिस जीवन शैली के प्रमाण मिलते हैं उसे ग्रामीण सभ्यता की शुरुआत कहा जा सकता है। ऋग्वेद में जिस 'पुर' शब्द का उल्लेख मिलता है वह भी इन्हीं संरचनाओं की ओर संकेत करता है। इस काल में भी नगरीय जीवन को व्यवस्थित करने ज्यादातर मिट्टी का सामान्य उपयोग किया गया। तब भी भवननिर्माण के लिये स्थाई तत्व की जरुरत विद्यमान थी। मिट्टी से ईट बनाकर उसे पकाना अथवा ईटों को एक संरचना का रुप देकर एक साथ पकाने की तकनीक भी मिट्टी के पकने से सख्त व स्थाई होने की तकनीक का परिष्कृत रूप है। बाद के वर्षों में मानव ने ज्वाइटिंग मटेरियल ईजाद करने की दिशा में कार्य किया। यह सब कुछ एक तरह से प्रकृति प्रदत्त कहा जा सकता है। मिट्टी की संरचना के बाद भी सीमेंट अथवा किसी ऐसे तत्वों की खोज जारी रही जिससे निर्माण स्थाई हो सके। चूने की ताकत को भी मानव ने इसी काल के बाद समझा। तब आज की तरह चूने की खदानें नहीं थीं, कुछ स्थानों पर मिलने वाले चूने को रेत में मिलाने से संरचनाओं को स्थाई करने में जो मदद मिली तब इस तकनीक को आगे बढ़ाया गया। सिंघु सभ्यता और हड़प्पा युगीन अवशेषों से यह प्रमाण मिलते हैं। उस समय नगरीय जीवन की शुरुआत हो चुकी थी। मानव जंगल छोड़कर अपने आपको को संगठित कर रहने की शुरुआत कर चुका था, लेकिन ज्वाइटिंग मीडिया की तलाश उस समय भी वैसी ही थी जैसी पूर्व और बाद के वर्षों में। जिप्सम, बिटुमिन, जैसे तत्वों का उपयोग भी किया गया जिसको संस्कृत साहित्य में गिरीपुष्पक के नाम से जाना जाता है। इससे पूर्व तक मानव मिट्टी अथवा वनस्पति पर ही आश्रित था। स्थापत्य की दृष्टि से विचार किया जाये तो यह कहा जा सकता है कि प्रकृति के आक्रमणों से बचने के कवच के रूप में सबसे पहले भवन की संरचना की गई। इसी समय प्रथम बार संरचना के लिये तत्वों का संग्रहण किया गया। हमारी प्राचीन संस्कृति में भवन रचना प्रासाद रचना की तरह प्रचलित हुई। समरांगण सूत्रधार में जिन भवन रचनाओं के सिद्धांतों का उल्लेख किया गया है उसमें देववास्तु जन-वास्तु तथा राज वास्तु तीनों का जिक्र मिलता है।'

भूतल पर प्रथम भवन-

सीमेंट की आवश्यकता के साथ भवन निर्माण व उसके लिए आवश्यक सामाग्रियों का संग्रहण का सीधा संबंध है। प्राचीन काल में भवन की आवश्यकता क्यों पड़ी। इसके लिये समरांगण सूत्रधार के भूतल पर प्रथम के जन्म अथवा मानव आवास के प्रथम विकास का संक्षिप्त जिक्र इस

स्त्रोत - (1) भारतीय इतिहास - कामेश्वर प्रसाद

⁽²⁾ नगर निवेश के आधार पर



शोध में करना प्रासंगिक होगा। समरांगण सूत्रधार (सहदेवाधिकार) में बताया गया है कि भारत के लोग घने जंगलों में सरिताओं के कूलों पर पर्वतों के शिखर अथवा उनकी उपत्यकाओं में रहते थे। एक बार उन लोगों ने देवलोक में प्रवेश किया और वहां विचरण करते हुये विमानाकृति दिव्य कल्पवृक्षों के नीचे विहार करने लगे, और उन्हीं की छाया में रहने लगे। मानवों और देवों का यह साहचर्य बहुत दिन तक चला। कालान्तर में मानवों ने मर्यादा भूलकर देवों की अवज्ञा की तो देवताओं ने मानव को पुनः भूमि पर भेज दिया। यह स्थिति मानव के लिये विषदपूर्ण थी, कल्पवृक्ष की छाया, आहार विहार, बसंत का आनंद, सुदरियों का साहचर्य, सर्वत्र सुंदर साम्राज्य का आनंद मावन के लिये भूलना आसान नहीं था लेकिन देवों की अवज्ञा के कारण मानव की दिवंगत शक्ति व दिव्यभाव लुप्त हो गये। फिर देवीकृपा से उनकी प्राणरक्षा के लिये एक वृक्ष का प्रादुर्भाव हुआ। उसी से मानव ने अपनी प्राण रक्षा की। दैव-दुर्विपाक से यह वृक्ष भी विलीन हो गया और भूतल पर शालि तंतुलों का उदय हुआ। वे खाने में स्वादिष्ट थे। इसके विलीन होने के भय से मानव ने उसे संरक्षित करने की विधि सोची। यह मनोवृत्ति मानव के लिये अच्छी साबित नहीं हुई, इस विचार के बाद अन्य विकार भी जन्म लेते गये। लोभ की इस मनोकृति ने कालान्तर में मन्मथ के जन्मकेलिये उर्वरा भूमि उत्पन्न की, और मानव का स्त्रियों के प्रति आकर्षण प्रारंभ हो गया इंद्र अथवा मिथुन की परंपरा मानव में भी प्रारंभ हो गई। द्वंद ही क्लेश व दुख का घर है, अतः जीवन रक्षण के एकमाव साधन शालि में विकार उत्पन्न हो गया। सत्वगुण का वह एकमात्र अधिराज्य समाप्त हो गया। मनुष्यों की पुण्यश्लोकता समाप्त हो गई, अमस्ता भी विलुप्त हुई। उनके शरीर रोग व शोक से आकुल हो गये। तुषधाथ के सेवन से उनमें मलप्रकृति का प्रथम प्रादुर्भाव हुआ। अब तुषधाथ भी समाप्त हो गया। कंदमूल छोड़कर उदरपूर्ति का कोई साधन नहीं रहा। एक ऋतु के स्थान पर छः ऋतुएं होने लगी। सर्दी-गर्मी आदि दैविक क्लेशों के साथ व्याघ सर्प आदि दुःखों की भी कमी नहीं रही, इस कारण मानव अपनी रक्षा के लिये कृत्रिम गृहों की रचना की। वृक्षों को काटकर छावनी तैयार की इस तरह भूतल पर प्रथम छाल (शाल) भवन तैयार हुआ।

स्त्रोत :- (1) भारतीय स्थापत्य डॉ. द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल, पृष्ठ 128

the same is being in the regard to the same of the same in section 1.



'वृक्ष' प्रथम मानव भवन-

भवनोत्पत्ति के अख्यान पुराणों में भी मिलते हैं। मार्कण्डेय तथा वायु पुराण समारांगण के इसी आख्यान के प्रतीक है। मानव भवन का प्रथम माडल वृक्ष ही था। मत्स्यपुराण में भी इसी तथ्य का उद्घाटन है। उसमें शाल भवनों के शाल शब्द की निष्पत्ति की प्रकृति पर शाखाओं का परिणाम प्रकीर्तित की गई है। शाखाओं के लंबे चौड़े उपर एवं परस्पर छादन से यह छाद्यमय भवन शाल भवनों के नाम से जाने गए। अर्थवेद में 'शालासूक्त' में इन शाल भवनों के सर्वप्राचीन विन्यास विवरण प्राप्त होते हैं। मंत्रशाला यज्ञशाला, पाठशाला, गजशाला पाकशाला आदि शब्द इसी परंपरा के परिचायक हैं।

कल्पसूत्र साहित्य मानसार आदि में भी आवास भवन की विन्यास प्रक्रिया का जिक्र है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि मानव सभ्यता में आवास के लिए वनस्पति ने प्रथम उपकरण प्रदान किया। वृक्षों की पूजा का इतिहास प्राचीनतम है मानव सभ्यता के विकास में वनस्पति व पशु संसार का काफी बड़ा योग है। पशुओं ने मानव को आर्थिक आधार दिए वहीं वनस्पति ने आवास की रचना की। पुराणों के आख्यान वेदों के सूक्त सूत्रों के आदेश इसी मर्मद्य को प्रदर्शित करते हैं।

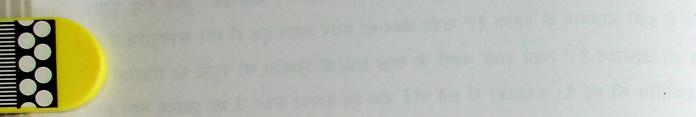
यह वैज्ञानिक तथ्य भी है कि वनस्पति व पशुओं ने ही मानव सभ्यता को विकसित करने में अहम भूमिका निभाई है। बाद में अपनी सुरक्षा के लिए उसने उपलब्ध साधनों से पुख्ता संरचना की दिशा में कार्य किया। प्रकृति ने भी उसे इस कार्य में सहयोग दिया है। सबसे बेजोड़ खनिज चूने से बनने वाले गारे के उपयोग को एक तरह से सीमेन्ट की प्रारंभिक प्रक्रिया माना जा सकता है। वैदिक काल में बने स्तूप, मंदिरों में इन तत्वों का उपयोग सीमेन्ट के तौर पर किया गया।

आध्निक काल में

वैदिक काल और उसके बाद सीमेन्ट सदृश्य जिस तत्व की आवश्यकता केवल भवन संरचनाओं को स्थायी करने हेतु महसूस की गई वहीं अब सीमेन्ट विकास के लिए सबसे आवश्यक

स्त्रोत:- (1) मार्कण्डेय पुराण ४९ एवं वायुपुराण ८

⁽²⁾ मत्स्य पुराण 783-120



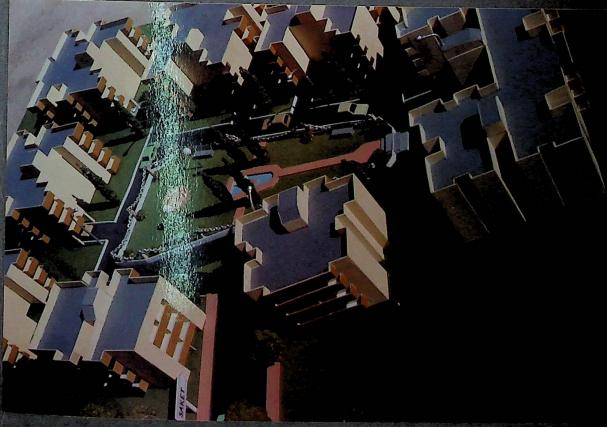


बहुमंजिले भवन





बहुभैजिले मवन





सामग्री का रूप ले चुकी है। स्वतंत्रता के पूर्व व बाद के औद्योगिक व विकास योजनाओं के आंकड़े देखे जाएं तो सीमेन्ट उद्योगों की आवश्यकता व महत्व को आसानी से समझा जा सकता है। आज सीमेन्ट विकास का माप बन चुकी है। सड़क भवन और सामान्य निर्माण कार्य ही नहीं औद्योगिक विकास, बांध, विद्युत परियोजनाओं सबकी कल्पना भी सीमेन्ट के बगैर नहीं की जा सकती। आज पूरे विश्व में सीमेन्ट तकनीक को अत्याधुनिक बनाने की होड़ मची हुई है। आर्थिक उदारीकरण की नीति लागू की गई, जिसमें पूरे विश्व में व्यापार जगत प्रतिस्पर्धा में एक-दूसरे से आगे बढ़ने की कोशिश में है। सीमेन्ट उद्योग ऐसा उद्योग है जिससे पूरे औद्योगिक विकास की जड़े जुड़ी हुई है। आज के आर्थिक परिदृश्य में पूरा ढांचा उद्योगों पर टिका हुआ है। 1914 में जब भारत में पहली बार सीमेन्ट कारखानों की शुरूआत हुई थी तब यह महसूस नहीं किया गया था कि विशव की प्रतिस्पर्धा में भारत को भी शामिल होना पड़ेगा। तब मात्र 1 से 2 हजार टन सीमेन्ट का उत्पादन हुआ। जावला (बिहार) वायस्का (गुजरात) बानमौर (मध्यप्रदेश) में सीमेन्ट संयंत्रों की स्थापना के समय उत्पादन लक्ष्य बढ़कर 3.63 लाख मीट्रिक टन तक पहुंच गया। 1925 में सीमेन्ट उत्पादन संघ की स्थापना की गई। 1995 में देश में सीमेन्ट उत्पादन १४७.७० लाख टन तक पहुंच गया। अब विश्व की चुनिंदा कंपनियां भारत में आकर सीमेन्ट उत्पादन कर रही है। अब गगनचुंबी ईमारतों में ही नहीं बल्कि उद्योग व विकास योजनाओं में सर्वाधिक सीमेन्ट का उपयोग हो रहा है। इसीलिए यह उद्योग भारतीय अर्थव्यवस्था का अहम हिस्सा बन गया है। भारतीय अर्थव्यवस्था अब विशव की पांचवी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था हो चुकी है। अंतराष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा प्रोत्साहित क्रय शक्ति समतुल्यता परिचलन पद्धति के आधार पर भारतीय अर्थव्यवस्था है। आर्थिक सुधार की नईनीति लागू होने के बाद प्रत्यक्ष वास्तविक विदेशी पूंजी निवेश में सबसे ज्यादा हिस्सा अप्रवासी भारतीयों का रहा है। उद्योग मंत्रालय के सूत्रों के अनुसार वर्ष 1993 में 17 अरब 86 करोड़ की प्रत्यक्ष विदेशी पूंजी निवेश में से 5 अरब 59 करोड़ रूपए का निवेश अप्रवासी भारतीयों का ही रहा है। इस स्थिति के पीछे भारतीय औद्योगिक विकास ही सबसे बड़ा कारण है। नवमीं योजना में केन्द्र सरकार ने निजी पूंजी निवेश की दिशा में और भी उल्लेखनीय कदम उठाएं हैं।

स्त्रोत: - (1) विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार (विकास पत्रिका)

अंचल में वैदिक परंपरा की उल्लेखनीय संरचनाएं

वैदिक काल में अंचल की तस्वीर कैसी रही होगी यह कह पाना कठिन है, क्यों कि ऋग्वेद में न तो नर्मदा का उल्लेख मिलता है और न ही विंध्याचल का। किंतु उत्तर वैदिक काल में क्षेत्र के संबंध में जानकारी अवश्य मिलती है। ब्राम्हण ग्रन्थों में यहां घने जंगलों में निवास करने वाली अनार्य जातियों का जिक्र आता है। आर्यों का यहां वैदिक काल में प्रवेश नहीं हुआ, लेकिन वैदिक संस्कृति की परछाई यहां जरूर पहुंची। भले ही इस सफर में सैकड़ों वर्ष बीत गए। अंचल में छठवीं—आठवीं सदी से लेकर अठारहवीं सदी तक के जो मंदिर मौजूद हैं उनसे न केवल वैदिक काल के उत्कृष्ट शिल्प का खुलासा होता है बल्कि संरचना की तकनीक का संकेत भी मिलता है। जब संरचनाओं को जोड़ने का कोई जरिया नहीं था तब शिल्पकारों ने कहीं संतुलन तो कहीं काष्ठ एवं होल साकेट तकनीक से ढांचा तैयार किया। सिरपुर, जांजगीर, पाली, रतनपुर, भोरमदेव, देवरबीजा आदि के प्राचीन प्रासादों में वैदिक तकनीक के दर्शन होते हैं। सीमेंट की जगह बारीक मिट्टी, चूना गारा आदि से निर्मित 18वीं सदी के भवन व अन्य संरचनाएं भी अंचल में मौजूद हैं। बेजोड़ शिल्पकला के साथ—साथ यह संरचनाएं स्थापत्य सिद्धांतों को भी प्रतिपादित करती हैं।

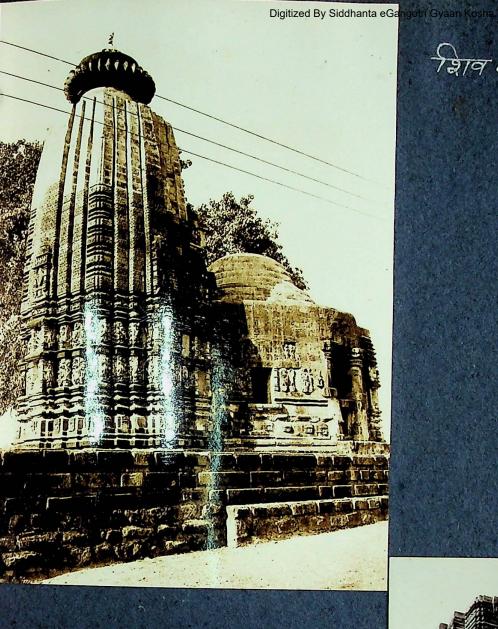
(1) पाली का मंदिर बिलासपुर से 50 किमी. दूर कटघोरा मार्ग पर चब्तरे पर यह मंदिर निर्मित है। 9वीं सदी में निर्मित इस मंदिर का पुर्निनर्माण 1090 से 1190 ई. के बीच हुआ। मंदिर में गर्भगृह और मंडप अंग विद्यमान हैं किंतु मूलतः बाणवंशी शासकों द्वारा निर्मित मंदिर का जीणोंद्वार कल्युरी शासक जाजल्वदेव द्वारा कराया गया हैं मंदिर के शिखर का उपरी कुछ हिस्सा व मंडप केद्रीय शासन द्वारा संरक्षण के बाद कराए गए अनुरक्षण का परिणाम है। कल्युरी स्थापत्य तकनीक के अनुरुष ही मंदिर की भित्तियों को उंचाई पर उठाते हुये पत्थरों को आपस में जोड़ने के लिये क्लैम्प और नैलिंग का उपयोग किया गया है। भार संतुलन का भी ध्यान मंदिर के उत्सेध को विकसित करते हुये रखा गया है। निर्माण तकनीक में संभवतः अलंकृत वाध्यभाग और सपाट भीतरी हिस्सा दोनों अलग अलग दीवारें हैं। जिनके बीच के पत्थरों के कत्तल और छीलन टुकड़े डालकर भरा गया है। इस मंदिर के गर्भ गृह

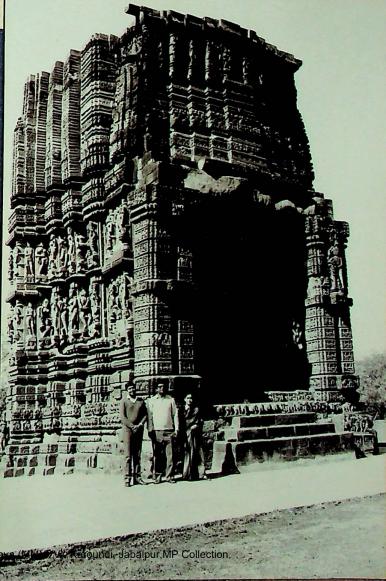
शिष मंदिय पाली

विष्ण में हिन जांजनी

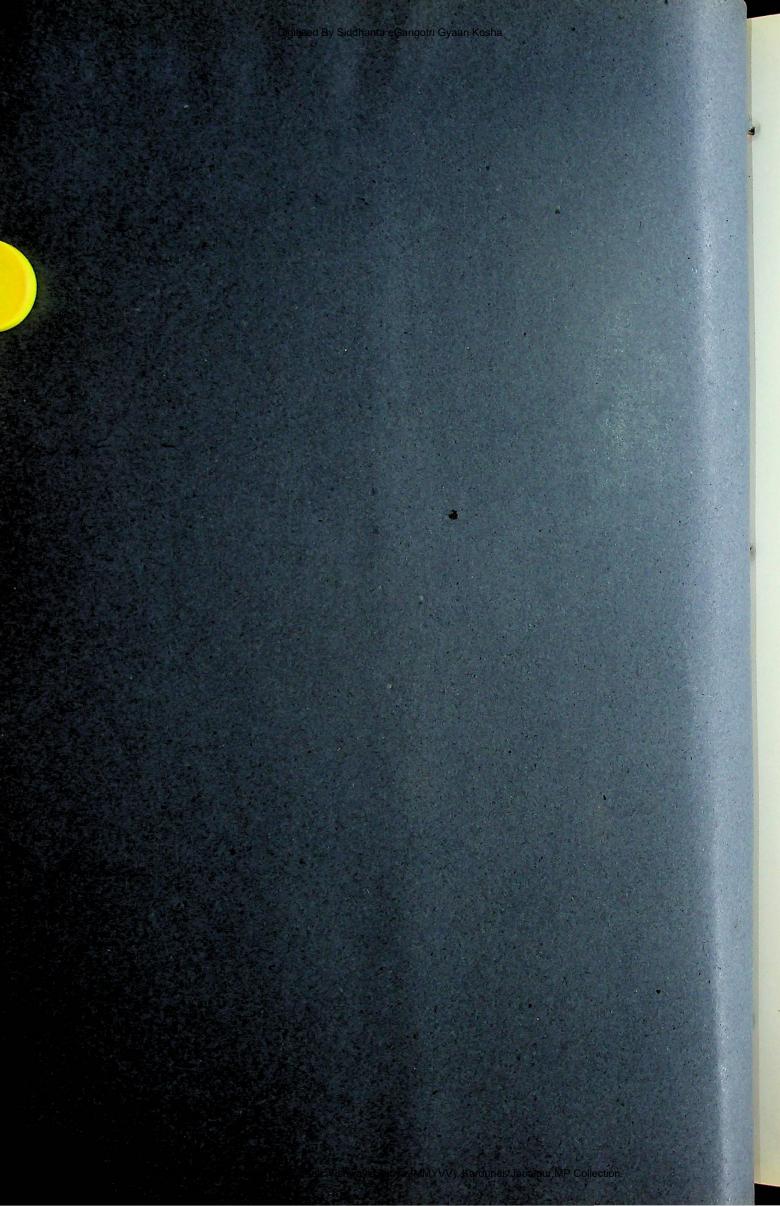
CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.







विळा में दिय-जॉजगीर



के द्वार पर सभा मंडप के स्तंभों और छत पर तथा गर्भ गृह की बाहरी दीवार पर सुंदर शिल्पकारी की गयी है। प्राचीन काल के सुंदर देवालयों में इसकी गणना की जाती है। करीब ढाई सौ वर्ष पूर्व यह काफी टूट फूट चुका था तब इसका जीणों द्वार किया गया। अब सभा मंडप में चार स्तंभ दिखायी दे रहे हैं जिनमें से अगल-बगल के अठकोने और शिल्पकारी किए गए स्तंभ पहले के हैं। सामने के चौकन स्तंभ प्रथम जाजल्व देव ने बनवाएं थे। दोनों स्तंभों पर शिल्पकारी में अंतर दिखायी देता है। यह मंडप गृलतः चौकोना था किन्तु बाद में बनायी गयी दीवारों के कारण यह अष्टकोणीय हो गया। इन दीवारों और स्तंभों पर श्रीमञ्जाल्लदेवस्य कीर्तिः अंकित है। इस मंदिर में छत पर 64 योगनियों की मूर्ति सुशोभित है। 1

(2) विष्ण् मंदिर जांजगीर- यह मंदिर जिला मुख्यालय जांजगीर में मीना तालाब के किनारे स्थित है, शिलालेखों से प्राप्त जानकारी के अनुसार रतनपुर के कल्चुरी शासक जाजल्वदेव द्वारा निर्मित मंदिर के उल्लेख को इस मंदिर के साथ समीकृत किया गया है। मंदिर उंचे विशाल चब्तरे पर निर्मित है। जिसमें मात्र गर्भगृह का भाग अवशिष्ट है तथा शिखर का उपरी हिस्सा भी विद्यमान नहीं है, अनुरक्षण कार्यों के दौरान वर्तमान संरचना के उपर छत ढाल दी गई है। प्रवेशद्वार के उपर विशाल और बिना रंग के पत्थर तथा प्रवेशद्वार के दोनों पाश्वाँ पर निर्मित अर्धस्तम्भों से अनुमान होता हैं कि मूलसंरचना में मंडप की योजना अवश्य रही होगी। इस मंदिर के निर्माण तकनीक हेतु भार संतुलन के साथ साथ क्लैपिंग और नेलिंग विधि का ही इस्तेमाल प्रतीत होता है। इसका निर्माण 1135 से 1165 ई. के बीच हुआ। यहां कलचुरी नरेश प्रथम द्वारा निर्मित दो प्रासाद हैं एक अपूर्ण है किंतु उसका शिल्प अद्भूत और दर्शनीय है भिम्बा नामक विशाल तालाब के किनारे स्थित इस मंदिर में नीचे से उपर तक देवों, मनुष्यों, पशुओं की आकृतियां खुदी हुई हैं। निचले हिस्से में हाथियों की कतार उत्कीर्ण हैं, गर्भगृह की गणेश पट्टी में ब्रम्हा, विष्णु और शिव की मूर्तियां हैं तथा उनमें नौ ग्रहों की आकृतियां बनी हुई है। बाहरी दीवार पर विष्ण् के वाराह, नृसिंह आदि दसावतार की मूर्तियां हैं। दोनों में किन्नरियों तथा स्त्रियों की मूर्तियां हैं। दो कतारों में खचित इन मूर्तियों में वादक, नर्तकी तथा अप्सरा आदि की मूर्तियां हैं। पश्चिमी दीवार की पीठ पर अर्थात् देवालय की भीतरी दीवार पर मध्य भाग में भगवान सूर्य देव की मूर्ति विराजमान है। ऐसा जान पड़ता है कि यह देवालय किसी कारणवश अधूरा रह गया

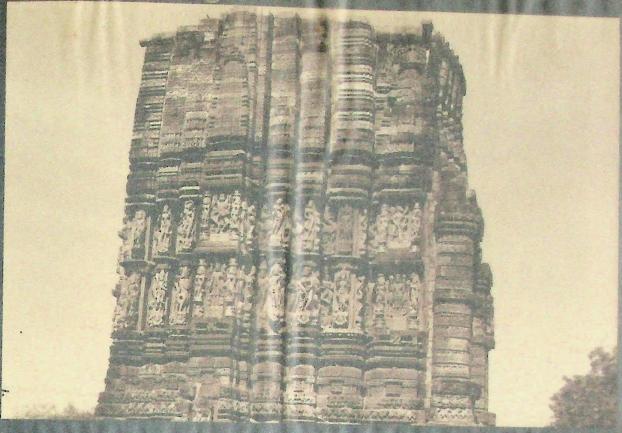
स्त्रोत : (1) प्राचीन छत्तीसगढ़ - प्यारे लाल गुप्त

है। माना जाता है कि पाली का देवालय पहले बन जाने के कारण जांजगीर का यह मंदिर अधूरा रह गया। लेकिन इस आख्यायिका का कोई तथ्य अथवा साक्ष्य मौजूद नहीं है।

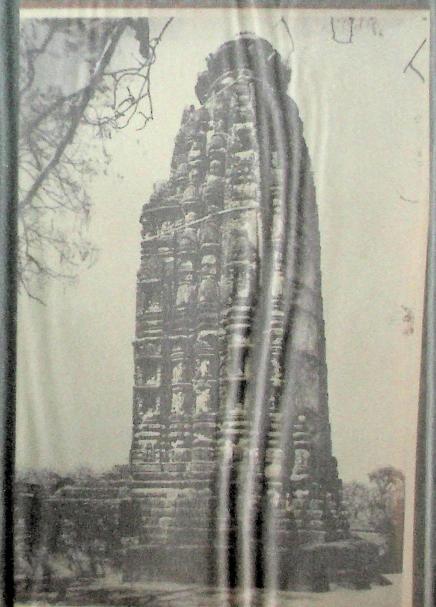
- (3) देउल आरंगः— रायपुर से लगभग 30 कि.मी. दूर यह मंदिर चबूतरे पर निर्मित हैं तथा जैनधर्म से संबंधित प्रतिमाओं वाला स्थापत्य हैं मंदिर के सामने का हिस्सा क्षितग्रस्त है किंतु गर्भगृह की प्रतिमाएं और गर्भगृह का शेष भाग सुरक्षित हैं इस मंदिर के निर्माण तकनीक के लिये भी क्लैम्प एवं नेलिंग का प्रयोग किया गया हैं। 11वीं सदी का यह मंदिर अद्भूत शिल्प का नमूना है।
- (4) लक्ष्मण मंदिर सिरपुर- रायपुर से लगभग 80 कि.मी. दूर यह प्रसिद्ध मंदिर आंचलिक सोमवंशियों की राजधानी सिरपुर में स्थित तथा लक्ष्मणमंदिर के नाम से ज्ञात है। चबूतरे पर निर्मित इस मंदिर के सामने भी स्तंभों पर आधारित छत वाले मंडप के संकेत मिलते है। 6वीं सदी में निर्मित इस मंदिर के पाषाण निर्मित प्रवेशद्वार के अतिरिक्त संपूर्ण मंदिर ईटों से निर्मित हैं संभवतः निर्माण प्रक्रिया में अलंकृत कच्ची ईटों को आपस में जोड़ने के लिये अत्यंत बारीक छनी मिट्टी का लेप लगाकर निर्माण प्रा कर प्री संरचना को एक साथ आग से पकाया गया होगा। इसी कारण प्री संरचना एक आकार सुसहट वास्तु का नमूना है और प्राचीन कला तकनीक में ईटों द्वारा निर्मित संरचनाओं का श्रेष्ठतम उदाहरण है। यह नगरी प्राचीन काल में श्रीपुर के नाम से प्रसिद्ध थी।' त्रिवदेव या तिवर राज के समय में सिरपुर उन्नति के शिखर पर पहुंचा। मूलतः पांडु वंशी राजाओं की राजधानी रही सिरपुर में यह मंदिर मानव की अद्भूत चित्रकारी की कथा कहता है। जगति, गर्भगृह का द्वार और मंडप के स्तंभों के सिवाय पूरा मंदिर ईटों से निर्मित है। निर्माण के संबंध में वहां प्राप्त शिलालेख से स्पष्ट होता है कि राजा शिव गुप्त बालार्जुन के राजकाल में राजमाता के द्वारा इस मंदिर का निर्माण अपने स्वर्गीय पति की स्मृति को चिरस्थायी रखने के लिए कराया गया था। मंदिर का वर्तमान नाम लक्ष्मण मंदिर उसमें रखी हुई एक प्रतिमा के कारण पड़ गया है। यह मंदिर मूलतः विष्णु मंदिर है जिसकी मूल प्रतिमा अब वहां नहीं है। शिलालेख से पता चलता है कि लक्ष्मण मंदिर का निर्माण केदार नामक शिल्पशास्त्री की देखरेख में संपन्न हुआ था। राजिम के राजीव लोचन मंदिर के समान ही सिरपुर का लक्ष्मण मंदिर भी ऊंची जगति पर स्थित है। मंडप नष्ट हो चुका है। अब केवल उसके स्तंभों के अवशेष मात्र ही शेष रह गये हैं। मंडप के बाद अंतराल है, और उसके बाद पाषाण का बना हुआ गर्भगृह है, जिसमें कालीयदमन,

स्त्रोत : (1) जिला गजेटियर बिलासपुर

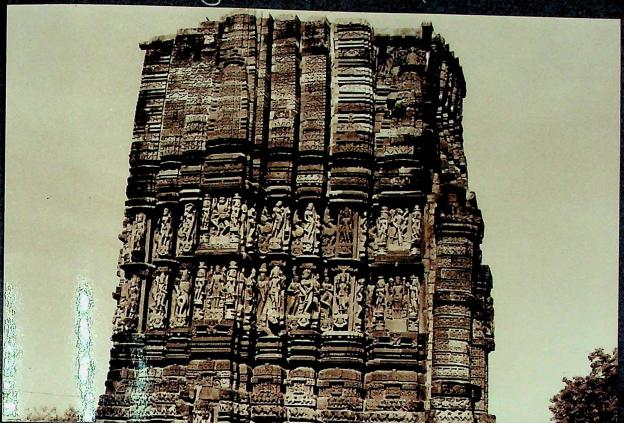
⁽²⁾ विभा, वार्षिक पत्रिका 80-81



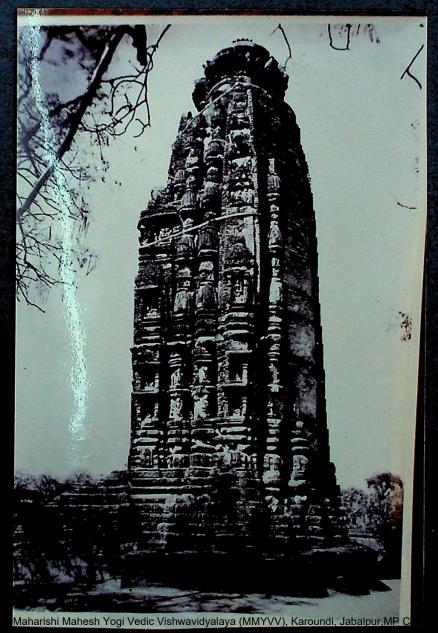
भाठडः देखल-अगरंग



00 Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.



भाठड देउल-उनारंग



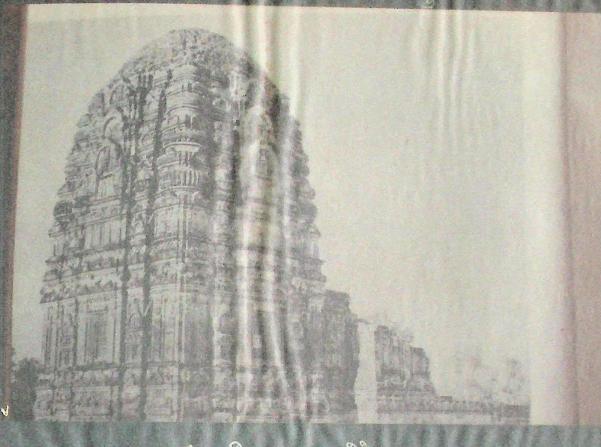


केशी वध, कंस वध, दसावतार तथा मिथुन संबंधी दृश्य हैं। ललाटबिंब पर शेषशायी विष्णु की प्रतिमा है। गर्भगृह के उपर बना हुआ शिखर पूर्ण रूप से ईटों का बना है। यह गुप्तोत्तर काल का शिखर शैली का अच्छा उदाहरण है। लक्ष्मण मंदिर के खंडित मंडप का मलबा साफ करते समय राजमाता वासटा के सिरपुर में प्राप्त शिलालेख में मंदिर के प्रबंध और प्रतिपालन के लिए व्यवस्था का विवरण दिया गया है इसके अनुसार तोडकर, मधुवेण, नालीप्रद, कुरूपद्र और बाणपद्र ये पांच गांव मंदिर को दे दिये गये थे। जिनसे होने वाली आय के चार भागों में से एक भाग मंदिर की मरम्मत, आयोजित सामूहिक भोज, पुजारी के परिवार के पोषण के लिए निर्धारित किया गया था। चौथे भाग का पंद्रह भाग कर त्रिविक्रम अर्क विष्णुदेव महिर देव इन चार ऋग्वेदी ब्राह्मणों कापर्दोपाध्याय भास्कर, मधुसुदन तथा वेदगर्भ इन चार यजुर्वेदी ब्राम्हणों भास्कर देव, स्थिरोपाध्याय, त्रैल्योक्यहंस तथा मोउद्द इन चार साम वेदी ब्राम्हणों, स्वास्तिवचाक, वासवनंदी, वामन और श्रीधर नामक ब्राम्हणों को एक-एक भाग दान दिया गया। यह आय उनके पुत्र-पौत्रों को मिलते रहने की व्यवस्था की गयी थी। यदि वे व्यसनी हो गये तब उन्हें यह सुविधा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था।

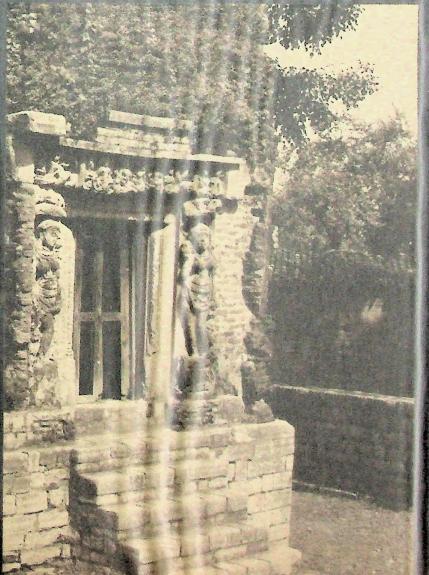
- (5) इन्दल देउल मंदिर खरौद- बिलासपुर से लगभग 65 किमी दूर स्थित ईंटों का यह मंदिर भी तकनीक और कला की दृष्टि से सिरपुर के लक्ष्मण मंदिर के समतुल्य है। इस मंदिर के प्रवेशद्वार का निर्माण पाषाण खंडों से किया गया हैं पश्चिमाभिमुखी यह मंदिर प्राकृतिक कारणों से तल सतह पर क्षातिग्रस्त है। किंतु ईंटों के क्षातिज व उर्ध्वाधर जोड़ों के बीच प्रयुक्त संभवतः गीली मिट्टी की परत इतनी बारीक है कि कुछ स्थानों पर जोड़ का मात्र अनुमान ही लगाया जा सकता हैं। इसका निर्माण काल 650 से 675 ई. बताया जाता है। इस मंदिर के अग्रभाग का निर्माण रतनपुर के हैहयवंशी राजाओं द्वारा किया गया है। यहां दो शिलालेख लगे हुए हैं। एक में किलंग राज से द्वितीय रत्नदेव के राजाओं की सूची है। राज्य की व्यवस्था सम्हालने वाले प्रधानमंत्री गंगाधर के व्यक्तित्व और कृतित्व की प्रशंसा की गई है। शिलालेख में यह भी उल्लेखित है कि खरौद में शिव मंदिर, साधुओं के लिए मठ, धर्मशालाएं आदि बनवाएं गए थे। बस्ती के दक्षिण में सबरी नामक एक मंदिर है जो ईंटों से निर्मित है।
- (6) गंडई, देवरबीजा, सरगांव व देवबलौदा के मंदिर:- देवबलौदा का मंदिर रायपुर से लगभग 20 कि.मी. दूर स्थित शिवमंदिर है। मंदिर वर्तमान में सपाट छत और चौकोर मंडप वाला है। मंदिर का

स्त्रोतः(१) सिरपुर, महेश चंद्र श्रीवास्तव

⁽²⁾ छत्तीसगढ़ के प्राचीन मंदिर



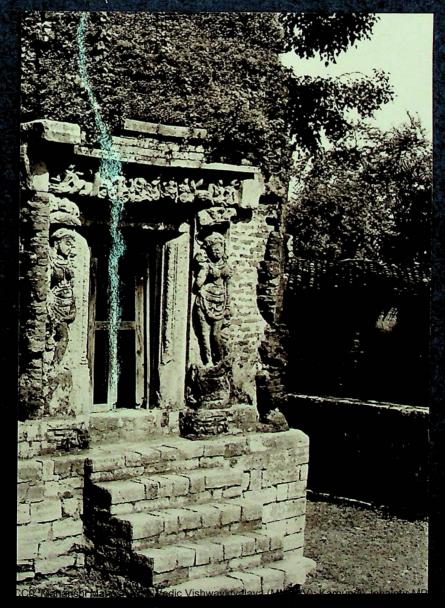
इंदल देखल-२वरोंद

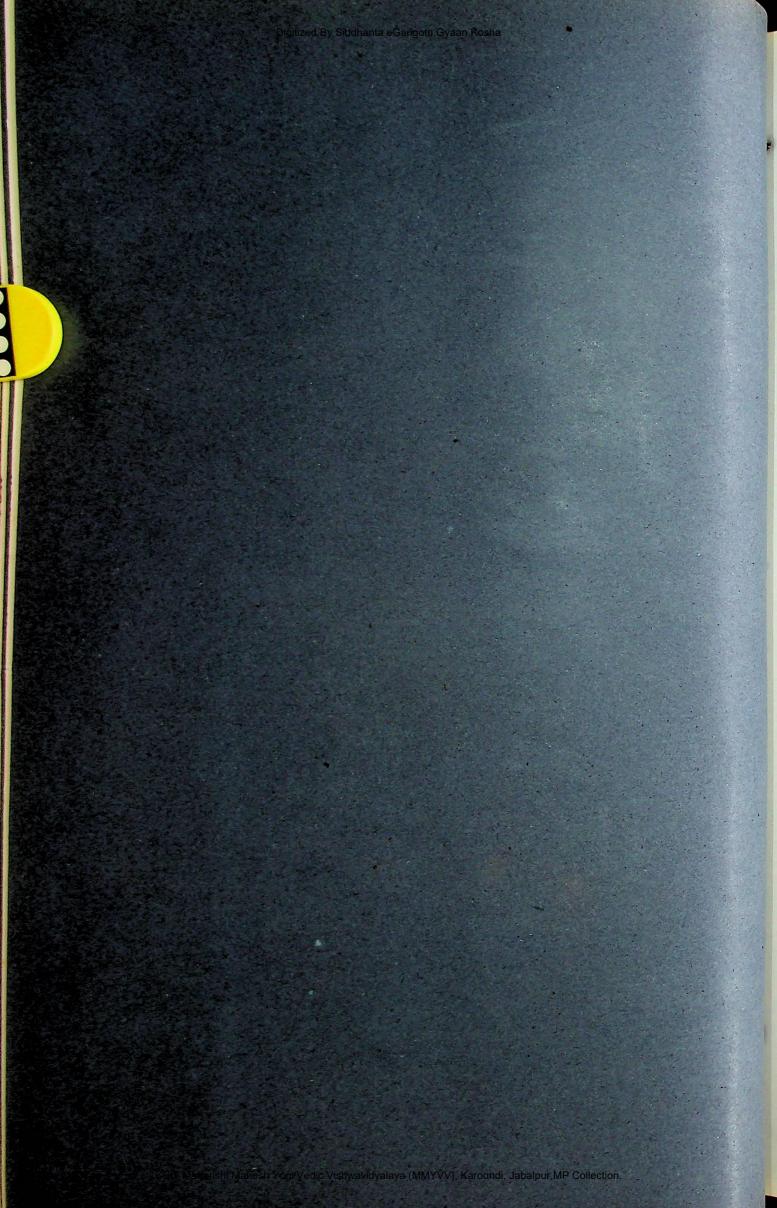


CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.



इंदल देउल-२वरोंद





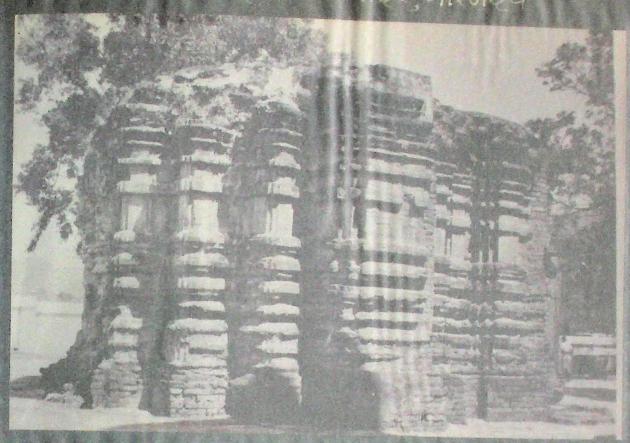
प्रवेशद्वार पूर्व की ओर है किंतु मंडप में उत्तर से ही प्रवेश की व्यवस्था है। गंडई का मंदिर यह मंदिर तथा गर्भगृह अवशिष्ट संरचना है, जिसमें प्रवेशद्वार पर नदी देवियां एवं द्वारपाल स्थित हैं तथा सप्तरथ योजना ने जंघा के भाग पर दो कतारों में देव प्रतिमाएं तथा लौकिक युवितयां सन्तित हैं शिखर पर मध्यरथ में उध्विधर प्रतिमाओं की दो पंक्तियां अत्यंत विशिष्ठ हैं। देवरबीजा का मंदिर यह मंदिर तत्कालीन अन्य कल्वुरी नागवंशी प्रकार का है। इस सप्तरथ मंदिर के द्वितलीय जंघा के उपर रुढ़शैली का संशिलस्ट चैत्य गवाक्ष अलंकरण वाला शिखर है। मंदिर की पीठ पर भदों में देव कुलिका की रचना कर प्रतिमाएं स्थापित की गई हैं।

- (7) ईंटों का मंदिर भोरमदेव यह भग्न मंदिर भोरमदेव के मुख्य मंदिर के निकट स्थित है। निर्माण तकनीक सिरपुर एवं खरौद के ईटों के मंदिर की भांति ही हैं किंतु जोड़ में बारीकी व सफाई का अभाव है तथा परिवर्ती काल में संभवतः चूना गारे के पलस्तर का भी प्रयास किया गया है। इसका निर्माण भी 13वीं शताब्दी में अनुमानित है।
- (8) भोरमदेव मंदिर- कवर्धा से लगभग 18 कि.मी. दूर स्थित 13वीं शताब्दी में निर्मित भोरमदेव का यह मुख्य मंदिर छत्तीसगढ़ के खजुराहों के नाम से प्रसिद्ध हैं। सुरक्षित स्थिति में वास्तु का सुंदर नमुना है। भूमिज्ञ शैली के मंदिर के गर्भगृह के साथ मंडप भी मूलतः संलग्न हैं। निर्माण प्रक्रिया में क्लैम्प, नेल, भार, संतुलन के साथ साथ पत्थरों की आपसी जमावट के लिये फांस और होल साकेट विधि भी अपनाई गई प्रतीत होती है।
- (9) कंठी देवल मंदिर रतनपुर यह बिलासपुर से 25 कि.मी. दूर महामाया परिसर के तालाब के किनारे स्थित हैं अठारहवीं सदी में निर्मित कलात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस मंदिर की भित्ति में जड़ी हुई शालभंजिका की प्रतिमा अलंकरणमय सौंदर्य के अदभुत नमूने हैं इसी मंदिर में शिवजी की विशिष्ट प्रकार की प्रतिमा लिंगोदभव, शिव की प्राप्त हुई हैं। वास्तुशास्त्र की दृष्टि से भी यह मंदिर स्थापत्य कला का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता हैं। इसकी दीवार पर खचित मूर्तिया अद्भूत है। एक दृश्य शिव पार्वती विवाह का है जिसका निर्माण काल दसवीं शताब्दी के आस-पास बताया जाता है।' मंदिर रतनपुर- रतनपुर चारों युगों की प्राचीन राजधानी मानी जाती थी। सतयुग में मणिपुर, त्रेता में माणिकपुर, द्वापर में हीरापुर और कलयुग में रतनपुर के नाम से प्रसिद्ध इस नगरी का उल्लेख

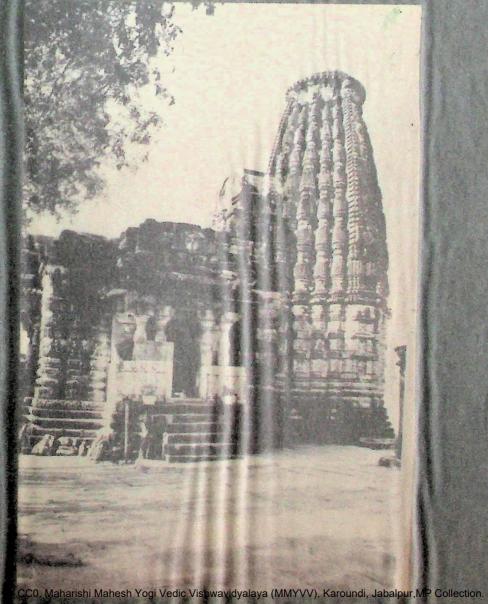
स्त्रोत: (1) प्राचीन छत्ती

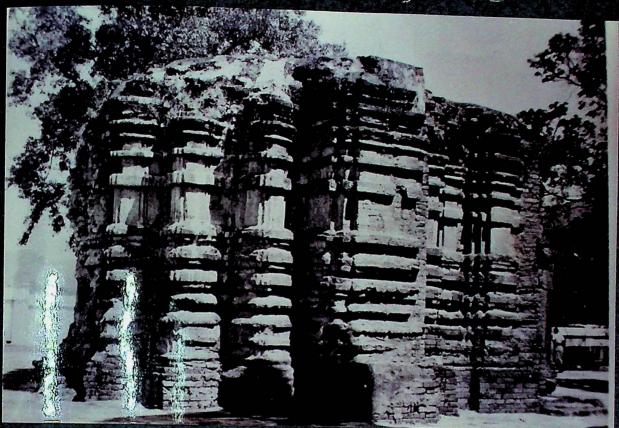
⁽¹⁾ प्राचीन छत्तीसगढ़- प्यारे लाल गुप्त

⁽²⁾छत्तीसगढ़ दिग्दर्शन- मदन लाल गुप्त

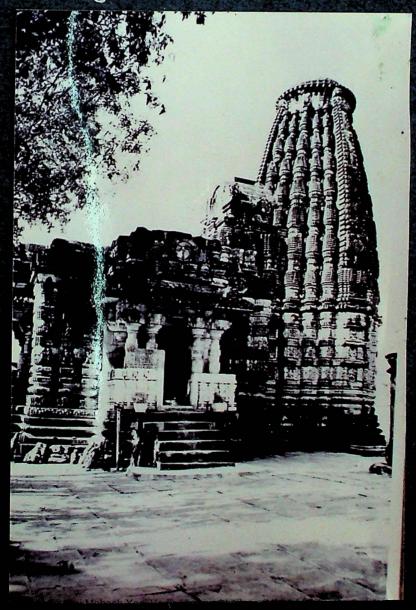


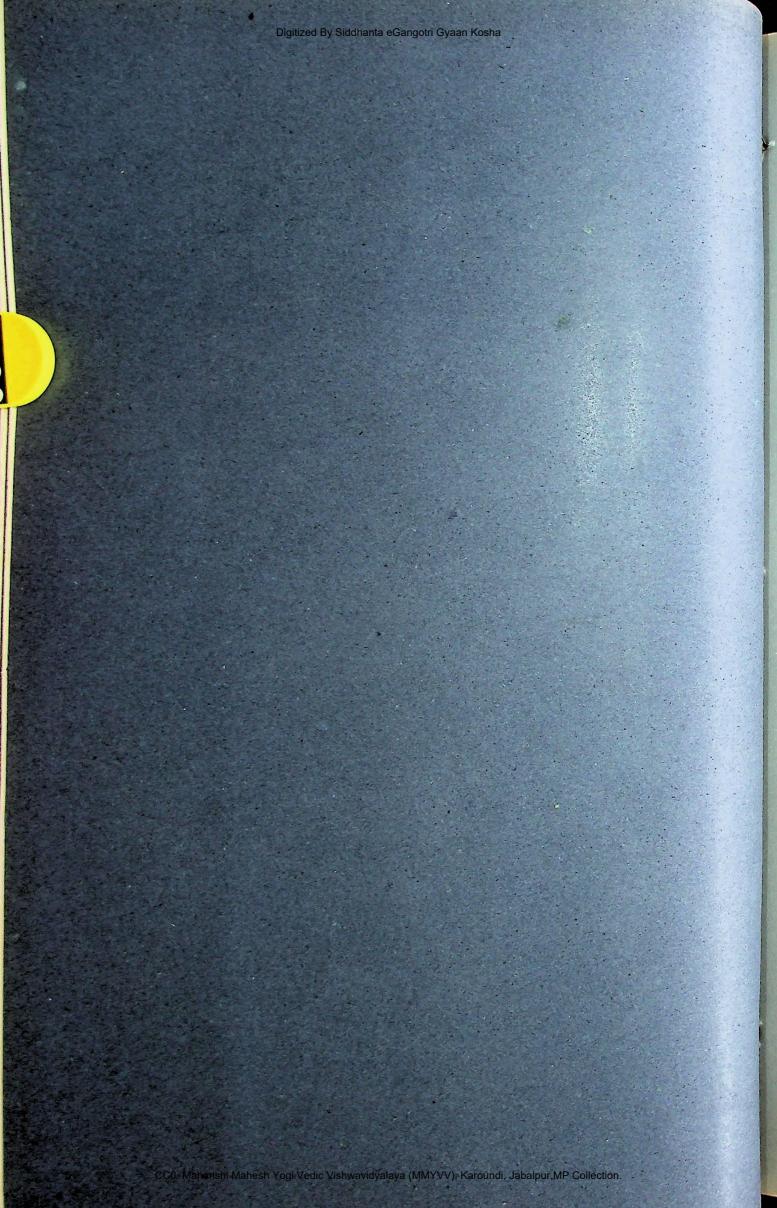
मुख्य मीद्र-भीरमदेव





मुख्य महिर-भीरमहैव

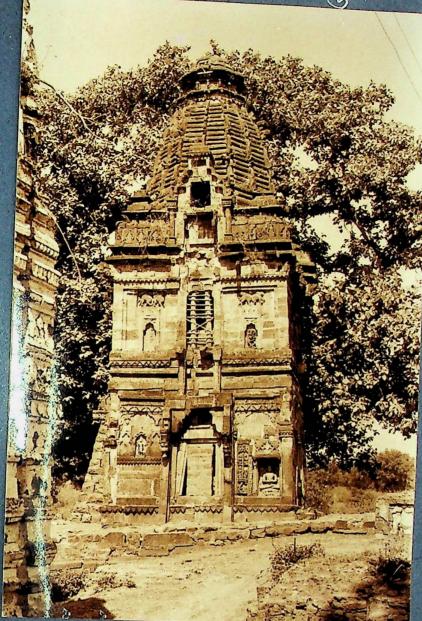


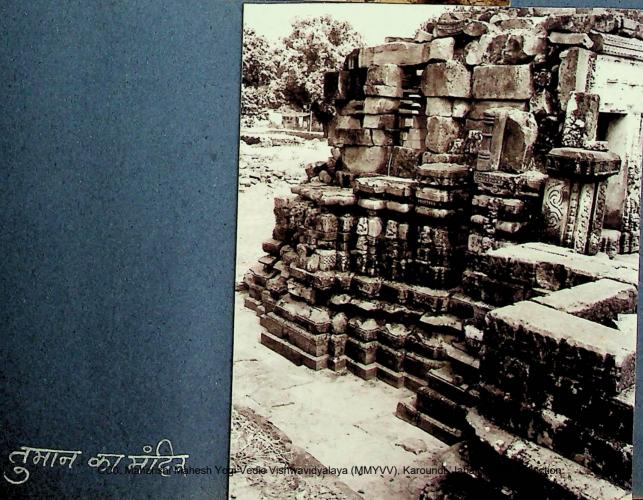




तुमान का माद्र

CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.





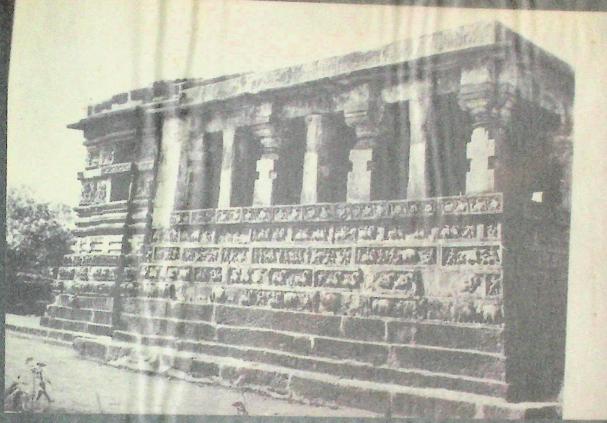


महाभारत में रत्नावली पुरी के नाम से किया गया है। त्रेतायुग में मोरध्वज, ताम्रध्वज तथा कृष्ण से संबंधित बहुचर्चित घटना इसी नगरी में घटित हुई थी। अभी भी कृष्णानर्जुनी के नाम से यहां एक तालाब है। अंग्रेजों के शासनकाल तक भी यह प्रतिष्ठित रही। महामाया मंदिर के संबंध में मंदिर पर एक शिलालेख उत्कीर्ण हैं जिससे शिल्पी छिदकू ने उत्कीर्ण किया है इस प्रशस्ति में संवत् 1552 (अर्थात् सन् 1495) की तिथि अंकित है। मंदिर के सामने जल पूर्ण सीढ़ियों से सजा सुंदर कुंड है। मंदिर में भगवती–महामाया की मूर्ति स्थापित है इसकी विशेषता यह है कि मूर्ति के पीछे एक दूसरी देवी की प्रतिमा भी झांकती हुई प्रतिष्ठित है।

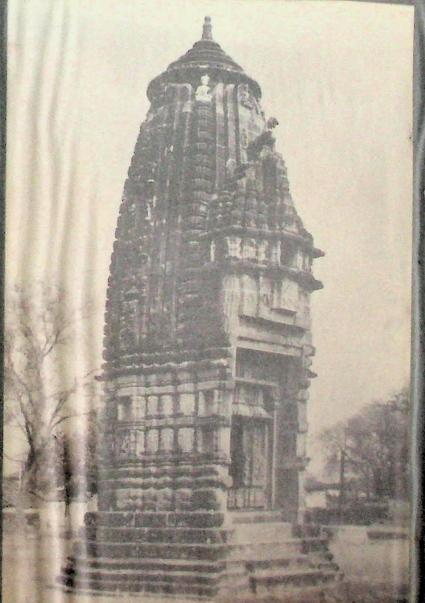
- (10) तुमान का मंदिर— यह मंदिर बिलासपुर से लगभग 75 कि.मी. दूर कटघोरा तहसील स्थित हैं त्रिपुरी के कल्चुरियों की एक शाखा के शासक ने इसका निर्माण कराया था इस मंदिर के प्रवेशद्वार पर भगवान विष्णु के हसावतारों सिहत गजलक्ष्मी का अंकन है। पत्थरों से निर्मित यह मंदिर भी क्लैम्पिंग एवं नेलिंग विधि से निर्मित हैं वास्तुकला की दृष्टि से यह मध्यम है।
- (11) अरपा नदी पर बना प्राचीन पुल- बिलासपुर में स्थित इस पुल का निर्माण 1926 में सेंट्रल प्राविन्स के गवर्नर सर बटलर द्वारा उद्घाटन से पूर्ण हुआ। हल्के लालरंग के पत्थरों से निर्मित यह पुल ब्रिटिश काल की अनुपम धरोहर हैं यह पुल पत्थरों को चूने गारे से जोड़कर बनाया गया है। मजबूती में यह पुल आज के नये पुलों को चुनौती दे रहा है।
- (12) बिलासपुर में रेलवे स्टेशन का भवन समस्त छत्तीसगढ़ क्षेत्र में यूरोपियन वास्तुकला का यह अद्वितीय एवं एकमात्र उदाहरण है। सन् 1889 में निर्मित यह भवन पत्थरों को चूने गारे से जोड़कर बनाया गया है। सौ वर्ष से भी अधिक समय हो जाने के बाद भी यह भवन अत्यंत मजबूत एवं उत्कृष्ट है।³

स्त्रोत:- (1) स्मारिका बिलासपुर जिला 1956-81

⁽²⁾ व (3) दैनिक भास्कर, मिलेनियम विशेष दिसम्बर 1999

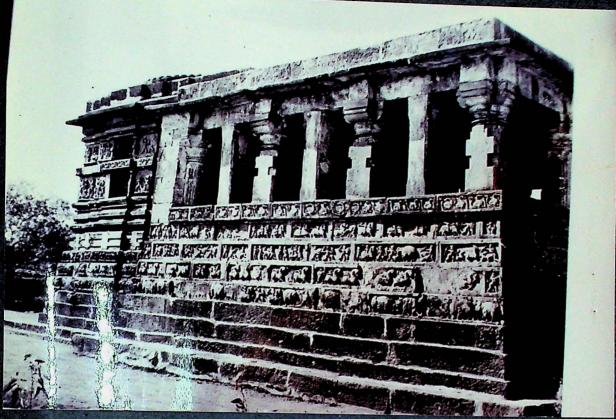


गंडरे का भीदेर

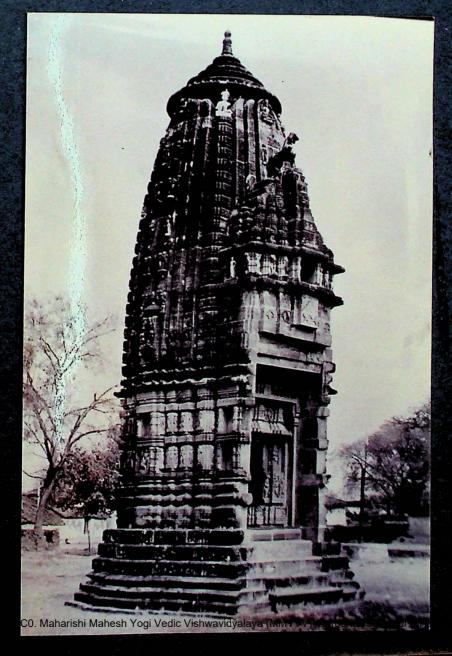


Co. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Co lection

देव बलाहा साहर



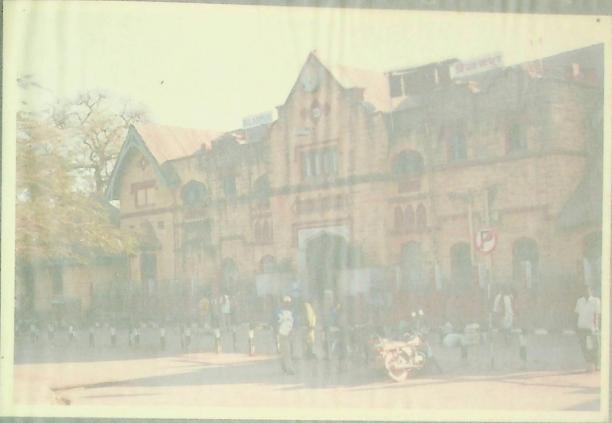
गड़रे का मेरिन



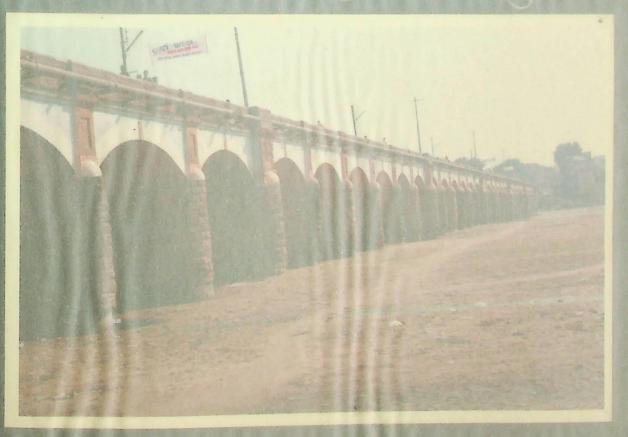


Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

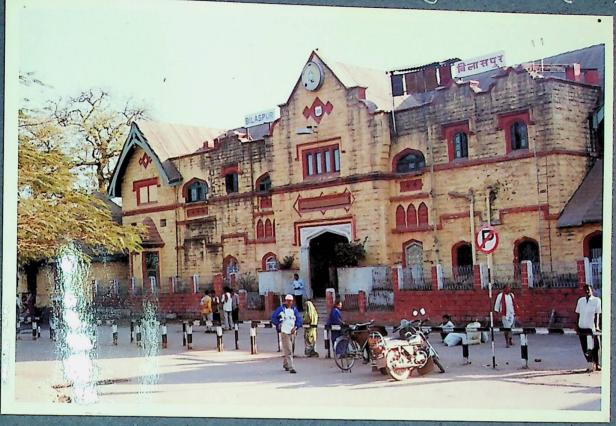
बिलासपुर रेलवे स्रीमान-पुराना नेपन (1889



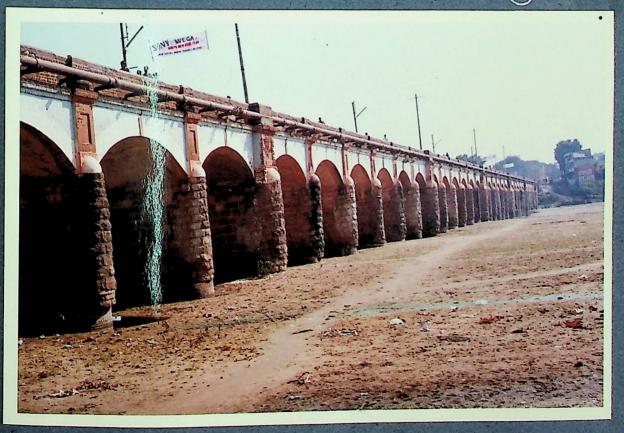
अरपा का पुराना पुल- बिलाञ्चपुर (1926)



चिलासपुर रेलवे स्टेशन - पुराना भवन (1889)



अरपा का पुराना पुल-बिलासपुर (1926)





अध्याय- तृतीय

सीमेन्ट की उत्पादन विधि

- अ. उत्पादन एवं विपणन
- ब. उत्पादन विधि
- 1. वैदिक परंपरा में
- 2. आधुनिक काल में

अध्याय- तृतीय

सीमेन्ट की उत्पादन विधि

- अ. उत्पादन एवं विपणन
- ब. उत्पादन विधि
- 1. वैदिक परंपरा में
- 2. आधुनिक काल में

अध्याय– तृतीय

सीमेन्ट की उत्पादन विधि

अ. उत्पादन एवं विपणन

उत्पादन का अर्थ — उत्पादन के अन्तर्गत उन समस्त क्रियाओं का समावेश किया जाता है जिनसे कि पदार्थों की उपयोगिता में वृद्धि होती है। वाणिज्य की भाषा में उत्पादन से आशय कच्चे माल को निर्मित माल में परिवर्तित करने की संगठित क्रिया से है। कच्चे माल के अन्तर्गत किसी भी पदार्थ को शामिल किया जा सकता है चाहे वह पृथ्वी के गर्म से निकाला गया अनिर्मित पदार्थ हो (जैसे कच्चा लोहा या मैगनीज) अथवा निर्मित माल, जैसे साइकिल के हैण्डिल, बिजली के मीटर आदि। इसका कारण यह है कि कभी-कभी एक उद्योग द्वारा निर्मित माल दूसरे उद्योग के लिये कच्चे माल का काम करता है। उदाहरण के लिये एक साइकिल उद्योग अन्य विभिन्न संस्थानों से साइकिल की सीट, हैंडिल कैरियर फेम, हब आदि प्राप्त करके उन्हें संयोजित करने का काम कर सकता है।

विपणन शब्द का अर्थ एवं परिभाषा-

साधारणतया विपणन का अर्थ वस्तुओं के क्रय एवं विक्रय से लगाया जाता हैं लेकिन विपणन विशेषज्ञ इसका अर्थ वस्तुओं के क्रय एवं विक्रय तक सीमित नहीं करते हैं बल्कि क्रय एवं विक्रय से पूर्व एवं पश्चात की क्रियाओं को भी इसका एक अंग मानते हैं। कुछ विद्वान तो क्रय एवं विक्रय के अतिरिक्त सामाजिक उत्तरदायित्व निभाने को भी विपणन का एक प्रमुख कार्य मानकर विपणन का अर्थ लगाते हैं। इस प्रकार विपणन के अर्थ की कोई सर्वमान्य अर्थ या परिभाषा नहीं है। विपणन के अर्थ की व्याख्या दो तरह से की जाती है पुरानी विचारधरा वाले व नयी विचारधारा वाले।

अ. विपणन में क्रय एवं विक्रय दोनों ही क्रियाएं शामिल होती हैं इसका अर्थ यह है कि विपणन में

केवल क्रय एवं विक्रय क्रियाओं का ही अध्ययन किया जाता हैं शेष अन्य क्रियाएं जैसे परिवहन, भंडार, वित्त व्यवस्था, जोखिम, आदि विपणन की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आती है।

ब. विपणन में वे सभी प्रयत्न शामिल हैं जो वस्तुओं और सेवाओं के स्वामित्व हस्तान्तरण को प्रभावित करते हैं और उनके भौतिक वितरण की व्यवस्था करते हैं। वस्तुओं और सेवाओं के स्वामित्व को बदलने में जो भी क्रियाएं होती है। वे सब विपणन की परिभाषा के अन्तर्गत आती है। साथ ही इस कार्य के लिये जो भौतिक वितरण का कार्य किया गया हैं वह भी विपणन के अन्तर्गत आता है। भौतिक वितरण से अर्थ वस्तुओं एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने एवं उनका संग्रह करने से है।

विपणन विक्रय व वितरण में अंतर – विपणन, विक्रय व वितरण तीनों ही शब्द एक दूसरे से इस प्रकार जुड़े हुये हैं कि वे स्वतन्त्र रूप से चल ही नहीं सकते हैं। विक्रय व वितरण विपणन के ही अभिन्न अंग हैं जो विपणन से भिन्न न होकर विपणन के ही हिस्से हैं। विपणन में न केवल क्रय एवं विक्रय की ही क्रियाएं आती है। बल्कि इनसे पूर्व एवं पश्चात की क्रियाएं (जैसे विपणन अनुसंधान एवं गारंटी) भी विपणन का अंग मानी जाती हैं और आजकल तो सामाजिक उत्तरदायित्व भी विपणन का ही प्रमुख अंग माना जाता हैं लेकिन विक्रय से अर्थ वस्तु के स्वामित्व के हस्तान्तरण से लगाया जाता है और जो संस्थाएं विक्रय का कार्य करती हैं वे वितरण के अन्त्रगत आती हैं। इस प्रकार विक्रय स्वयं नहीं हो सकता। इसके लिये वितरण माध्यम अवश्य ही होना चाहिये। इस प्रकार विपणन विक्रय व वितरण में अंतर है लेकिन फिर भी वे तीनों अपने आप में स्वतंत्र नहीं है, उन्हें एक दूसरे के सहारे ही चलना पड़ता है। विरण के अन्त्रगत विक्रय व वितरण दोनों ही आते हैं। विक्रय स्वयं कुछ नहीं कर सकता जब तक कि वितरण का सहारा न लिया जाये। विपणन का एक लक्ष्य विक्रय है। वितरण उस लक्ष्य को प्राप्त करने का एक रास्ता है। इस प्रकार विपणन उस लक्ष्य को प्राप्त करने का एक रास्ता है। इस प्रकार विपणन, विक्रय व वितरण एक दूसरे से संबंधित है।

विपणन के अर्न्तगत विपणन कार्यक्रम बनाया जाता है जिसमें विक्रय व वितरण इसके प्रमुख अंग है। इस प्रकार इनमें अंतर हैं लेकिन दोनों ही विपणन के अर्न्तगत आते है। विपणन का एक महत्वपूर्ण कार्य उपभोक्ता संतुष्टि और जन साधरण के जीवन स्तर को उपर उठाना है लेकिन विक्रय का कार्य तो केवल वस्तु के स्वामित्व का हस्तांतरण करना है। वितरण इसमें सहायता करता हैं इस प्रकार विपणन विक्रय वितरण संस्था के लक्ष्य प्राप्त करने में मिलकर सहयोग करते है। विपणन विक्रय व वितरण को एक दूसरे

स्त्रोत- (1) डा. पाईल, मार्केटिंग प्रिंसिपल

⁽²⁾ टाइस्ले, क्लाई एवं क्लार्क, मार्केटिंग प्रिंसिपल

से पृथक नहीं किया जा सकता हैं यह तीनों ही आधुनिक व्यापार के स्तम्भ है जो मिलकर कार्य करते है। विक्रय व वितरण पुराने शब्द हैं जबकि विपणन आधुनिक।

सीमेन्ट उत्पादन की विधि-वैदिक परम्परा में-

वैदिक युग में अर्थात् ई.पू. लगभग 2500 वर्ष पूर्व निर्माण कार्य में सीधे तौर पर सीमेन्ट नाम के किसी तत्व का उपयोग नहीं किया जाता था। अपितु निर्माण में कुछ सामग्रियों का उपयोग जोड़ने आदि के लिए किया जाता था। सर्वप्रथम वैदिक काल की की संरचना में केवल मिट्टी के उपयोग का उल्लेख मिलता है। इससे पहले लकड़ी एवं जोड़ने के लिए चूलें बनाये जाने की तकनीक का उपयोग किया जाता था। पत्थरों को तराश कर बगैर किसी ज्वाईटिंग मीडिया के एक दूसरे से जोड़ने की कला की तकनीक का विकास इस काल में हुआ। स्थापत्य के क्षेत्र में गुप्त काल में मंदिर, भवन आदि में काष्ठ तकनीक का उपयोग किया गया। बाद के वर्षों में ईटों से निर्मित संरचनाओं का उल्लेख मिलता है। ईटों की संरचनाओं में प्राचीन संस्कृत साहित्य में गिरी पृष्पक, वज्रलेप एवं इसी के सदृश्य पदार्थों का उपयोग किया गया। समरांगण सूत्रधार के 41 वें अध्याय में जिस चयनविधि में उल्लेख है उससे यह आभास होता है कि इस दौरान निर्माण कार्यों में सीमेन्ट सदृश्य तत्वों का इस्तेमाल किया गया है। शिल्प ग्रंथों में इसी चुनाई की प्रक्रिया का उल्लेख मिलता है लेकिन तत्वों के वैज्ञानिक उद्धाटन अप्राप्त है। स्थापत्य शास्त्र में चुनाई के गुण एवं चयन दोष का जिक्र है लेकिन तत्वों का अलग-अलग वर्णन नहीं है। स्थापत्यविद् डॉ. द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल के अनुसार चुनाई करते समय गारे आदि का उल्लेख शिल्प ग्रंथों में होता है एवं लेप तथा लेपद्रत्य आदि का उल्लेख शास्त्रों में मिलता है। प्राचीन स्थापत्य शास्त्रों में लेगों के अनेक प्रकारों का जिक्र आता है।

वैदिक काल में सीमेन्ट सदृश्य तत्व- कच्चा माल एवं तकनीक

(1) मिट्टी एवं चूना — पूर्व एवं उत्तर वैदिक काल की संरचनाओं में ईंटों के मध्य अत्यंत बारीक परत को प्राचीन स्थापत्य अध्येता मिट्टी एवं चूने से बेना तत्व मानते हैं। सर्वप्रथम पतली चिकनी मिट्टी को छानकर ईंटों के बीच लेप का उपयोग किया जाता था। कुछ स्थानों पर पूरी संरचना को

स्त्रोतः – प्राचीन भारतीय समाज अर्थ व्यवस्था एवं धर्म– रमाकांत मिश्र (1) विपणन प्रबंध डा. एस.सी. जैन

भट्ठे की तरह पका दिया जाता था जिससे जुड़ाई के लिए उपयोग में लाये गये तत्व का अनुमान लगाना किंतिन हो जाता था। आदिकाल में हड़प्पा युगीन अवशेषों में कहीं-कहीं चूने का उपयोग किया गया है। माना जाता है कि वैज्ञानिकों को भी सीमेन्ट बनाने की तकनीक में चूने के उपयोग का स्त्रोत इन्हीं संरचनाओं से मिला।

- (2) जिप्सम वैदिक काल से वर्षों पूर्व सिन्धु सभ्यता में मोहन जोदड़ों के उत्खनन के उपरांत जोड़ने के लिए उपयोग में लाये गये कुछ नये तत्वों का भी पता चला है। मोहन जोदड़ों के उत्खनन से प्राप्त स्नान कुण्ड में लेप व कुण्ड को जलरोधी बनाने के लिए जिप्सम जैसे किसी पदार्थ एवं विदुमिन का उपयोग किया गया है जिससे प्राचीन संस्कृत साहित्य में गिरिपुष्पक के रूप में पहचाना गया है।
- (3) वज्रलेप- पूर्व एवं उत्तरवैदिककाल की भवन निर्माण संरचनाओं में वज्र लेप का भी उल्लेख मिलता है। अश्वशाला, शाला निवेश, गजशाला, कुण्ड, सिंहासन, यज्ञवेदी, शय्या आदि में इस तरह के तत्व के उपयोग का उल्लेख मिलता है। स्थापत्याविदों का मानना है कि भित्त चित्रों एवं दीवार पर की गई कलाकारी के लिए भी लेप एवं लेप द्रव्य का इस्तेमाल किया जाने लगा। प्राचीन स्थापत्य शास्त्रों में मृत्तिका बन्धन, सुधा बन्धन, इष्टिका बन्धन आदि का जिक्र मिलता है। समरांगण एवं अपराजित पृच्छा में जिस लेप का वर्णन है, वह वास्तव में मृत्तिका का लेप है। प्राचीन भारत में पट चित्रों की सुदीर्घ परंपरा में इस देश की जन आस्था एवं धार्मिक तृप्ति के भी दर्शन होते हैं। इनमें भी इस तरह के द्रव्य का उल्लेख किया जाता था। अपराजित पृच्छा में चित्रलक्षणम् में वज्रलेप की प्रक्रिया में विस्तृत वर्णन है।
- (4) लेप तथा लेप द्रव्य पुरातन संरचनाओं में प्लास्टर के उपयोग से ज्यादा चित्रकर्म के लिए लेपों एवं रंगों का इस्तेमाल किया गया। जिस प्रकार वर्तिका भूमिबन्धन की सहायक है, उसी प्रकार लेप भी भूमिबन्धन के सहायक है। वर्तिका एवं लेप चित्र संरचना को संवारने के प्रमुख कारक साबित हुए। वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला में लेप एवं लेप द्रव्य का उपयोग उसे स्थायित्व देने के लिए एवं उसे आकर्षक बनाने के लिए किया गया। नग्न भित्तिया खुरदरे काष्ठ जब तक लेप की प्रथम प्रक्रिया से सम संतुलित, स्निग्ध एवं दृढ़ नहीं बनते तब तक उन पर चित्ररचना का प्रश्न उपस्थित नहीं होता। इस कथन का तात्पर्य यह है कि वैदिक काल एवं इससे पूर्व के निर्माण में यद्यपि सीमेन्ट आदि का उपयोग नहीं हुआ

स्त्रोत:- (1) प्राचीन भारत में रसायन का विकास- सांख्य प्रकाश

लेकिन इन पदार्थों से उन्हें स्थायी और सुदृढ़ बनाया गया। आज जो पलस्तर भवनों में देखने को मिलते हैं उस पर कलाकारी संभव नहीं है जो इस काल में देखने को मिली। प्राचीन काल में आज की तरह चित्रोपकरण सुलभ नहीं थे, बावजूद इसके कलाकार बड़े मनोयोग एवं निष्ठा से चित्र रचना करते थे। विष्णु धर्मोत्तर में इन्हीं लेपों को इष्टका चूर्ण की संज्ञा दी गई है जिसे ब्रिक प्लास्टर के नाम से पुकार सकते हैं। अर्थात् ईटों के उपर लेप को ही पलस्तर माना गया। अपराजित पृच्छा में मृतिका लेप, मृतिका बंधन के अतिरिक्त सुधा बन्धन अथवा सुधा लेप का भी जिक्र है।

(5) ब्रिक प्लास्टर – (एस्टिक लेप अथवा चूर्ण)

दीवारों को चिकना करने एवं उस पर चित्रकारी करने हेतु एष्टिक लेप अथवा चूर्ण का उपयोग किया गया। गुड़ की राब, चूना, जिप्सम, आदि को मिलाकर जो तत्व निर्माण में जोड़ने के लिए उपयोग में लाया गया वह तकनीक मूलतः एष्टिक लेप से प्राप्त किया गया प्रतीत होता है। एष्टिक लेप के चूर्ण में ऐसे ही मिश्रण का जिक्र मिलता है। विष्णुध्मोत्तर की प्रक्रिया है कि तीन प्रकार के एष्टिक चूर्ण को संगृहितं कर उसमें इस चूर्ण के एक तिहाई भाग में मृतिका मिश्रण करना चाहिए। पुनः तैल संयुक्त कुसुम्भ (पुष्प विशेष) मिलाकर मोम, गुग्गुल, मुंग तथा गुड़ इन सबको सम भागों में मिलाना चाहिए। पुनः अग्निदग्ध सुधा का चूर्ण उसमें एक तिहाई भाग के प्रमाण से मिलाना चाहिए। अंत में बिल्ववृक्ष से रस लेकर एक दो के भाग से मिश्रित कर और उसमें सिकता का पुट देकर इस लेप का निर्माण करना चाहिए। अभी यह लेप लेपने योग्य नहीं बना। इसका सिंचन आवश्यक है। जब उपरोक्त मिश्रण का लेप खूब घुल जावे तो उसे एक मास तक रखे रहना चाहिए। फूल जाने पर यह बड़ा चिकना हो जाएगा तब इसका दीवाल पर लेप करना उचित है। यह ध्यान रखना चाहिए कि लेप न तो अति घना हो न अति विरल। सम के लिए पूर्ण दत्तावधान रहे। पुनः इसको चिकना करने के लिए मृतिका लेप भी वांछित होता हैं। इस मृत्रिका लेप में सर्जरस का मिश्रण भी आवश्यक है। अन्त में लेप जलों के बार-बार छिड़काव से इसकी पालिश की जाती थी। यह एक ऐसा एष्टिक लेप बनता था जिसकी स्थिति 100 वर्ष बाद भी नहीं बिगड़ती थी।

'अपि वर्षशतस्यान्ते न प्रणश्येत्रु कहिंचित्"

(6) मृतिका लेप – समरांगण सूत्रधार में जिस भूमि बन्धनोचित का लेप का वर्णन किया गया

स्त्रोत:- (1) भारतीय स्थापत्य पृष्ठ 45

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है उसे मृत्रिका लेप भी कहा जाता है। तद्नुसार समराङण के इस लेप में मृत्रिका ही प्रावधान है। मृत्रिका अनेक वर्णा मानी जाती है अतः वर्ण का ध्यान भी रखा जाता था। ब्राह्मण के लिए शुक्ला, क्षत्रियों के लिए रक्ता, वैश्यों के लिए पीता तथा शूद्रों के लिए कृष्ण मृत्रिका भी इस देश में एक सनातन परंपरा है। मृत्रिका की पूर्ण परीक्षा के बाद कंकड़ आदि को निकाल कर पुनः शालमिल, मांस, ककुभ, मधूक, त्रिफला आदि वृक्षों का रस मिश्रित किया जाता था। इस मिश्रण में अश्व कूर्च, वृषकूर्च, धान्यतुषा, नारिकेन त्वचा का योग होता था। शिकता एवं मृत्रिका का समभाग मिलाने के बाद कपड़छान कर उसे उबालकर लेप तैयार किया जाता था। प्राचीन भारत का यह सामान्य लेप माना जाता था। मृत्रिका के मौलिक द्रव्य के साथ-साथ अन्य उपकारक मिश्रण भी शामिल होते थे। इन्हीं के विशिष्ट भेद को वज्रलेप की संज्ञा दी गई। मार्तिक वज्रलेप की प्रक्रिया का विस्तृत वर्णन अपराजित पृच्छा के चित्र लक्षण पृष्ठ 13–14 में दृष्टव्य है। अपराजित पृच्छा में इस लेप को मृत्रिका बंधन तथा सुधा बन्धन कहा गया है।

- (7) मृत्तिका बन्धन अपराजित पृच्छा के अनुसार मृतिका बन्धन, वजलेप की तरह उपयोग में लाया जाता है। खेत रक्ता तथा पीता मृतिका के अतिरिक्त पृष्प यव तथा गौधूम के चूर्ण, छीरद्रुमों के वलकल तथा गुडसंयुत वलकल व इंद्रवृक्ष आदि वानस्पत्य द्रव्य का विशेष विधान है। इन सबका चूर्ण बनाकर पाषाण गर्भ चूर्ण से मिश्रित कर कपड़छान किया जाता था। पुनः अलसी का तेल तथा पानी के साथ अच्छी तरह मिलाकर कज्जल के समान चिकना यह पदार्थ धूप में सूखने के बाद मजबूत हो जाता है।
- (8) सुधा बन्धन— इसके निर्माण में सफेद पत्थर के धात्रीफलोपम दुकड़े करके उन्हें 10 दिन आग में जलाया जाता है। उस चूर्ण में बिल्व आदि वृक्षों के रस मिलाकर एक मास तक रखा जाता हैं ऐसे लेप को आज के शब्दों में इष्टुको कहा जाता है।
- (9) **सुधालेप** प्राचीन भारत की चित्रकला में विशेषकर भैत्तिक चित्रों में कलई की पुताई तथा पलस्तर का उपयोग किया जाता था। मानसोल्लास इसी तथ्य का पोषण करता है।

''सुधया निर्मितां भित्तिं श्लक्ष्णां क्षतविवर्जिताम्''।'

श्वेत मृत्तिका अर्थात सफेद मिट्टी से निर्मित तत्व का उपयोग धवलीकरण के लिये किया जाता था। भित्ति अथवा अन्य आधारों का धवलीकरण शिल्प रत्न की भी प्रथम विधि है।³

''एवं धवलिते भित्तौ दर्पणोदरसन्निमें।

स्त्रोतः- (1) अपराजित पृच्छा- चित्रलक्षणं पृष्ठ 13,14

⁽²⁾ व (3) भारतीय स्थापत्य- पृष्ठ 546, 547

फलकोदो पटादौ वा चित्रलेखनमाचरेत्।।

शिल्परत्न की इस धवलीकरण प्रक्रिया को वर्णलेप के नाम से जाना जाता था। इसमें भी मृत्तिका में शांख, शुक्ति आदि द्रव्यों एवं वृक्षोद्भव द्रव्यों के मिश्रण का विधान है तथ यह भी प्रतिपादित है कि इस वर्णलेप के तीन भेदों का भी उल्लेख है जिनकी पृथक पृथक विशेष योजनीय अथवा मिश्रणीय द्रव्यों की विलक्षणता है। वनस्पति संसार तथा औषिधवर्ग का पूर्ण उपयोग प्राचीन भारत की सभी विधाओं में चाहे वह चित्र विद्या है अथवा चिकित्सा सभी में वांछित था।

वैदिक परंपरा में श्रम एवं पूंजी-

वैदिक काल में निर्माण कार्य आमतौर पर राजनिवेश के तहत किये जाते थे। स्थापत्यविदों का मानना है कि नगर एवं पुर निवेश, पुटभेदन, खेटक, ग्राम दुर्ग आदि का निर्माण सुनियोजित तरीके से किया जाता था। आर्यों के जीवन स्तर को देखने से पता चलता है कि शैनेः शैनेः आवश्यकता के आधार पर शिक्षा आराधना व्यवसाय, वाणिज्य तथा अन्य अभीष्ट कार्यों के सम्पादन के लिये छोटे-छोटे गांव महानगर में तब्दील हुये। नागरिकों की बहुलता के साथ साथ रहन, सहन, आचार-विचार, व्यवहार, वाणिज्य का असर नगरों में दिखा। भारत के प्राचीन नगरों में नालन्दा का विकास गुरुगृह, मुनि क्टीर अथवा साधारण साधुउटज से हुओ। बाद में यही विश्वविद्यालयीन नगर बना। वेदों में नगर निर्माण एवं नगर निवेश के दर्शन होते हैं जिससे वैदिक काल की नागरिक सभ्यता तथा विकसित रहन-सहन के तरीकों पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है। वैदिक युग काफी सभ्य तथा समृद्ध था। वेदों में वसतिपुर, दुर्ग एवं भवन संबंधी विभिन्न संकेतों से तत्कालीन वास्तु विकास के प्रबल प्रमाण प्राप्त होते हैं। तब नगर निवेश के नियमों का भले ही सम्यक प्रचार न हो पाया हो। किंतु जहां तक नगर निर्माण एवं नगर विकास का संबंध है, उसके सुदृढ़ एवं स्पष्ट निदर्शनों का अभाव नहीं है। निश्चिय ही वे लोग जो लौह दुर्गों का निर्माण कर सकते थे। क्तम्भ बहुल विशाल भवनों के निवेश में दक्ष थे तथा सुदीर्घ पुरों का विन्यास कर सकते थे। वास्तव में वैदिक जीवन ग्रामीण तो था ही नागरिक भी कम न था। इन तथ्यों से यह आभास होता है कि वैदिक काल में निर्माण कार्यों के लिये कुशल श्रमिकों का उपयोग किया जाता था। आज के वास्तुविदों की तरह जानकार एवं पारखियों का समूह निर्माण कार्यों में लगा होता था। पूंजी निवेश का जहां तक सवाल है, ज्यादातर राजाओं ने राजकीय कोष से निर्माण कराया। सीमेन्ट के

स्त्रोत:- (1) टाउन प्लानिंग इन एसियेंट इंडिया, दत्त

⁽²⁾ प्राचीन भारतीय कला एवं संस्कृति, सिंह- यादव



TODAY OF THE SECRET WITH SECURITION AND A SECOND SECURITION OF THE SECOND SECON

परिप्रेक्ष्य में सोचा जाये तो इसके लिये कोई अलग विक्रय, विपणन अथवा उत्पादन का सवाल वैदिक काल में नहीं उठता था। क्योंकि मिट्टी व अन्य तत्व जो जोड़ने के लिये प्रयुक्त होते थे वह सहज ही उपलब्ध थे। निर्माण कार्यों में आने वाली सकल लागत में ही सारी वस्तुएं समायोजित थीं। बड़ी संरचनाओं का निर्माण कुशल श्रमिकों एवं वास्तुविदों के समूह के द्वारा कराये जाने के अनेक उदाहरण मिलते हैं। महागोविंद नामक एक वास्तुविद ने गिरिव्रज नामक एक साढ़े चार मील की परिधि में एक दुर्ग बनाया था। महागोविंद का वास्तुज्ञान बेजोड़ था। इसके अलावा बुद्ध के समकालीन प्रसिद्ध राजा विम्बसार ने राजगृह नगर का तीन मील में निवेश किया था।

दत्तपुरं कालिंगानामस्सकांना च पोतनम्। महिस्मती अवन्तीनाम् सोवीरानां च्।। मिथिला च विदेहानाम् चम्पा अंगेषु माहिता।। वाराणसी च कासीनाम् एते गोविन्द-मापिता।।²

इन तथ्यों से अनुमान लगाया जा सकता है कि ज्यादातर निर्माण कार्य राज्य प्रमुख की ओर से किये गये। राज्य संचालित करने वालों ने ही पूंजी एवं श्रमिकों का इंतजाम किया। इस दौरान सीमेन्ट विशेष के लिये उपयोग की जाने वाली तकनीक भी राज्य के वास्तुविदों एवं कारीगरों ने दी। आज की तरह वित्तीय संकट जेसी किसी परिस्थिति का सामना तात्कालीन राजाओं को नहीं करना पड़ा।

सीमेन्ट उत्पादन की विधि आधुनिक काल में-

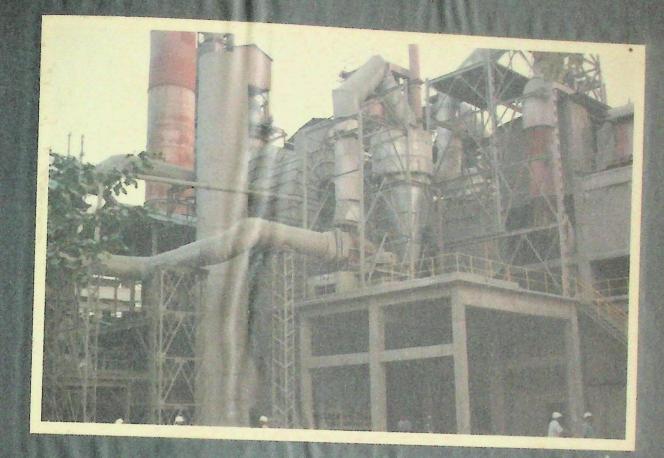
आधुनिक काल में सीमेन्ट के उत्पादन में चूना पत्थर, जिप्सम, फ्लाई एश (राख) एवं स्लेग व कोयला का इस्तेमाल मुख्यतः किया जाता है। आधुनिक टेक्नोलॉजी में सीमेन्ट संयंत्र उन क्षेत्रों में लगाये जाते हैं जहां कोयला व चूने की खदानें एवं पानी की उपलब्धता हो। कच्चे माल की उपलब्धता पर ही संयंत्र की आर्थिक नींव खड़ी होती है। अंचल में चाहें रेमण्ड सीमेन्ट संयंत्र हो अथ्रवा सी.सी.आई. या एन. सी.सी. सभी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध कच्चे माल के कारण सीमेन्ट उत्पादन कर सके। सी.सी.आई. सीमेंन्ट संयंत्र अकलतरा की स्थापना का प्रमुख कारण आसपास में उपलब्ध चूना पत्थर की खदानें एवं बांकीमोगरा, कोरबा, छूराकछार, चिरमिरी तथा बृजराजनगर से प्राप्त कोयला है। तीसरी मुख्य आवश्यकता जिप्सम की होती है जिसे मिनरल जिप्सम जयपुर तथा विशाखपट्टनम से प्राप्त किया जाता है। सी.सी.

स्त्रोत:- (1) द बुद्धिस्ट इंडिया, राईस

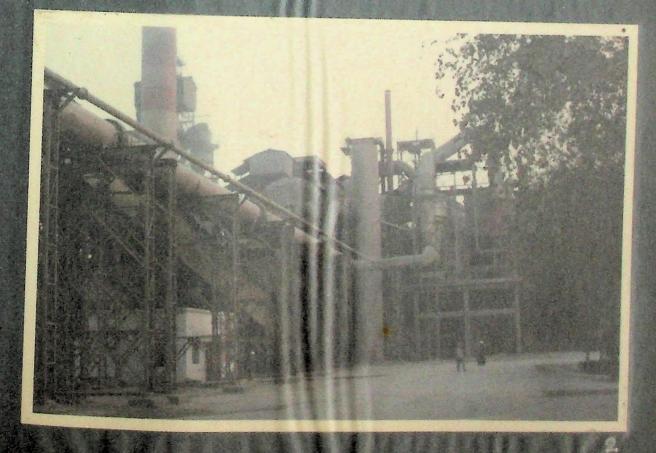
⁽²⁾ दिग्धनिकाय, (बौद्ध ग्रन्थ) 19.96

MINDIE WER THE PERSON POR

TARREST OF THE RESIDENCE OF THE TYPE PERSON STORY STORY OF THE

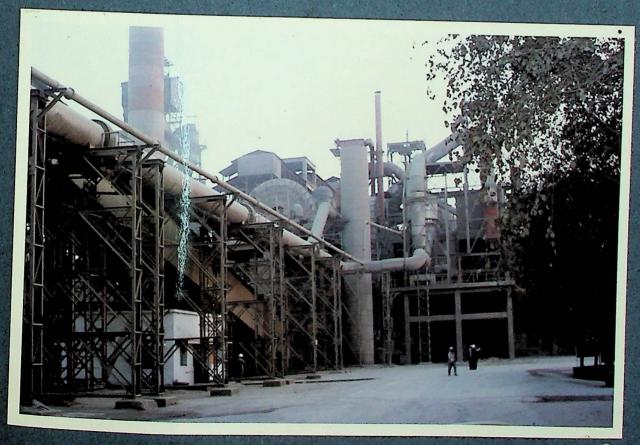


वैमण्ड स्मामेण्ट उत्पादन की उंगाधुनिक सकनीक





वैमण्ड स्मामेण्ट उत्पादन की आधुनिक तकनीक





आई को फ्लाई एस की पूर्ति भारत एल्यूमिनियम क.लि. बालको करता है। इसी तरह रेमंड सीमेन्ट संयंत्र में भी अंचल में उपलब्ध कच्चे माल का उपयोग किया जाता है।

सीमेन्ट उत्पादन में आवश्यक कच्चा माल -

- (अ). लाइम स्टोन: यह एक सफेद कठोर पत्थर होता है जो सीमेन्ट बनाने हेतु मुख्य रूप से उपयोग में लाया जाता है। रेमंड सीमेन्ट संयंत्र में लाइम स्टोन स्वयं के खदान से मिलता है। यह खदान लगभग 444 एकड़ भूमि पर फैली हुई है जिससे संयंत्र को चूना पत्थर की आपूर्ति की जाती है। वहीं सी.सी.आई. सीमेन्ट संयंत्र में चूना पत्थर अकलतरा स्थित माइन्स से मिलता है।
- (ब) फ्लाई एश :- चूना पत्थर के बाद फ्लाई एस सीमेन्ट उत्पादन के लिए दूसरा प्रमुख कच्चा माल है जिले के संयंत्रों में इसकी आपूर्ति एन.टी.पी.सी. (नेशनल थर्मल पावर कार्पोरेशन) एवं भारत एल्यूमिनियम क.लि. बालको से होती है। फ्लाई एस मूलतः कोयले की जली हुई राख होती है। जिसका और कोई उपयोग नहीं हो पाता। संयंत्रों से निकली हुई राख को विशाल बांध बनाकर पानी में डूबोकर रखा जाता है। एन.टी.पी.सी. से बड़ी यात्रा में राख उत्सर्जित होती है। इस पर्याप्त भंडारण का उपयोग अंचल के सीमेन्ट संयंत्रों में किया जा रहा है।
- (स) स्लेग: सीमेन्ट उत्पादन में स्लेग भी आवश्यक कच्ची सामग्री है जिसकी आपूर्ति भिलाई इस्पात संयंत्र एवं राउरकेला इस्पात संयंत्र से होती है। स्लेग, स्टील उत्पादन के बाद निकला बेकार तत्व होता है, लेकिन इसका सीमेन्ट उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान है।
- (द) जिप्सम :- सीमेन्ट उत्पादन में जिप्सम भी आवश्यक तत्व है। अंचल में उपलब्ध न होने के कारण इसे बाहर से मंगाया जाता है। जिप्सम फर्टिलाइजर उद्योग का उप उत्पादन माना जाता है जिसकी आपूर्ति मिनरल जिप्सम जयपुर, (राजस्थान) विशाखापट्टनम, आन्ध्रप्रदेश से होती है।
- (ई) कोयला :- सीमेन्ट निर्माण में कोयला सहायक सामग्री है जिसका उपयोग मुख्यतः ताप बढ़ाने के लिए किया जाता है। उपयोग से पूर्व कोयले को पावडर के रूप में तब्दील किया जाता है। अंचल में कोयले की अनेक खदानें हैं इसलिये सीमेन्ट उद्योगों को आसानी से कोयला उपलब्ध हो जाता है। बांकीमोंगरा, कोरबा, चिरिमरी, छूराकछार में एसी.सी.एल. की खदानों से कोयला प्राप्त किया जाता है।

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.

सीमेन्ट उत्पादन की तकनीक

सीमेन्ट संयंत्र में काम आने वाली मशीनें :-

- (1) ब्लास्टिंग मशीन खदानों में चूने की बड़ी बड़ी चट्टानों को तोड़ने के लिये ब्लास्टिंग मशीनों की जरुरत होती है। कुछ खदानों में इसके लिए विस्फोटकों का उपयोग भी किया जाता है।
- (2) क्रशर चट्टानों को दुकड़ों में विभक्त करने के लिये क्रशर की जरुरत होती है इस मशीन की कुटन क्षमता 400 मि. टन प्रति घंटा होती है।
- (3) दितीयक क्रशर प्राथमिक क्रशर से चूने के 300 एम.एम. के टुकड़ों को दितीयक क्रशर के माध्यम से 12 से 20 एम.एम. तक तोड़ा जाता है। इसकी क्षमता 250 मि. टन प्रति घंटा होती है।
- (4) रॉ मिल- चूने को पीसने के लिये सीमेंट संयंत्रों में रॉ मिल लगाई जाती है। इसकी क्षमता लगभग 120 मि. टन प्रति घंटे होती है।
- (5) ग्रांइडिंग मशीन रॉ मिल में पीसे गये कच्चे माल को लेटेराइट मिलाकर महीन पीसने का काम ग्राइंडिंग मशीन करती है। यह पदार्थ सीमेन्ट उत्पादन के तैयार प्रमुख कच्चामाल कहलाता है। रॉ मिल के पावडर में 98 प्रतिशत चूना पत्थर और 2 प्रतिशत लेटेराइट होता है।
 - (6) स्क्रीन हाउस इसके जरिये रॉ मिल के पावडर को छाना जाता है।
- (7) कोल मिल-इस मशीन से कोयले को चूर्ण में बदला जाता है। कोयले का यह चूरा फर्नेश भट्टी में जलाया जाता है। इसकी क्षमता 14 मि. टन प्रति घंटे की होती है।
- (8) क्लिन इस मशीन में रॉ मिल के पावडर व सेण्डराइट को 1400 से. ग्रेड पर भट्टी में गर्म किया जाता है। जिससे क्लिंकर बनता है। इसमें अन्य कच्ची सामग्री मिलाकर सीमेंट बनता है।
- (9) फर्नेश कच्चे माल को उच्च तापमान में मिलाने के लिये भट्टी का उपयोग किया जाता है। फायर ब्रिक्स की बनी भट्टी का बाहरी स्तर लोहे का होता है।
- (10) प्रशीतक इसके जरिये क्लिन में तैयार क्लिंकर को ठंडा किया जाता है। इसके पश्चात क्लिंकर को स्टाक पाइल में एकत्र कर लिया जाता है।
- (11) सीमेन्ट मिल इस मिले में ही सीमेन्ट तैयार होता है। जिप्सम, स्लेग, फ्लाई एश आदि को मिलाकर सीमेन्ट तैयार किया जाता है।

- (12) पैकर् इस स्वचालित मशीन का उपयोग तैयार सीमेन्ट को बोरे में भरने के लिये किया जाता है। मशीन से 50.5 किलोग्राम सीमेन्ट बोरे में जाता है। इसकी क्षमता 14 बोरी प्रतिमिनट तक होती है।
- (13) पंप हाउस एवं विद्युत कंट्रोल पेनल— संयंत्र को पानी की सतत आपूर्ति करने के लिये अलग से पंप हाउस का निर्माण करना पड़ता है। इसी तरह बिजली आपूर्ति के लिए उच्च दाब नियंत्रण कक्ष भी बनाना पड़ता है।

सीमेन्ट उत्पादन की विधियां :-

आधुनिक तकनीक में सीमेन्ट उत्पादन मुख्यतः चार प्रक्रियाओं द्वारा किया जाता है।

- (1) वेट प्रक्रिया
- (2) सेमीवेट प्रक्रिया
- (3) ड्राय प्रक्रिया
- (4) सेमी ड्राय प्रक्रिया

आधुनिक काल में श्रम एवं पूंजी — सीमेन्ट संयंत्रों में अब पूंजी के अनुमान एवं उसके प्रबंध का विशेष महत्व है। वर्तमान वित्तीय परिस्थितियों एवं व्यापार जगत में उदारीकरण के कारण वित्त प्रबंध का कुशलतम होना आवश्यक है। प्रत्येक व्यवसाय के संचालन के लिए पर्याप्त मात्रा में वित्त की आवश्यकता होती है। संतुलित मात्रा में वित्त प्राप्त करना तथा उसके कुशलतम उपयोग करने का कार्य वित्त प्रबंध द्वारा किया जाता है वित्त प्रबंध में मुख्यतः चार बातों का समावेश होता है।

- (1) वित्तीय आवश्यकताओं का अनुमान लगाना
- (2) पूंजी के कलेवर का निर्माण करना।
- (3) पूंजी प्राप्ति के श्रेष्ठ स्त्रोतों का निर्धारण करना।
- (4) अर्जित आय का प्रबंध करना।

आधुनिक युग में वित्त वह धुरी है जिसके चारों ओर आर्थिक संसार घूमता हैं किसी बड़े उद्योग एवं व्यापार को चाहे वह बड़े पैमाने पर हो अथवा छोटे पैमाने पर, उसके प्रारंभ करने एवं उसके भावी विस्तार के लिये पर्याप्त वित्त की आवश्यकता होती है। वित्त प्रबंध की उचित व्यवस्था के अभाव में

स्त्रोत:- वार्ता, रेमण्ड त्रैमासिक

अनेक उद्योग विकास की योजनायें कागजों तक ही सीमित रहकर असफल हो जाती हैं। वित्त प्रबंध से ही पूंजी का उपयोग सही तरीके से हो पाता हैं

उद्योगों में सामान्य दो प्रकार की पूंजी की आवश्यकता होती है।

- (1) स्थाई अथवा दीर्घकालीन पूंजी जैसे- भूमि मशीन आदि के लिये
- (2) चल या अल्पकालीन पूंजी कच्चा माल, अन्य सामग्री खरीदने, निर्मित माल स्टाक कर रखने व दैनिक उपयोग के लिये आवश्यक पूंजी

औद्योगिक वित्त के साधन

सामान्यतः एक औद्योगिक संस्था निम्नांकित साधनों द्वारा अपनी पूंजीगत आवश्यकताओं की पूर्तिकरती है।

- (1) अंशपूंजी— अंशपत्र दीर्घकालीन तथ स्थाई पूंजी का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत है। जिले में सरकारी क्षेत्र सीमेंट कार्पोरेशन ऑफ इंडिया का एक सयंत्र है जिसे सी.सी.आई. अकलतरा के नाम से जाना जाता हैं चूंकि यह सरकारी क्षेत्र का संयंत्र है इसलिये अंश पत्रों का निर्गमन निगम द्वारा ही किया जाता है। अन्य निजी क्षेत्र के सीमेन्ट उद्योग अंशपूंजी से संचालित हो रहे हैं।
- (2) स्थाई सम्पत्तियां स्थाई सम्पत्ति भी उद्योगों की स्थापना में महत्वपूर्ण पूंजी होती है। भवन संयंत्र, फर्नीचर आदि इस श्रेणी में आते है। स्थाई सम्पत्ति मात्र स्थापना के समय आवश्यक नहीं होती है बल्कि इसका मूल्यांकन समय समय पर भी होना चाहिये क्योंकि ये सम्पत्तियां निश्चित समय के बाद कार्य करने योग्य नहीं रह जाती। भूमि संयंत्र, प्लांट व मशीनरी, औजार, फर्नीचर, वाहन, सड़कें एवं पाइप लाइनें पानी पूर्ति की नालियां, साइडिंग हेतु रेलवे लाइन, रेलवे वैगन, विनियोग आदि को स्थाई सम्पत्ति माना जाता है। इसके अलावा कच्चे माल की खपत, बिजली आदि के लिये कोयले की खपत, कर्मचारियों के वेतन एवं अन्य सुविधाओं पर व्यय, कल्याण योजनाओं पर व्यय, किराया, बीमा, एक्साइज ड्यूटी आदि पर व्यय, मरम्मत एवं मशीनरी, अनुरक्षण पर व्यय, अंकेक्षण शुल्क पर व्यय एवं विक्रय, वितरण पर व्यय के लिये पूंजी की आवश्यकता होती है। वर्तमान आधुनिक सीमेन्ट संयंत्रों

में बाजार की प्रतिस्पर्धा को ध्यान में रखते हुये केवल पूंजी निवेश ही नहीं उसका सही उपयोग भी आवश्यक है। निजी क्षेत्र के सीमेन्ट संयंत्र जहां अंशपूंजी और अन्य व्यवसायों से पूंजी निवेश कर व्यापारिक प्रतिस्पर्धा में खड़े हैं वहीं सी.सी.आई. जैसे सरकारी क्षेत्र के संयंत्र प्रतिस्पर्धा के दौर में लड़खड़ा गये हैं।

(3). ऋण पत्र— ऋण पत्र भी दीर्घकालीन पूंजी प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण साधन है। इसका निर्गमन एक प्रमंडल बैंकों व्यापारिक एवं गैर व्यापारिक संस्थानों से ऋण लेने हेतु किया जाता है।

आधुनिक सीमेन्ट संयंत्रों में स्थाई एवं अस्थाई पूंजी की आवश्यकता

- (1) भूमि— सीमेन्ट का प्रमुख कच्चा माल चूना, कोयला आदि के लिये खदान की जरुवत होती है। जो संयंत्र दूसरे स्थानों से कोयला एवं चूना लाते हैं उन्हें खदान पट्टे पर या क्रय करने की जरुरत नहीं होती लेकिन बड़े संयंत्र आजकल लागत में कमी लाने के लिए खदान पट्टे पर ले लेते हैं। खदान के अलावा संयंत्र स्थल के लिये भूमि, सयंत्रके कर्मचारियों की आवासीय कालोनियों के लिये भूमि एवं अन्य कल्याण योजना जेसे अस्पताल स्कूल आदि के लिये भूमि की आवश्यकता होती है।
- (2) संयंत्र व भवन अत्याधुनिक टेक्नालाजी की विशाल मशीनों के लिए बड़ी पूंजी की आवश्यकता होती है इसके अलावा कार्यालय एवं कालोनियों के लिए भवन की आवश्यकता होती है वर्कशाप मशीनरी एवं भंडार गृह हेतु भी स्थाई पूंजी निवेश की आवश्यकता होती है।
- (3) औजार सीमेन्ट संयंत्रों की स्थाई सम्पत्तियों के अंतर्गत औजारों का महत्वपूर्ण स्थान है। इन्हें तीन भागों में बंाटा जा सकता है खदान से संबंधित कार्यालय, संबंधित एवं विविध औजार संयंत्र की उत्पादन क्षमता जितनी अधिक होगी औजारों पर उतना अधिक पूंजी निवेश करना पड़ेगा।
- (4) फर्नीचर एवं वाहन सीमेन्ट सयंत्रों के कुशल संचालन के लिये संयंत्र में, कार्यालयों में एवं अन्य भवनों में फर्नीचर, की आवश्यकता होती है। इसी तरह संयंत्र एवं कालोनी से संबंधित वाहनों की आवश्यकता होती है। हल्के एवं भारी दोनों प्रकार के वाहनों की आवश्यकता सीमेन्ट संयंत्रों में होती है। फर्नीचर एवं वाहनों की लागत में अवक्षयण भी होता है।

- (5) सड्कें, पाइप लाईन एवं नालियां सीमेन्ट संयंत्रों के कुशल संचालन में पाइप लाईनों उत्तम सड़कों एवं पानी आपूर्ति तथा जल निकासी हेतु उत्तम पाइप लाईनों में पूंजी निवेश करना होता है। संयंत्र एवं कालोनी में स्थित सड़कें एवं नालियों के निर्माण में लगी पूंजी का अवक्षयण भी होता है।
- (6) रेलवे लाइनें एवं वैगन— अधिक उत्पादन करने वाले बड़े सीमेन्ट संयंत्रों में स्वयं की रेल लाईन एवं वैगन की व्यवस्था भी की जाती है। साइडिंग से मुख्य रेल मार्ग तक रेलवे लाईन एवं स्वयं के वैगन रखने से अधिक से अधिक माल परिवहन किया जा सकता है। जिले में सी.सी.आई सीमेन्ट संयंत्र एवं रेमंड के लिये रेलवे लाईन एवं वैगन की व्यवस्था है वही अन्य निजी संयंत्र सड़क परिवहन के जिरये व्यापार करते हैं।
- (7) विनियोग कभी कभी कम्पनी के भविष्य के साधन के रूप में विनियोग किया जाता है जो किसी कम्पनी के अंश, ऋण पत्र या सरकारी योजना के तहत होता है।
- (8) चल सम्पितियां ऋण व अग्रिम— सीमेन्ट संयंत्रों में स्पेयर पार्ट्स, कच्चा माल, निर्मित उत्पाद, औजार, पेकिंगसामग्री अर्ध निर्मित उत्पाद में काफी पूंजी निवेश करना होता है। यह सामग्रियां सीधे उत्पादन, विक्रय एवं वितरण से संबंधित होती हैं
- (9) ऋण बड़े संयंत्रों में काफी बड़ी राशि ऋण के रूप में वितरित होती है। जिसकी भरपाई शनैः शनैः होती है राज्य विद्युत मंडल को कर्मचारियों को एवं अब व्यापारियों को भी ऋण देने के लिए बड़ी राशि की आवश्यकता होती है।
- (10) अग्रिम ठेकेदारों, कर्मचारियों आदि को संयंत्रों से अग्रिम राशि भी दी जाती हैं इससे कभी कभी संयंत्र की वित्तीय स्थिति भी लड़खड़ाने का अंदेशा भी रहता है। निजी कम्पनियां अग्रिम राशि देने को प्राथमिकता नहीं देती।
- (11) चल देयतायें एवं आयोजन कर्मचारियों को ग्रेच्युटी, बोनस, मजदूर कल्याण आदि पर व्यय करना होता है। उत्पादन के विवरण, विज्ञापन एवं प्रोत्साहन संबंधी कार्यों में भी राशि लगती है।

स्त्रोतः – औद्योगिक अर्थशास्त्र – कुमावत औद्योगिक संगठन एवं प्रबंध – डा. व्ही.एन. गुप्ता प्रबंध के तत्व – एस.सी. सक्सेना

सीमेन्ट उद्योगों में श्रम-

सीमेन्ट उद्योगों में आधुनिक टेक्नालॉजी के साथ साथ कुशल हाथों का भी कम योगदान नहीं है। सीमेन्ट उद्योगों में कुशल श्रमिकों, कर्मचारियों एवं अध्किरियों की सुनियोजित संरचना एवं कार्य विभाजनं का सीधा असर उत्पादन, लागत एवं ग्णवत्ता पर पडता है। यह सच है कि आध्निकता के दौर में श्रम की जरुरत कम हो गई है लेकिन कुशल प्रबंधन की जरुरत और महत्व अब और बढ़ गया है। सीमेन्ट संयंत्र में संगठन की संरचना आम तौर पर उत्पादन विक्रय एवं सेवीवर्गीय विभाग में बंटा होता है। ई एफ, एल. ब्रेच के अनुसार- तत्संगठन प्रबंध की संरचना या फेमवर्क अधिक सार्थक कार्य सम्पादन के लिये कल उत्तरदायित्वों को विभक्त करता है।प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने पूंजी को महत्वपूर्ण स्थान दिया था लेकिन कार्ल मार्क्स ने श्रम को सर्वाधिक महत्व दिया, एवं पूंजी को मानवीय शोषण के लिए उत्तरदायी ठहराया। आज के दौर में उद्योगों के करोड़ों की पूंजी विनियोजित होती है। लेकिन श्रमिक की भर्ती में यदि सावधनी नहीं रखी गई तो उसके परिणाम अच्छे नहीं मिलते। आजकल इसीलिए सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों में मानव संसाधन विभाग की अलग से स्थापना की जाती है। योग्य अधि-कारियों कर्मचारियों एवं श्रमिकों की व्यवस्था करना इस विभाग का कार्य होता है। मानव संसाधन प्रबंध, प्रबंध का वह भाग है जो कर्मचारियों तथाअन्य श्रमजीवियों की प्रबंध व्यवस्था से संबंध रखता है। श्रमिकों के जीवन की आर्थिक, सामाजिक एवं आत्मिक संतुष्टि का सीधा असर उद्योग पर पड़ता है। मानव संसाधन विभाग योग्य व कुशल श्रमिकों की व्यवस्था, प्रशिक्षण, एवं नीति संबंधी जानकारी देने के साथ साथ कर्मचारियों के मनोबल को बढ़ाने का काम भी करता हैं।

मानव संसाधन प्रबंध में शामिल कार्य

अ. मानव संसाधन— रोजगार एवं विकास इसके तहत मानव शक्ति का नियोजन, श्रिमकों की भर्ती एवं चयन प्रक्रिया, पदोन्नित, अवनित, तबादले, अनुपिस्थिति एवं कर्मचारी प्रशिक्षण का कार्य संपादित होता है।

ब. मानवीय संबंध— कर्मचारियों की आवश्यकता की पूर्ति करना, अनुशासन रखना, मनोबल बढ़ाना, आदि कार्य मानवीय आधार पर किये जाते हैं जिससे श्रमिक वर्ग का भावनात्मक लगाव संस्थान

स्त्रोत- 1. भा. वैदिक वास्तुकला डॉ. के.वी. अग्रवाल

^{2.} जन कल्याणी वास्तुशास्त्र बी.एल. शर्मा

से हो सके।

- स. सुरक्षा लाभ एवं कर्मचारी अभिलेख मानव संसाधन प्रबंध के तहत औद्योगिक स्वास्थ्य एवं सुरक्षा, अनुषांगिक लाभ एवं सेवाएं सेविवर्गीय अभिलेख की जवाबदारी भी संस्थान की होती है।
- द. श्रम प्रबंध—संबंध— श्रम प्रबंध, औद्योगिक विवाद, श्रमिक संगठन एवं सामूहिक सौदेबाजी को श्रम प्रबंध की श्रेणी में रखा जाता है।

सीमेन्ट संयंत्रों में मानव शक्ति को मुख्यतः दो भागों में बांटा जाता है।

- (1) परिचालन- इसके तहत निम्न उपविभाग होते हैं
- अ. तकनीकी विभाग
- ब. उत्पादन विभाग
- स. निर्माण विभाग
- द. खनन विभाग
- ई. विद्युत विभाग
- फ. उपकरण विभाग
- (2) वाणिज्य एवं प्रशासन- इसे निम्न उप विभागों में बांटा जाता है।
- अ. वित्त विभग
- ब. प्रशासनिक एवं कार्मिक विभाग
- स. क्रय एवं भंडार विभाग
- द. विकृय विभाग

मानव शक्ति नियोजन

संयंत्रों में कर्मचारियों को मुख्यतः चार वर्गों में विभाजित किया जाता है।

- 1. कार्यपालक वर्ग
- 2. पर्यवेक्षक वर्ग

- 3. लिपिक वर्ग
- 4. श्रमिक वर्ग

श्रमिक वर्ग को पांच वर्गों में विभाजित किया जाता है।

- 1. उच्च कुशल श्रमिक अ वर्ग
- 2. क्शल श्रमिक ब वर्ग
- 3. निम्न कुशल श्रमिक स वर्ग
- 4. अर्ध कुशल श्रमिक द वर्ग
- 5. अकुशल श्रमिक इ वर्ग

ठेका श्रम आजकल श्रम शक्ति की आपूर्ति में ठेका श्रम का भी काफी महत्व होता है। ठेका श्रम में मजदूरी प्राप्त होती है लेकिन वे लाभ नहीं मिलते जो नियमित श्रमिकों को प्राप्त होते हैं। सीमेन्ट संयंत्रों में ठेका श्रमिक बड़ी संख्या में है।

सीमेन्ट उद्योग की वेतन एवं मजदूरी संरचना

- (1) वेजबोर्ड द्वारा संस्तुत मजदूरी— वेजबोर्ड से तात्पर्य ऐसे बोर्ड से है जिसकी प्रकृति त्रिपक्षीय होती है नियोजकों, कामगारों के अलावा एक चेयरमेन होता है इसके अलावा एक अर्थशास्त्री एवं एक उपभोक्ता का प्रतिनिधि भी होता है। 1957 से अब तक 22 वेजबोर्ड स्थापितिकये जा चुके हैं। संयंत्र निजी हो अथवा सरकारी वेजबोर्ड की अनुशंसा के अनुसार ही वेतन और मजदूरी दिया जाना जरुरी होता है। सीमेन्ट उद्योग में पहला वेजबोर्ड अवार्ड 1968 में लागू किया गया।
- (2) नान वेज बोर्ड मजदूरी— इसका निर्धारण केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित वेतन एवं मजदूरी के अनुसार किया जाता है। इसी के अनुसार कर्मचारियों एवं श्रमिकों को वेतन दिया जाता है।

सीमेन्ट संयंत्र में संगठन संरचना-

1. माइन्स या खनन विभाग— संयंत्रों में प्रमुख कच्चा माल, चूना पत्थर खदानों से निकाला जाता है। इस कार्य के लिये खदानों में कुशल श्रमिक, सर्वेयर, टाईमकीपर, आदि शामिल होते हैं। चीफ

स्त्रोतः – मार्केटिंग मैनेजमेंट फिलिप काटेलर व्यवसाय, सरकार एवं समाज – डा. पोरवाल मराठा

माइन्स मैनेजर इस विभाग का प्रमुख अधिकारी या अध्यक्ष होता है। जिसके निरीक्षण व निर्देशन में इस विभाग के कार्यों का निष्पादन होता है। चूना पत्थर निकालकर क्रशिंग प्रविधि तक पहुंचाना इस विभाग का कार्य है।

- 2. उत्पादन विभाग उत्पादन प्रबंधक एवं विभाग का प्रमुख होता है। सीमेन्ट उत्पादन संबंधी कार्यों का निष्पादन इस विभाग द्वारा किया जाता है। इस विभाग के कर्मचारियों पर पूरे संयंत्र का दायित्व होता हैं।
- 3. मैकेनिकल विभाग— मैकेनिकल इंजीनियर इस विभाग का प्रमुख अधिकारी होता है। संयंत्र के मशीनों की देखरेख आवश्यकता अनुसार मशीनों की स्थापना एवं पुर्नस्थापना इस विभाग का प्रमुख कार्य होता है। कुशल श्रमिकों का एक बड़ा समूह इस विभाग के तहत कार्य करता है।
- 4. इलेक्ट्रिक विभाग संयंत्र की मशीनों एवं परिसर तथा कालोनी आदि में बिजली संबंधी समस्त कार्यों का संचालन यह विभाग करता है। इलेक्ट्रिकल इंजीनियर इस विभाग का प्रमुख अधिकारी होता है। इलेक्ट्रिशियन एवं वायरमेन लाइन मेन आदि कुशल कर्मचारी इस विभाग के अन्तर्गत कार्य करते हैं।
- 5. सिविल विभाग सिविल इंजीनियर इस विभाग का प्रमुख अधिकारी होता है। संयंत्र की नींव रखने के साथ ही सिविल निर्माण कालोनी निर्माण एवं भवन आदि निर्माण इस विभाग के निर्देशन में पूर्ण किये जाते हैं।
- 6. क्रय विभाग- मुख्य क्रय अधिकारी इस विभाग का प्रमुख होता है। कारखाने में उत्पादन के लिये आवश्यक कच्चा माल एवं अन्य वस्तुओं की खरीदी इस विभाग द्वारा की जाती है। इस विभाग का कार्य संयंत्र से सीधे संबंधित न होकर सीधे कार्यालय से होता है।
- 7. विक्रय विभाग— उत्पादित सीमेन्ट का विक्रय करना, बाजार में विक्रय की नीति निर्धारित करना एवं वितरकों की नियुक्ति करना जैसे महत्वपूर्ण कार्य को अंजाम देने वाले इस विभाग का प्रमुख मुख्य विक्रय प्रबंधक होता है। विक्रय से सीधे जुड़े होने के कारण आजकल इस विभाग में वरिष्ठ अफसर विक्रय निर्देशक बनाया जाता है।

स्त्रोत- विक्रय एवं विपणन प्रबंध – जानसन लेविस औद्योगिक सनियम– बालकृष्ण कुमावत प्रबंध के तत्व – बी.आर. माथुर श्रम अर्थशास्त्र एवं औद्योगिक संबंध– भगोलीवाल

- 8. स्टोर् विभाग- कारखाने के लिये खरीदे गये माल का संग्रह करना स्टोर विभाग का कार्य है। आवश्यकतानुसार स्टोर से माल निकालना व वापस लिये गये माल का लेख-जोखा करना स्टोरकीपर का काम होता है।
- 9. लेखा विभाग- संस्था में होने वाले सभी व्यवहारों व लेखों का हिसाब रखने के लिये यह विभाग स्थापित किया जाता है। मुख्य लेखापाल की सहायता से मैनेजर इस विभाग का कार्य संचालित करता है।
- 10. सतर्कता विभाग— सावधानी एवं सुरक्षा की दृष्टि से इस विभाग की स्थापना करना आवश्यक होता है। प्रमुख अधिकारी के निर्देशन में अलग—अलग शाखाओं में सुरक्षा संबंधी जिम्मेदारियों का निर्वहन इस विभाग द्वारा किया जाता है।
- 11. कार्मिक प्रबंध विभाग— कार्मिक प्रबंध विभाग का प्रमुख कार्मिक प्रबंधक होता है। किसी भी संयंत्र की सफलता उसके श्रमिकों की कार्यकुशलता पर निर्भर करती है। श्रमिकों की सही समय पर पदोन्नित, सेवा शर्तों के अनुकूल सुविधाएं देना एवं लापरवाह श्रमिकों की दंडित करने का कार्य कार्मिक प्रबंध विभाग द्वारा किया जाता है।

श्रमिकों की नियुक्ति से लेकर उन्हें प्रशिक्षण मजदूरी का निर्धारण एवं उनकी कार्यक्षमता का पूर्ण उपयोग करना श्रम नीति के आवश्यक तत्व है। श्रम संबंधी नियमों का पालन करना और श्रमिक सुरक्षा एवं श्रम कल्याण की योजनाओं को लागू करना किसी भी संयंत्र के कुशल संचालन के लिये अत्यन्त आवश्यक होता हैं।

अध्याय चतुर्थ

बिलासपुर जिले में सीमेंट उद्योग का विकास

- 1. स्थिति
- 2. स्थापना
- 3. विकास एवं प्रगति
- 4. उत्पादन, विक्रय एवं वितरण

अध्याय चतुर्थ

बिलासपुर जिले में सीमेंट उद्योग का विकास

- 1. स्थिति
- 2. स्थापना
- 3. विकास एवं प्रगति
- 4. उत्पादन, विक्रय एवं वितरण

अध्याय चतुर्थ बिलासपुर जिले में सीमेंट उद्योग का विकास

1. स्थिति

बिलासपुर जिले में सीमेंट उद्योग का इतिहास अधिक पुराना नहीं है। इस जिले में सीमेन्ट उद्योग का इतिहास उस समय आरंभ हुआ, जब सन 1976 में जांजगीर तहसील के अंतर्गत अकलतरा में सी.सी. आई. सीमेन्ट उद्योग की 24 दिसंबर 1979 में स्थापना की गई। इसकी उत्पादन क्षमता 4 लाख टन वार्षिक है। इस उद्योग ने अपना उत्पादन 1 अप्रेल 1981 से प्रारंभ किया। इस जिले में दूसरा सीमेंट संयंत्र अगस्त 1982 में 'गोपालनगर' नामक स्थान पर 'रेमण्ड सीमेन्ट वर्क्स के नाम से स्थापित हुआ। यह इस क्षेत्र का एक वृहद उद्योग है। इसका वार्षिक उत्पादन 9 लाख टन है। सन 1985 में 'श्रीराम सीमेन्ट वर्क्स' संयंत्र की स्थापना ग्राम बोदरी (बिल्हा) में की गई। बिलासपुर जिले में सन् 1985 तक तीन सीमेन्ट उद्योग स्थापित किये गये थे किंतु आगे भी इस जिले में सीमेंट उद्योग की स्थापना का सिलिसिला चलता रहा। इसी कड़ी में बिलासपुर से 3 कि.मी. दूरी पर औद्योगिक प्रक्षेत्र तिफरा में नेशनल सीमेंट कार्पोरेशन तिफरा की स्थापना अप्रेल 1991 में की गई। सन् 1992 में 'मोहन सीमेन्ट कार्पोरेशन सिरगिट्टी' एवं 1993 में लक्ष्मण पोर्टलैंण्ड सीमेंट तिफरा की स्थापना हुई। इस प्रकार जिले में कुल 6 सीमेन्ट संयंत्र हैं जिनमें से कुछ में उत्पादन फिलहाल बंद है इस अध्याय में सीसीआई, रेमण्ड एवं एनसीसी पर अध्ययन किया गया है!

सीसीआई सीमेंट संयंत्र का क्षेत्र

	कुल भूमि	खदान	आवास
रासकीय भूमि	419.02	16.02	403.00
निजीं भूमि	571.51	437.03	134.48
योग	990.53	453.05	537.48

स्त्रोत:- (1) औद्योगिक विकास बिलासपुर जिला

भौगोलिक संरचना और खनिज की उपलब्धता ही यहां सीमेंट उद्योग को माकूल माहौल दे रही है। सर्वेक्षण के अनुसार राष्ट्र में उपलब्ध बाक्साइट का 44 प्रतिशत, लौह का 38 प्रतिशत और मैंगनीज का 50 प्रतिशत तथा कोयले का 35 प्रतिशत हिस्सा केवल अकेले मध्यप्रदेश के पास है। सीमेंट ग्रेड चूना पत्थर के भंडार, रेत, शीशा, डोलोमाइट आदि संभाग में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। इसी तरह संभाग में हसदेव, अरपा, आगरहाप आदि प्रमुख नदियों के कारण उद्योगों को पानी की भी कभी नहीं हो रही है।

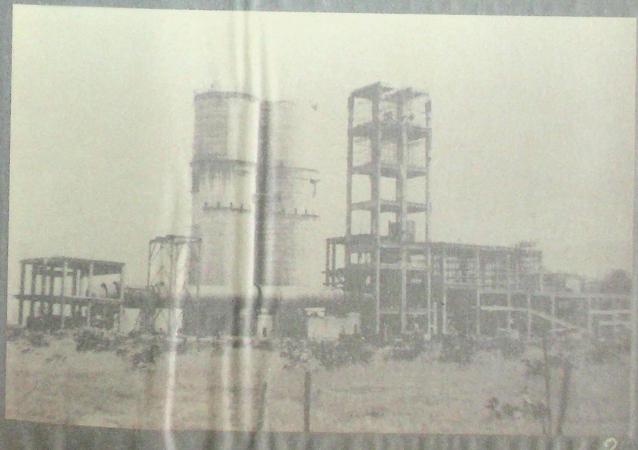
भारतीय सीमेन्ट निगम की अब तक की भूमिका :

18 जनवरी 1965 को भारतीय सीमेन्ट निगम की स्थापना होने के बाद सन् 1970 में भारतीय सीमेन्ट निगम का 3 लाख 80 हजार मिट्रिक टन उत्पादन क्षमता वाला पहला संयंत्र मध्यप्रदेश के रायपुर जिले में मांढर नामक स्थान पर अपना उत्पादन प्रारंभ किया। सन् १९७२ में भारतीय सीमेन्ट निगम का दूसरा संयंत्र कर्नाटक प्रदेश को कुरकुन्टा नामक स्थान पर 2 लाख टन क्षमता के साथ उत्पादन प्रारंभ किया। सन् 1977 में भारतीय सीमेन्ट निगम का तीसरा संयंत्र असम में तथा 1980 में हिमांचल प्रदेश के राजबन नामक स्थान में निगम का चौथा संयंत्र 2 लाख टन उत्पादन क्षमता के साथ उत्पादन प्रारंभ किये। सन् 1981 में 4 लाख टन क्षमता वाला संयंत्र ने मध्यप्रदेश के बिलासपुर जिले के अकलतरा नामक स्थान पर अपना उत्पादन प्रारंभ किया। यह भारतीय सीमेन्ट निगम का पांचवा संयंत्र है.इसके पश्चात निगमं ने अपना छठवां संयंत्र में 1.65 लाख टन की उत्पादन क्षमता के साथ सन् 1981 में प्रारंभ किया। सन् १९८२ में मध्यप्रदेश के मुरैना जिले के नयागांव नामक स्थान पर निगम के सातवें संयंत्र ने 4 लाख उत्पादन क्षमता के साथ अपना उत्पादन प्रारंभ किया। सन् १९८२ में ही आंध्रप्रदेश के यारुगुन्टाला नामक स्थान पर भारतीय सीमेन्ट निगम के आठवीं संयंत्र के 4 लाख टन की उत्पादन क्षमता के साथ अपना उत्पादन प्रारंभ किया तथा सन् 1982 में ही आंध्रप्रदेश के आदिलाबाद नामक स्थान पर भारतीय सीमेन्ट निगम के आठवें संयंत्र के 4 लाख टन की उत्पादन क्षमता केसाथ अपना उत्पादन प्रारंभ किया। तथा सन् १९८२ में ही आंध्रप्रदेश के आदिलाबाद नामक स्थान पर भारतीय सीमेन्ट निगम के नौवे संयंत्र ने 4 लाख मिट्रिक टन क्षमता के साथ अपना उत्पादन प्रारंभ किया, इतने कम समय तक निगम द्वारा इस प्रकार की तरक्की अपने आप में एक मिशाल है। इसके पश्चात 1986 में भारतीय सीमेन्ट निगम का दसवां संयंत्र आधुनिकता से परिपूर्ण आंध्रप्रदेश के तन्दुर नामक स्थान में 10 लाख टन उत्पादन क्षमता के साथ

स्त्रोत:- सी.सी.आई. न्यूज लेटर

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

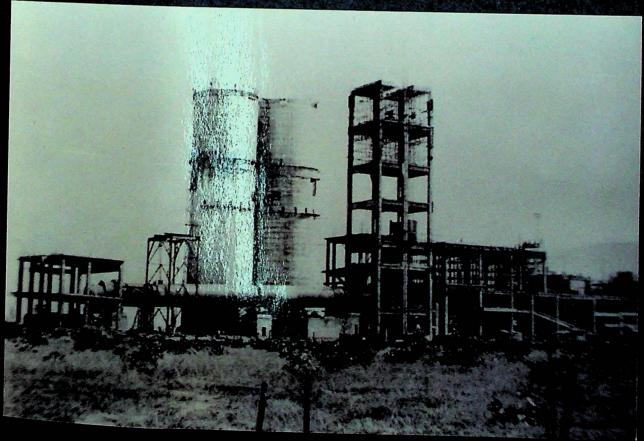




वर्गाः वर्गाः अगद्देः कैवर्गे अनकलत्वरा



1





उत्पादन कार्य प्रारंभ किया। निगम ने अच्छे 20 स्थानों का और 12,000 लाख टन चूने के पत्थर का पता लगाकर अपने उद्देश्य से पूर्णतः सफलता प्राप्त की। वर्तमान में निगम में 7000 कर्मचारी, 263 करोड़ रुपये की पूंजी के साथ कार्यरत हैं। 31 मार्च 1985 को निगम के 10 संयंत्र सीमेन्ट उत्पादन में जुटे हुये हैं।

सीमेंट इकाईयों की स्थापना -

अविभाजित बिलासपुर जिले में 4 सीमेंट इकाईयां स्थापित हैं। संभाग के परिप्रेक्ष्य में देखें तो रायगढ़ की एक मध्यम इकाई को मिलाकर कुल 5 संयंत्र है।

(1) सी.सी.आई. अकलतरा सीमेंट संयंत्र-

सीमेन्ट कार्पोरेशन आफ इंडिया द्वारा अकलतरा में वृहद इकाई की स्थापना की गई है। सार्वजनिक क्षेत्र का यह संयंत्र आज भले ही संकट के दौर से गुजर रहा है लेकिन पूर्व में यह अंचल को सीमेंट प्रदान करने वाला प्रमुख डद्योग था। बिलासपुर नगर से 51 किमी की दूरी पर जांजगीर मार्ग पर स्थित संयंत्र का शिलान्यास 24 दिसंबर सन 1976 को तत्कालीन केंद्रीय उद्योगमंत्री श्री टी.ए. पई एवं तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री श्यामाचरण शुक्ल की मौजूदगी में किया गया। अकलतरा सीमेंट संयंत्र का संपूर्ण संचालन, नियोजन एवं नियंत्रण सी.सी.आई. के मुख्यालय दिल्ली द्वारा होता है। संयंत्र की स्थापना पर लगभग 3240 लाख रुपये व्यय हुये। संयंत्र में पी.पी.सी. (पोर्टलैंड पोजोलाना सीमेंट) एवं ओ.पी.सी. (साधारण पोर्ट लैंड सीमेंट) दोनों तरह के उत्पादन होते हैं। संयंत्र के पास कुल शासकीय एवं निजी भूमि 990.53 एकड़ है।

अकलतरा सी.सी.आई सीमेंट संयंत्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि-

सीमेंट उत्पादन के लिए कच्चे माल की उपल्ब्धता और अनुकूल वातावरण को देखकर अकलतरा में सीमेंट उद्योग की स्थापना का विचार सन 1963 में सबसे पहली बार किया गया। चूने का विपुल भंडार यहां 90 वर्षों तक कारखानों को आपूर्ति कर सकता है वहीं स्लेग, कोयला एवं बिजली के सुलभ होने के कारण सीमेंट उद्योगों के विकसित होने की पूरी संभावनाओं के मद्देनजर सन 1972 में भारत सरकार को सीमेंट संयंत्र की स्थापना का प्रस्ताव भेजा गया था। 1800 टन प्रतिदिन ब्लास्ट फर्नेंस स्लेग (6,00,000 टन वार्षिक) सीमेंट उत्पादन का प्रस्ताव था। प्रस्तावित किया गया था कि 1200 टन प्रतिदिन (4 लाख टन प्रति वर्ष) की क्षमता का क्लिकर बनाने वाला संयंत्र अकलतरा में स्थापित किया जायेगा।

स्त्रोतः- विवरणिका- सी.सी.आई. संयंत्र

इसमें 2 लाख टन ग्रेन्यूलेटेड स्लेग मिलाकर पीसा जायेगा। यह स्लेग राउरकेला स्टील संयंत्र से लाने की योजना थी। इस प्रकार अकलतरा सीमेंट संयंत्र में 1800 टन प्रतिदिन की उत्पादन क्षमता का संयंत्र स्थापित किया जाना था। केंद्र सरकार द्वारा अनुमोदन के पश्चात संभावित लागत 1870 लाख की पूर्ति शासन से ऋण एवं अंशपूंजी से पूरा करने का प्रस्ताव था। राउरकेला इस्पात संयंत्र से अकलतरा सीमेंट संयंत्र तक स्लेग रेलवे द्वारा लाने की योजना के तहत विचार विमर्श किया गया। अगस्त 1974 में रेलवे ने उपरोक्त परिवहन सुविधा प्रदान करने में असमर्थता जाहिर कर दी। इससे प्रबंध समिति को अपना निर्णय बदलना पड़ा और 4 लाख टन उत्पादन क्षमता का सामान्य पोर्टलैंड सीमेंट संयंत्र स्थापित करने का विचार किया गया। सन 1976 में संयंत्र का शिलान्यास हुआ।

प्रारम्भ एवं प्रगति-

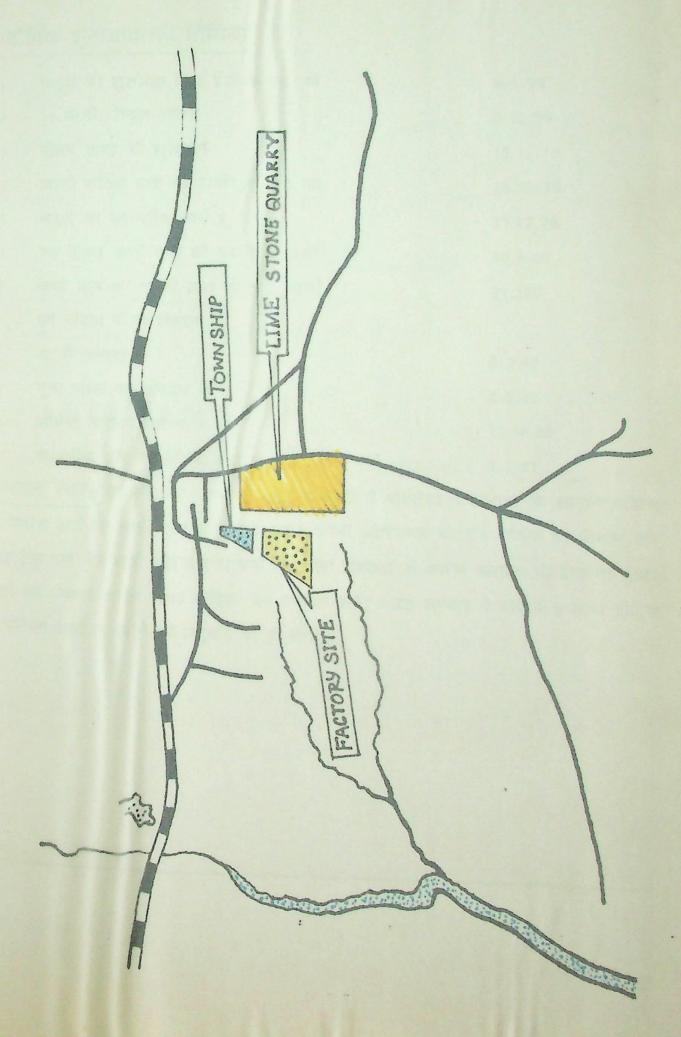
शिलान्यास		24.12.76
भवन निर्माण की शुरुआत		25.3.77
मशीन स्थापना		1.9.78
संयंत्र प्रारम्भ		6.9.79

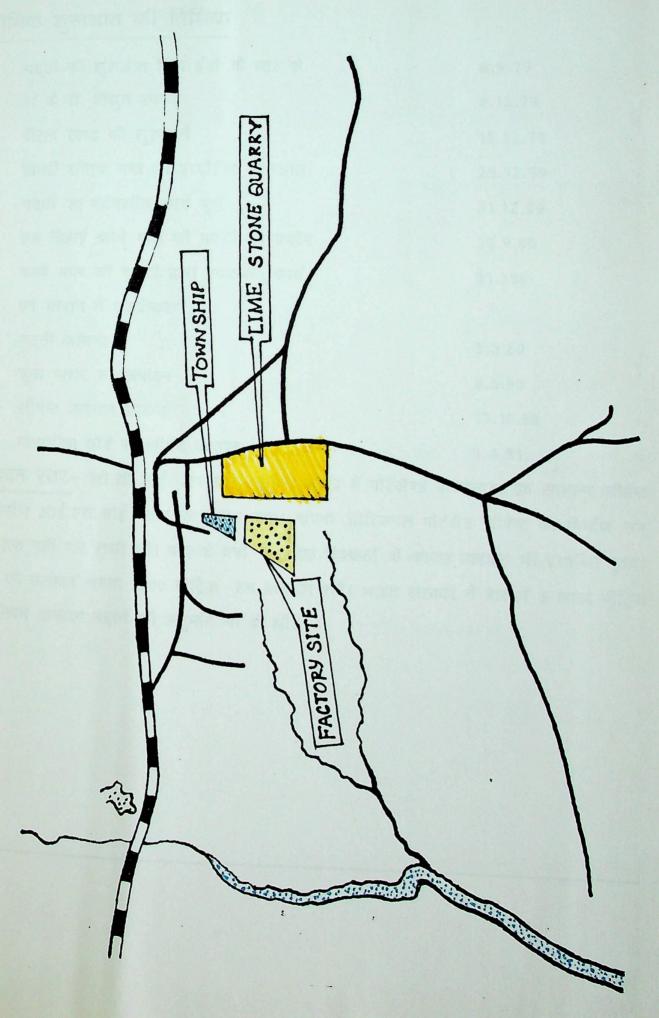
प्रदर्शन

निर्माण के प्रारम्भ से चूना पत्थर के उत्पादन तक में करीब 37 माह लगे, वहीं यांत्रिक कार्य के प्रारम करने में 20 माह का समय लगा। निर्माण की शुरुआत से सीमेन्ट उत्पादन तक 42 माह लगे, वहीं यांत्रिक कार्य के प्रारम्भ से उत्पादन तक की अवधि 25 माह रही। पीसन खण्ड की शुरुआत से उत्पादन तक में 10 माह का समय लगा।

स्त्रोत- विवरणिका एवं वार्षिक रिपोर्ट 1980

LOCATION MAP OF CO. PROJECT LOCATION MAP OF CO. PROJECT





प्रायोगिक शुरूआत की तिथियां

(1)	भट्ठी की शुरुआत बिना ईटों के स्तर के	6.9.79
(2)	11 के.वी. विद्युत उपकेंद्र	8.12.79
(3)	पीसन खण्ड की शुरुआत	15.12.79
(4)	खाली शीतक यन्त्र की प्रायोगिक शुरुआत	28.12.79
(5)	भट्ठी का वर्तनशील कार्य पूर्ण	31.12.79
(6)	एक तिहाई कच्चे माल की चक्की का प्रयोग	30.9.80
(7)	कच्चे माल की चक्की द्वारा एकरुपता कार्य	31.380
	एवं गोदाम में एकत्रीकरण	
(8)	भट्ठी जलाना	3.5.80
(9)	चूना पत्थर का उत्पादन	8.5.80
(10)	सीमेन्ट उत्पादन प्रारम्भ	17.10.80
(11)	व्यापारिक तौर पर सीमेंट उत्पादन	1.4.81

उत्पादन स्तर— सी.सी.आई. अकलतरा सीमेन्ट संयंत्र में पोर्टलैण्ड पोजोलाना एवं सामान्य सीमेन्ट का निर्माण आई.एस.आई. स्तर का किया गया। कंपनी ओरिजनल पोर्टलैंड सीमेन्ट का निर्माण सन् 1988 तक नहीं कर सकी थी। बाद के वर्षों में अनेक दिक्कतों के कारण उत्पादन भी प्रभावित हुआ। कंपनी की उत्पादन क्षमता 1200 मीद्रिक टन प्रतिदिन रही। भारत सरकार ने बाद में 5 लाख मीद्रिक टन प्रतिवर्ष उत्पादन बढ़ाने की अनुमित भी दी थी।

अकलतरा सीमेंट संयंत्र की उत्पादन विधि

1. खदान:-

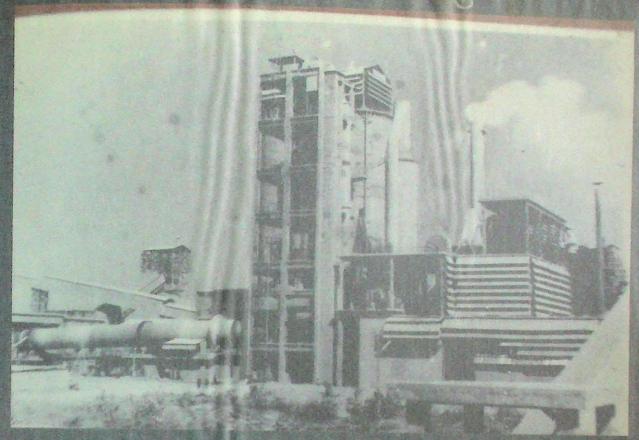
सीमेन्ट का निर्माण कच्चे माल के सिम्मिलित प्रयोग से होता है। ये कच्चे माल विभिन्न स्थानों से मंगाये जाते हैं। कच्चे माल में सर्वाधिक प्रयोग लाईम स्टोन का होता है। इसका भंडार सीसीआई के पास पर्याप्त मात्रा में है। यह कच्चा माल अकलतरा में संयंत्र से कुछ ही दूरी पर उपलब्ध है जिसे डम्फर के माध्यम से प्रथम कूटन तक पहुंचाया जाता है। यहां गुरुरातः लाईम स्टोन का ही भंडार है। खदान से कारखाने की दूरी लगभग 2 किलोमीटर है। पत्थर निकालने के लिये कुशल श्रमिक होते हैं। इनसे कार्य ठेके तथा दैनिक भुगतान पद्धित से करवाया जाता है। निकाले हुये माल को डम्फर में भरने और खाली करने की पद्धित स्वचालित है अर्थात क्रेन के द्वारा भरा जाता है जिससे श्रम, समय एवं पूंजी की बचत होती है। संयंत्र की प्रथम आवश्यक कच्चे माल की कीमत कम होने से सीमेन्ट की उत्पादन लागत भी कम आती है।

2. प्राइमरी क्रशर (प्रथम कूटन):-

प्रथम कूटन में खदान से डम्फर के द्वारा लाईम स्टोन का टुकड़ा लाया जाता है यह पत्थर आकृति में बहुत बड़ा होता है जिसे प्रथम कूटन के द्वारा छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ा जाता है। प्रथम कूटन की उत्पादन क्षमता 400 मीट्रिक टन है।

प्राइमरी क्रशर को दो पालियों में चलाया जाता है इसको संचालित करने के लिये 4 कर्मचारियों की नियुक्ति की गई है। इन कर्मचारियों का कार्य समय बराबर दो भागों में बांट दिया गया है। कर्मचारियों का मुख्य कार्य खदान से आय लाईम स्टोन के छोटे-छोटे टुकड़ों में परिवर्तित करना होता है। यदि किसी कारण से अत्यधिक माल आ जाये तो इनको रखने के लिये कुछ दूरी पर जमा कर दिया जाता है। लाईम स्टोन को तोड़ने के बाद कन्वेयर बेल्ट के द्वारा 150 मीटर दूरी पर द्वितीय कूटन के लिये एकत्र कर दिया जाता है। यह एकत्र माल द्वितीय कूटन के लिये कच्चे माल के रूप में होता है।

धुनिक तक नीक Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha



आं भी आई प









3. द्वितीय कूटन :-

प्रथम कूटन से रखे गये स्टाक द्वितीय कूटन के लिये कच्चे माल के लिये प्रयुक्त होता है। स्टाक के नीचे से कन्वेयर बेल्ट के माध्यम से क्रशर को 300 एम.एम. के टुकड़े को 12 एम.एम. से 20 एम.एम. तक तोड़ा जाता है। इस कार्य हेतु कर्मचारियों की संख्या 6 है इनमें से तीन को प्रथम पाली में कार्य करना पड़ता है और उतने ही कर्मचारियों को द्वितीय पाली में कार्य करना होता है।

कर्मचारियों को मुख्यतः कार्य संचालन उचित ढंग से करना होता है यदि लाईम स्टोन के टुकड़े बड़े-बड़े हो जाते है तो उसे लाकर द्वितीय क्रशर में पुनः तोड़ा जाता है अतः द्वितीय कूटन में लाईम स्टोन को अगले विधि के लिए कच्चे माल के पूर्व बनाया जाता है कूट्रे गये कच्चे माल को पूर्णतः छानकर ही आगे जाने दिया जाता है। द्वितीय कूटन से स्टॉक किया जाता है। इस स्टाक तक पहुंचाने का मार्ग कन्वयेर बेल्ट ही है। इस बेल्ट की दूरी लगभग 800 मीटर है।

द्वितीय कूटन की क्षमता 200 मीट्रिक टन-एच.आर. है। जिसमें 150 मि. टन-एच.आर. तक की सफलता प्राप्त की गई है। इनके द्वारा उत्पादित कच्चे माल को काफी मात्रा में स्टाक रखने की व्यवस्था है। अत्यधिक स्टाक होने पर उन्हें हटाने की सुविधा रखी गई है। यहां तक कच्चे माल के रूप में रखना द्वितीय कूटन का काम है।

4. हापर:-

द्वितीय कूटन से उत्पादित माल कन्वेयर बेल्ट के माध्यम से हापर तक पहुंचाया जाता है। हापर 3 खंडों में विभाजित है, जिनकी क्षमता क्रमशः 800, 250, 250 मीट्रिक टन के है। हापर को उनके क्षमता के अनुसार विभाजित कर नाम रखा गया है। 800 मीट्रिक टन को हाई ग्रेड और 250, 250 मि. टन को लोअर ग्रेड कहा जाता है इन हापर से ही रॉ मिल में कच्चा सामग्री पहुंचाया जाता है।

5. रॉ मिल (कच्चे माल की पिसाई)

हापर से प्राप्त कच्चे सामग्री जिनकी आकृति 12 एम.एम. से 20 एम.एम. की होती है। उसे कन्वेयर बेल्ट के माध्यम से सीमित मात्रा में रॉ मिल में पहुंचाया जाता है। यह रॉ मिल क्या है। यह एक मोटे लोहे की पाइप की आकृति का है। इस पाइप में बड़े बड़े लोहे के छर्रे होते हैं। इस पाइप में एक ओर से लाइम स्टोन के दुकड़े (कच्चे माल को) डाला जाता है। रॉ मिल गतिशील होने के कारण इसके अंदर रखा गया लोहे के छर्रे आपास में टकराते है और इस

टकराहट से ही लाइन स्टोप पिस सा जाता है। अतः इस प्रकार पिसा गया स्टोन को छानकर साइलो में रखा जाता है। अतः ११० मि. टन-एच.आर. है, जिसमें सफलता लगभग ९९ प्रतिशत मिला है। अतः ११० मि. टन-एच.आर. सफलता मिलता है।

6. साइलोः-

यह एक आंतरिक स्टॉक करने की है यहां पर पिसा हुआ लाइम स्टोन का पाउडर रहता है इसे चार खंडों में विभाजित किया गया है। उपर के खंडों में ब्लेडिंग साइलो और नीचे के दो खंडों को स्टोर साइलो कहते हैं। साइलो का मुख्य कार्य लाइम स्टोन पाउडर को पानी और हवा से सुरक्षित रखना है।

7. क्लिन:-

साइलो में रखा गया लाइम स्टोन का पाउडर इसके लिये कच्चे माल होता है किल्न क्या है– यह एक मोटे लोहे का गोला और लम्बा पाइप है। जिसे उच्च हार्स पावर के मोटर के सहारे घुमाया जाता है। यह एक गरम भट्टी है जिसमें 24 घंटे आग जलता रहता है।इसमें आग बंद करने के बाद लगभग 4–5 दिनों में ठंडा हो जाता है। इसमें आग कोयले के पाउडर के द्वारा पहुंचाया जाता है। इसके अंदर महीन कोयले का पाउडर मशीन द्वारा डाला जाता हैजो कि भट्टी गरम होने पर कोयला आग के रूप में तुरंत परिवर्तित हो जाता है।

भहीं के एक बार ठंडा होने के बाद पुनः गर्म करने पर 230 गैलन डीजल की खपत होती है और समय लगभग 2 से 3 दिन लग जाता है। कच्चे सामग्री साइलों के रोडीफीडर के द्वारा बेल्ट से होता हुआ किल्न में पहुंचता है। किल्न में पहुंचने पर यह लाइम स्टोन के पाउडर आग से एकदम तपने लगता है। आग गर्म होकर पाउडर एक दूसरे से चिपक कर छोटे गोले पत्थर का रूप धारण कर लेता है।

8. सीमेन्ट मिल :-

अभी तक उत्पादित सभी सामग्री कच्ची सामग्री के रूप में थी जो सीमेन्ट के लिये आवश्यक है। इन आवश्यक कच्चे माल को निश्चित प्रतिशत में मिलाकर सीमेन्ट बनाया जाता है सीमेन्ट के लिये कच्चे माल के रूप में निम्नलिखित सामग्री मिलायी जाती है।

- 1. क्लिंकर
- 2. जिप्सम
- 3. फ्लाई एश
- 4. स्लेग
- 5. ईट और रेत

उक्त सामग्री को अनुपातिक आधार पर मिलाकर हापर में एकत्र किया जाता है। कन्वेयर बेल्ट के द्वारा सीमेन्ट मिल में जाता है। सीमेन्ट मिल में सामग्री को एक साथ पिसा जाता है। इसे ही सीमेन्ट कहते हैं यह पावडर का रूप ही सीमेन्ट बनाने की अंतिम प्रक्रिया होती है।

सीमेन्ट मिल एक लोहे के गोले और लंबे पाइप के रूप में है। जिसे विद्युत मोटर की सहायता से घुमाया जाता है। इसके अंदर लोहे के छर्रे डाले जाते हैं सीमेन्ट मिल के घूमने के कारण छर्रे आपस में टकराते रहते हैं। इसी बीच सीमेन्ट के कच्चे माल को डाला जाता है। जो छर्रे के टकराने के कारण पावडर का रूप धारण कर लेता है। सीमेन्ट मिल की उत्पादन क्षमता 80 टन प्रतिघंटा है।

किस्म नियंत्रण करने की विधि

1. नियम प्रभावों तथा मानकों की स्थापनाः

किस्म नियंत्रण की स्थापना के लिये सबसे पहला कदम उत्पादन के लिए नियम प्रभावों तथा मानकों की स्थापना करना है। दूसरे शब्दों में किस्म नियंत्रण के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये प्रभावों तथा मानकों की स्थापना कर देनी चाहिये। इनकी स्थापना के लिये क्रय विभाग विक्रय विभाग, निर्माणी विभाग तथा निरीक्षण विभाग का सहयोग प्राप्त करना चाहिये। क्योंकि ये चारों विभाग आपस में निकटतम संबंधित है। तथा एक की क्रिया का दूसरे पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। निरीक्षण की दृष्टि से भी प्रभावों तथा मानकों की स्थापित किया जाना आवश्यक है। इनकी स्पष्ट रूप से व्याख्या किया जाना आवश्यक है। तािक इसके संबंध में किसी प्रकार के भ्रम के उत्पन्न होने की किंचित मात्र भी संभावना न रहने पाये।

A STATE OF THE SECOND S

2. निरीक्षण की व्यवस्था :

किस्म नियंत्रण की स्थापना की दूसरा महत्वपूण कदम निरीक्षण की समूचित व्यवस्था करना है। जब तक निरीक्षण की उपयुक्त व्यवस्था नहीं होगी तब तक किस्म नियंत्रण को प्रभावित ढंग से लागू नहीं किया जा सकता। निरीक्षण किस्म नियंत्रण में सहायता प्राप्त प्रदान करता है। अपव्यय की रोकथाम करके निर्माणी लागत को कम करता है। तथा दिषत कार्य से होने वाली क्षतियों को रोककर लाभों में वृद्धि करता हैं। जितनी प्रभावी निरीक्षण व्यवस्था होगी उतना ही अच्छा किस्म का नियंत्रण होगा।

3. कच्चे माल पर नियंत्रण :

निर्मित माल की किस्म काफी सीमा तक कच्चे माल की किस्म द्वारा प्रभावित होती है। यदि कच्चे माल की किस्म खराब होगी तो उत्पादित माल की किस्म भी स्वतः ही खराब होगी। अतएव पहले से ही यह निर्धारित कर लेना चाहिये कि किस किस्म का माल कच्चा खरीदा जायेगा। आदेश देते समय तथा माल की सुपुर्दगी लेते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि केवल प्रभावित किस्म के कच्चे माल को ही स्वीकार करना है। कच्चा माल किस किस्म का चाहिये, इसकी सूचना क्रय विभाग द्वारा पहले से ही कच्चे माल के विक्रेताओं को दे देनी चाहिये।

4. उत्पादन क्रियाओं पर नियन्त्रण :

केवल निर्धारित किस्म के माल का ही उत्पादन हो, इसके लिये उत्पादन क्रियाओं पर समुचित निर्माण स्थापित होना चाहिये। इसके लिए पग पग पर नियंत्रण की व्यवस्था होनी चाहिये। जहां तक संभव हो उत्पादन में स्वचालित विधियों का ही उपयोग किया जाना चाहिये।

5. साज सज्जा एवं अन्य विधियों के गुणों की जांच :

अंतिम उत्पाद की श्रेष्ठता केवल कच्चे माल की श्रेष्ठता पर निर्भर नहीं करती। वरन् संयंत्र मशीनरी एवं साज सञ्जा की प्रकृति एवं किस्म पर निर्भर करती है। जितनी अच्छी एवं आधुनिक मशीन एवं साज सञ्जा होगी, उत्पाद की किस्म उतनी ही श्रेष्ठ होगी। अतः इसकी जांच समय समय पर किया जाना परम् आवश्यक होता है।

6. नियंत्रण संबंधी अभिलेख रखना :

निरीक्षण एवं नियंत्रण संबंधी अभिलेखों को सुरक्षित अपने पास रखना ताकि भविष्य में भी उनका उपयोग किया जा सके। यह भी किस्म नियंत्रण का एक भाग है।

7. किस्म नियंत्रण के लिये सांख्यिकी विधि अपनाना :

प्रभावी किस्म नियंत्रण के लिये सांख्यिकी विधियों का उपयोग किया जाना चाहिये। आधुनिक युग में किस्म नियंत्रण की सांख्यिकी विधियां वरदान सिद्ध हुई है। सांख्यिकी के माध्यम से विभिन्नता के कारणों का तुरंत पता लगाकर सुधारात्मक कदम उठाया जा सकता है।

8 किस्म नियंत्रण के लाभः

प्रतियोगिता के इस युग में केवल वहीं माल बिकता है, जो कि विक्रय मूल्य के संदर्भ में अच्छी किस्म का हो। जो निर्माता अथवा उत्पादक प्रमाणित किस्त के माल का विक्रय करते हैं, उनकी ख्याति एवं बिक्री दोनों में निरंतर वृद्धि होती चली गयी है।

किस्म नियंत्रण के प्रमुख लाभ निम्नलिखित है:-

1. उपभोक्ताओं का लाभः

किस्म नियंत्रण के होने से उन्हें सदैव उच्च कोटि के माल का उपयोग करने का सुअवसर मिलता रहता है इससे उनके संतोष में वृद्धि होती हैं तथा रहन सहन के स्तर में सुधार होता है।

2. कर्मचारियों के मनोबल में वृद्धि :

किस्म नियंत्रण के होने से कर्मचारी के मनोबल में वृद्धि होती है। तथा वे पूर्ण सतर्कता से कार्य करते हैं। और अकुशल एवं कुशल कर्मचारियों का अंतर सामने आने लगता है जो कर्मचारी कुशलता से काम करते है। उन्हें प्रगति करने का अवसर मिलता है।

3. लाभों में वृद्धि :

किस्म नियंत्रण से विक्रय में वृद्धि होती हैं और जैसे जैसे विक्रय में वृद्धि होती हैं और जैसे जैसे विक्रय में वृद्धि होती हैं वैसे वैसे लाभों में भी वृद्धि होती जाती है और ब्यावसायिक उपक्रम की स्थापना का मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना ही होता. है।

4. निष्चित प्रभावों की स्थापना होना :

किस्म नियंत्रण के होने से उत्पादन के निष्टिचत प्रभावों की स्थापना होती जो कि आवश्यक है।

5. खराब अथवा दूषित माल का उत्पादन बंद होने से अपव्यय रुक जाता है। तथा इस प्रकार उत्पादन में व्यय में कमी होती है।

सीमेन्ट के प्रकार:-

सी.सी.आई. सीमेन्ट मुख्यतः दो प्रकार की बनायी जाती है।

- 1. पी.पी.सी.- पोजोलाना पोर्टलैण्ड सीमेन्ट
- 2. ओ.पी.सी.- आर्डिनरी पोर्टलैण्ड सीमेन्ट

अन्य- स्लेग सीमेन्ट

अतः सीमेन्ट का विभाजन उनके कच्चे माल के सम्मिश्रण के आधार पर होता है। सीमेन्ट के वर्गीकरण के आध गर पर उनमें कच्ची सामग्री का प्रतिशत निम्नलिखित है-

सीमेन्ट

प्रतिशत

1. पी.पी.सी.

10 से 15 प्रतिशत तक ईट/फ्लाई एस 5 से 10 प्रतिशत जिप्सम 70 से 80 प्रतिशत तक विलंकर योग- 100 प्रतिशत (सीमेण्ट)

2. ओ.पी.सी.

5 प्रतिशत जिप्सम 95 प्रतिशत क्लिंकर योग–100 प्रतिशत (सीमेण्ट)

स्त्रोतः – विक्रय विभाग सी.सी.आई. वार्षिक प्रतिवेदन 3. स्लेग

5 प्रतिशत जिप्सम 45 प्रतिशत स्लेग 50 प्रतिशत क्लिकर योग- 100 प्रतिशत (सीमेन्ट)

सन 1987-88 में सी.सी.आई. में प्रतिदिन की सामग्री खपत

कच्चा माल खपत (मीट्क टन)

रॉ मिल 98 प्रतिशत स्टोन एवं 12 प्रतिशत लाइम स्टोन
कोयला 250

जिप्सम 150

ईंट 100

फलाई एश रेत 30

सीमेन्ट का वार्षिक उत्पादन

वर्ष	मात्रा (मीट्रिक टन)
1980-81	57,700
1981-82	2,81,930
1982-83	3,12,825
1983-84	3,2779
1985-86	2,54,190
1986-87	2,60,200
1988 से अब तक	उत्पादन बंद

SEC TES

अकलतरा सीमेन्ट संयंत्र में विक्रय कार्य एवं वितरण

सी.सी.आई. सीमेन्ट संयंत्र में विक्रय दो प्रकार से किया जाता है

- (1) सीमेन्ट का लेव्ही विक्रय
- (2) सीमेन्ट का नॉन लेव्ही विक्रय

लेव्ही विक्रय — अकलतरा संयंत्र द्वारा उत्पादित सीमेन्ट का करीब 60 प्रतिशत हिस्सा लेव्ही के रूप में भारत सरकार के आदेशानुसार बेचना पड़ता है जो कि सीमेन्ट कन्ट्रोलर ऑफ इंडिया नई दिल्ली के द्वारा नियंत्रित होता है एवं उन्हीं के आदेशानुसार वितरित होता है।

लेव्ही सीमेन्ट के विक्रय एवं वितरण को 4 भागों में विभक्त किया जाता है-

- (1) आर.सी.सी. श्रेणी रेट कन्ट्रोल श्रेणी
- (2) ओ.आर.सी. श्रेणी
- (3) पी.एस.यू. श्रेणी
- (4) फ्री सेल श्रेणी

अकलतरा सीमेन्ट संयंत्र के द्वारा लेव्ही सीमेन्ट की बिक्री मुख्यतः सरकारी विभागों जैसे लोकनिर्माण सिंचाई दूर संचार, आदि में की जाती है। इसके अलावा भारत सरकार के उपक्रम जैसे बालको, सेतु निगम, एन.टी.पी.सी., स्टील अँथारिटी आफ इंण्डिया आदि के निर्माण कार्यों के लिये भी लेव्ही सीमेन्ट प्रतिवर्ष सीमेन्ट की बिक्री की जाती है।

प्रतिवर्ष विक्रय एवं राशि

वर्ष	सीमेन्ट विक्रय (मी.टन)	राशि (लाख में)
1981.82	2,33,600	1367.34
1982.83	3,13,861	1563.57
1983.84	3,02,106	1343.74
1984.84	2,71,521	1243.45
1985.86	2,63,995.47	1610,79
1986.87	2,60,531,80	2173.47
1987.88	2,50,630,37	2275.77

नान लेव्ही सीमेन्ट की बिक्री :-

अकलतरा सीमेन्ट संयंत्र के कुल उत्पादन का 40 प्रतिशत भाग नान लेव्ही सीमेन्ट के रूप में बेचा जाता है। यह विक्रय सीधे संयंत्र के विक्रय विभाग के गोदामों के द्वारा किया जाता है। सीमेन्ट खरीदने वाली संस्थाओं को दो भागों में बांटा गया है एक श्रेणी में पब्लिक सेक्टर मार्केंटिंग सोसायटी शासकीय व अर्द्धशासकीय विभाग डीलर्स एवं लाइसेंस धारी विक्रेता शामिल होते हैं। वहीं दूसरी श्रेणी में उपयोगकर्ता, ठेकेदार या जनता में से कोई भी सीमेन्ट खरीद सकता है। विक्रय के लिए सीधे विक्रय प्रबन्ध तकनीक से व्यापारियों को प्रोत्साहित किया जाता है जिससे वे अधिक से अधिक विक्रय लक्ष्य को पूर्ण करते हैं। विक्रय संवर्धन के लिए निश्चित मात्रा में खरीदी पर नगद छूट भी दी जाती है। इसके अलावा समय-समय पर प्रोत्साहन योजनाएं व्यापारियों के भ्रमण कार्यक्रम विज्ञापन एवं सेमिनार के जरिये भी विक्रय लक्ष्य हासिल किया जाता है।

अकलतरा सीमेन्ट संयंत्र संकट के दौर में

सन् 1981 से शुरु हुए उत्पादन का लक्ष्य हासिल करते हुये सी.सी.आई. संयंत्र तीन-चार वर्षों तक प्रगति पर रहा लेकिन बाद के वर्षों में विक्रय की समस्या, सीमेन्ट नीति एवं प्रबन्धन की दिक्कतों सित व्यवसायिक प्रतिस्पर्धा के आगे संयंत्र को लगातार हानि का सामना करना पड़ा है। यही कारण है कि सन 1982-83 में जिस संयंत्र ने विक्रय से 59.53 लाख रुपये अर्जित किया उसी ने अगले ही वर्ष 235. 16 लाख रुपये की हानि उठाई। सन 1985 में हानि का यह आंकड़ा 230.47 लाख रुपये पर जाकर रुका, वही सन् 1985.86 में यह हानि लगभग 460 लाख रुपये तक पहुंच गई। इसके बाद से उत्पादन में निरंतर गिरावट आती गई और अंततः सन 1992.93 में संयंत्र बंद कर दिया गया। शासकीय अनुदान से इसको पुनः प्रारंभ करने की कोशिश भी नाकामयाब साबित हुई।

स्त्रोत- रेमण्ड संयंत्र वार्षिक प्रतिवेदन

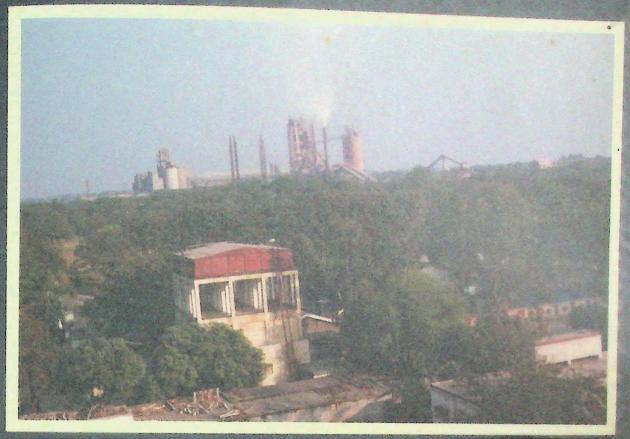
में कांत्र के कार्यात सामान जनसिक विकास के दोन

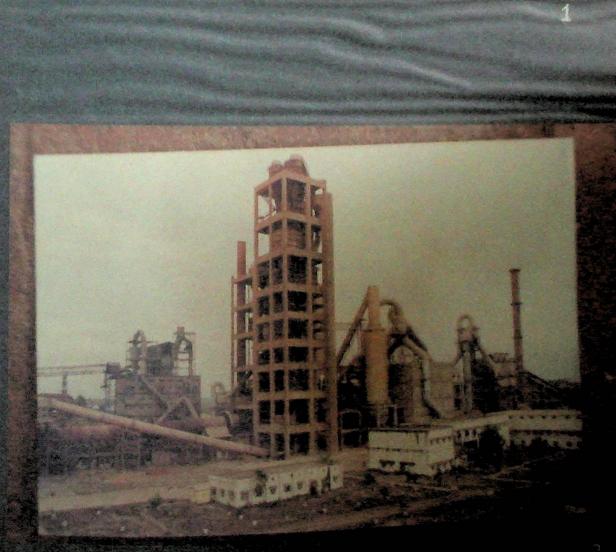
ALL PAR A LIPE () 使 15 的 可能是 \$70 页的 13 位 元的 作 15 页 5 页 5 页

बिलासपुर में 43 कि.मी. की दूरी पर रेमंड सीमेन्ट वर्क्स सी.सी.आई. गोपालनगर ग्राम में स्थापित की गई है इसकी स्थापना का शिलान्यास 18 फरवरी सन 1979 को इसके अध्यक्ष श्री गोपाल कृष्ण सिंघानिया द्वारा किया गया तथा निर्माण कार्य 5 अप्रेल 1979 से प्रारंभ हुआ। कारखाना 403.3 हेक्टेयर जमीन में फैला हुआ है। पूंजी विनियोग की दृष्टि से उद्योग को दो चरणों में विभक्त किया गया है। प्रथम चरण में 44 करोड़ रुपये पूंजी विनियोजित की गई। पूंजी विनियोजन में 19 अंशधारियों ने कार्य किया है। प्रमुख पूंजी विनियोजक निम्न है

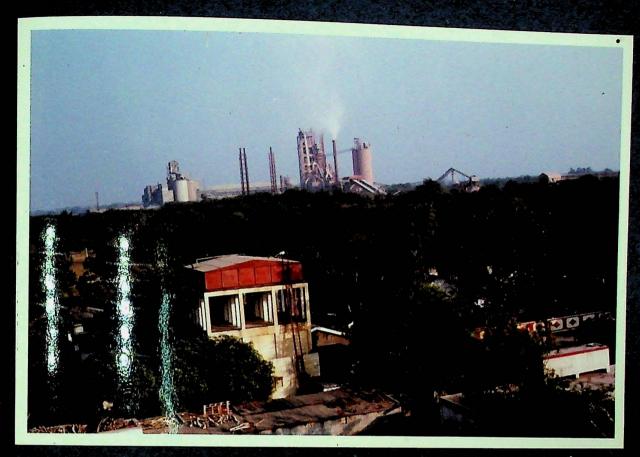
- (1) म.प्र. शासन
- (2) उद्योग विकास निगम
- (3) म.प्र. उद्योग विकास बोर्ड
- (4) जीवन बीमा निगम
- (5) स्टेट बैंक ऑफ इंडिया

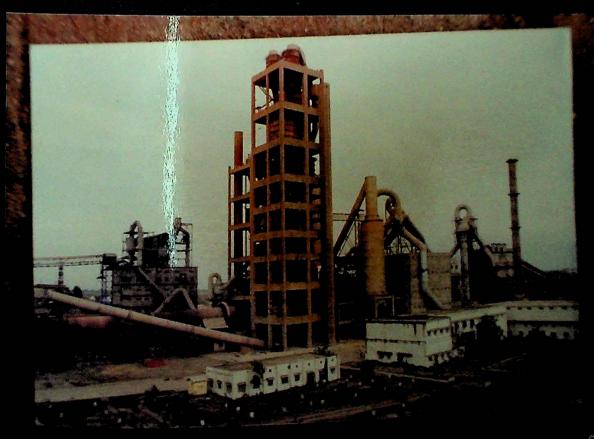
रेमण्ड सीमेन्ट वर्क्स में आने जाने की सुविधा के रूप में सड़क मार्ग है, जहां रेमण्ड कम्पनी की बस चलती है। यह शिवरीनारायण मार्ग के बीच में ही कटकर 5 कि.मी. अंदर गोपालनगर तक सड़क मार्ग पर स्थित है। यहां रेलवे मार्ग के लिए अकलतरा में उतरना पड़ता है तथा वहां से अन्य साधन बस, द्रक टैक्सी से रेमंड सीमेन्ट वर्क्स जाया जाता है।





वैमण्ड शमिवट कैक्ट्री - गीपालनगर







रेमण्ड सीमेन्ट वर्क्स सन 1979 में प्रारंभ हुआ। यहां क्लिंकर द्वारा उत्पादन 1982 में प्रारंभ हुआ। प्रारंभिक चरण में कारखाने की उत्पादन क्षमता 400 टन प्रतिदिन थी जो वर्तमान में 1500 टन प्रतिदिन है। यह कारखाना दो इकाइयों में बना है।

(1) जे.के. गुप (2) रेमण्ड

दोनों इकाइयों की कुल उत्पादन क्षमता 3600 टन प्रतिदिन है। स्थापना के पश्चात कारखाने का शुरु के तीन वर्षों का उत्पादन तथा विक्रय इस प्रकार है-

वर्ष	उत्पादन (टन में)	विक्रय (टन में)	
1982	1,14,882	1,37,019	1
1983	2,23,882	2,27,882	
1984	3,18,250	4,20,079	

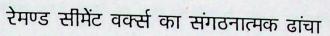
उपर्युक्त सारिणी से स्पष्ट होता है कि कारखाने की उत्पादन क्षमता प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है तथा यहां वर्तमान में 12,00,000 टन उत्पादन प्रतिवर्ष हो रहा है तथा भविष्य में और बढ़ने की आशा की जा रही है।

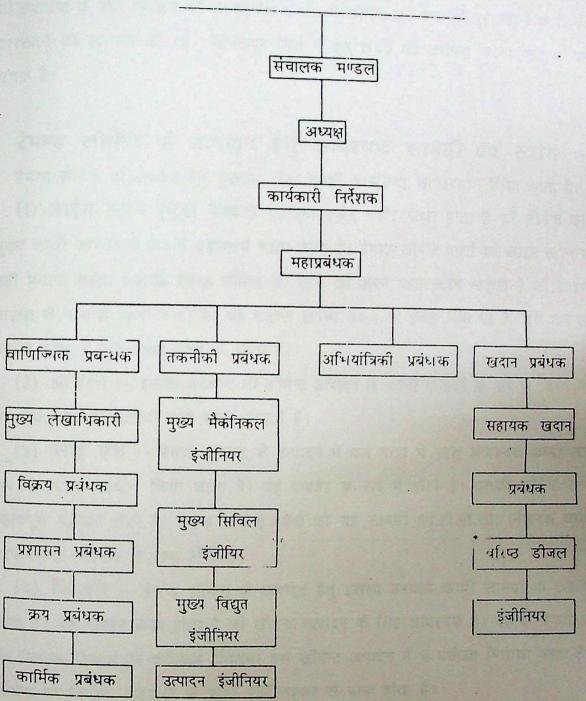
रेमण्ड सीमेन्ट वर्क्स में कार्यरत् कर्मचारियों की संख्या वर्तमान में 890 है तथा कार्मिकों की कुल संख्या 1907 थी, जिनमें 630 श्रमिक प्रतिदिन 770 अप्रशिक्षित, 1200 ठेकेदार के श्रमिक भी शामिल है। कारखाने में किये जाने वाले निष्पादन कार्य पालियों के आधार पर होता है यहां तीन पालियों में 24 घंटे कार्य होता है।

- (1) प्रथम पाली- सुबह 6 बजे से दोपहर 2 बजे तक
- (2) द्वितीय पाली- दोपहर 2 बजे से 10 बजे रात तक।
- (3) तृतीय पाली- रात 10 बजे से सुबह 6 बजे तक।

उद्योग स्थापना के कारण-

सीमेन्ट उद्योग स्थापित करने के लिये यहां चूने का पत्थर, कोयला, विद्युत, शक्ति, जिप्सम, पानी, कार्मिक, विपणन व यातायात की सुविधा उपलब्ध हो जाती है जिसके कारण यहां सीमेन्ट उद्योग स्थापित किया गया है। औद्योगिक नीति के अंतंगत इस संयंत्र की स्थापना पिछड़े क्षेत्रों में इसलिए की





गई ताकि यहां यहां उपलब्ध कच्चे मालों का सही उपयोग हो सके। सार्वजनिक क्षेत्र में सीमेन्ट उद्योग की स्थापना के प्रति सरकार की उदासीनता व क्षेत्र में सीमेन्ट की मांग को पूरा करने के लिये भी इस कारखाने की स्थापना की गई। बिलासपुर जिले में इस संयंत्र की स्थापना करना यहां की प्रगति का सूचक है।

रेमण्ड सीमेन्ट के उत्पादन हेतु आवश्यक सामग्री एवं स्त्रोत :-

- (1) लाईम स्टोन (चूना पत्थर) यह एक सफेद कठोर पत्थर होता है जो सीमेन्ट बनाने हेतु मुख्य कच्ची सामग्री के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। रेमण्ड सीमेन्ट वर्क्स को लाइम स्टोन बाहर से नहीं मंगाना पड़ता क्योंकि रेमण्ड सीमेन्ट की स्वयं की अपने पास स्टोन माइन्स है जो लाईम स्टोन माइन्स के नाम से जानी जाती है। यह माइन्स लगभ्ग 444.77 एकड़ भूमि पर है। इस माइन्स द्वारा पर्याप्त मात्रा में चूने पत्थर प्राप्त हो जाता है।
- (2) आयरन :- इसका उपयोग भी सीमेन्ट उत्पादन में कच्ची सामग्री के रूप में किया जाता है। यह कम मात्रा में मिलायी जाने वाली सामग्री है।
- (3) प्लाई एश: रेमण्ड सीमेन्ट के उत्पादन में कम मात्रा में परंतु आवश्यक कच्ची सामग्री के रूप में इसका उपयोग किया जाता है। यह पावडर के रूप में होता है। इसकी सीमेन्ट उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। रेमण्ड सीमेन्ट वर्क्स को यह सामग्री एन.टी.पी.सी. (नेशनल थर्मल पावर कार्पोरेशन) कोरबा से प्राप्त होती है।
- (4) जिप्सम :- रेमण्ड सीमेन्ट के उत्पादन हेतु इसका उपयोग कच्ची सामग्री के रूप में किया जाता है। यह पावडर जैसा होता है जो सीमेन्ट उत्पादन के लिए आवश्यक है। यह दो प्रकार का होता है- मिनरल जिप्सम एवं केमिकल जिप्सम। इसे सीमेन्ट उत्पादन में 4 प्रतिश्त मिलाया जाता है। रेमण्ड सीमेन्ट को जिप्सम राजस्थन के कोरो फर्टिलाइजर से प्राप्त होता है।
- (5) स्लैग :- इसे भी सीमेन्ट बनाने में कच्ची सामग्री के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। यह लौह निर्माण में बची बेकार सामग्री है। यह सामग्री भिलाई स्टील प्लाण्ट से प्राप्त होती है।

(6) कोयला :- सीमेन्ट के निर्माण में कोयला सहायक सामग्री है। इसे मुख्यतः ताप बढ़ाने के लिए प्रयोग में लाते हैं। इसे उपयोग से पूर्व पहले पावडर में बदला जाता है, फिर इसका उपयोग किया जाता है। रेमण्ड सीमेन्ट वर्क्स को कोयला मुख्यतः कोरबा एवं विशाखापट्टनम से प्राप्त होता है।

रेमण्ड सीमेन्ट संयंत्र में उत्पादन विधि :-

रेमण्ड संयंत्र में सीमेन्ट का उत्पादन 4 विधियों से होता है

- (1) वेट प्रक्रिया
- (2) सेमी वेट प्रक्रिया
- (3) ड्राय प्रक्रिया
- (4) सेमी ड्राय प्रक्रिया

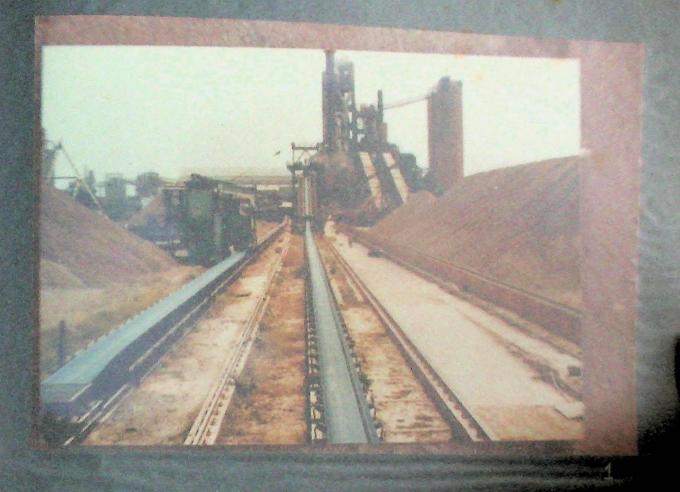
वेट एवं सेमी वेट प्रक्रिया :- इस प्रक्रिया से सीमेन्ट उत्पादन के लिये पिसे हुए चूने के पत्थर को अन्य सामग्रियों के समेत सही मात्रा में पानी के साथ अच्छी तरह मिलाया जाता है और उसे रॉ मिल में ले जाया जाता है जहां पर उसे स्लरी के रूप में बेसिन में जमा किया जाता है। इसे क्लिन में डालने के पूर्व अच्छी तरह मिलाया जाता है तथा एरीक्लोथेड किया जाता है। नमी को उड़ाने के लिए स्लरी को 950 से.ग्रे. क्लिन का उपयोग किया जाता है। इस तरह कैल्सीनेशन की प्रक्रिया पूरी हो जाती है। सेमीवेट प्रक्रिया में स्लरी पहले रोटैरी ड्म में फिल्टर के द्वारा फिल्टर की जाती है। इस प्रक्रिया से फिल्टीकेक प्राप्त होता है इसके पश्चात इसे क्लिन में डाला जाता है।

ड्राय एवं सेमी ड्राय प्रक्रिया :- इस प्लांट में बड़े बड़े क्रेशर होते हैं स्टोन के बड़े बोल्डर्स को यहां डम्पर्स में लाया जाता है, जिसे क्रशर रिसिविंग में खाली कराया जाता है। 1 से 1.2 एम.एम. आकार के टुकड़े होने के बाद 200 से 250 एमएम के लाइम स्टोन एलीपेटेक्स के द्वारा बेल्ट कन्वेयर में गिरता है। लाइम स्टोन व क्रेशर सेटैरिंग चुर्ण में कन्वेयर के द्वारा डाली जाती है। चूर्ण क्रिया को तेज कर देता है। स्टोक फाइल को अंतिम चरण में हाकिंग बेल्ट के द्वारा बुश में रखा जाता है। जो कि सेंट्ल चूर्ण के साथ भी चक्कर लगा सकता है। जैसे-जैसे हिप की साइज बड़ी होती है, बेल्ट उपर की तरफ जाता है। हिप के ताप व बेल्ट के डिस्चार्ज की दूरी अब ज्यादा नहीं रह जाती इसलिये हवा में कम मात्रा में डस्ट जाती है।

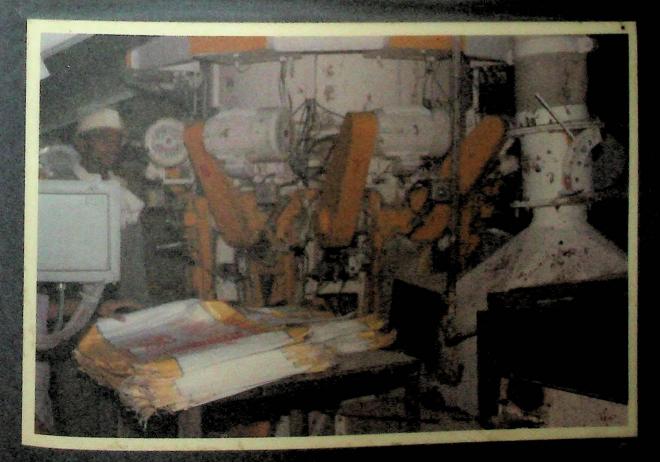
et the Paper I the year

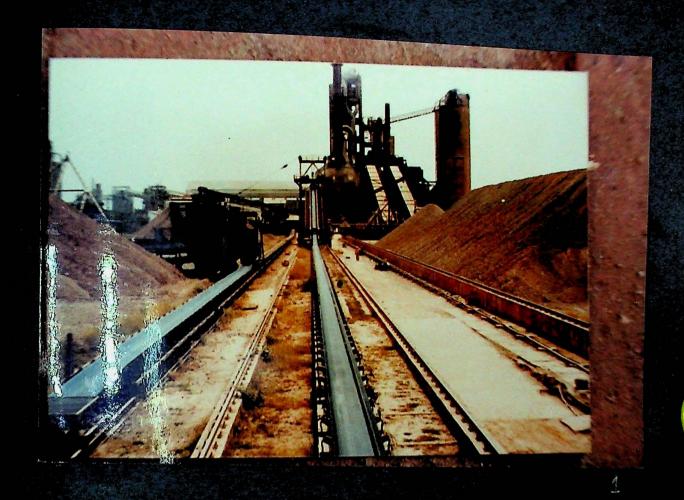
THE PART OF THE PA

AND HE WASHINGTON OF THE PART OF THE PART



वैमाठड सीमीवर निर्मावर मेरि





वैमण्ड सीमेण्ट निर्माण प्रक्रिया







रेमठड-सीमेठट निर्माण प्रीक्या



CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.

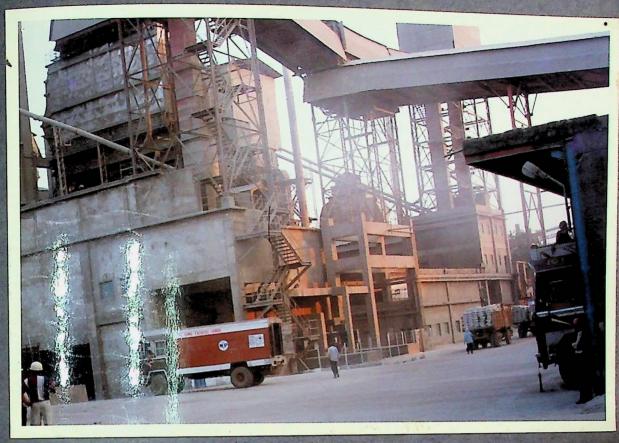




रेमाड-सीमेवर निर्माण प्रक्रिया



CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.



रैमठड-सीमेठर निर्माण प्रक्रिया



CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection



रॉ बाइन्डिंग सिस्टम :- पुराने जमाने की पान मिल की तकनीक अब ट्यूब मिल एवं वरटिकल रोलर मिल तक पहुंच गई है। प्रिब्लेडिंग स्टोन फाइल से कच्चा माल कन्वेयर बेल्ट के जिरये रॉ मिल सेक्सन टायर तक जाता है। ढेले तोड़ने वाले यंत्रों को न्यूक्लिक लेवल में लाया जाता है जिससे मिल की गित में तेजी आ जाती है। इस यंत्र से सामग्री को ग्रविमेटरीक बैग फीडर तक लाया जाता है। बैग फीडर से कच्चा माल कन्वेयर के द्वारा रॉ मिल प्रवेश द्वार में लाया जाता है। इस बीच कच्चे माल को तोड़ने वाले तथा वेजफीडर को पीन ग्रेड प्रदान किए जाते हैं। इसके बाद भिंद्रयों के जिरये इसे सुखाया जाता है। रॉ मिल के डिस्चार्ज होने से रॉ मिल प्रवेश द्वारा डबल फ्लेप वाल्व लगा दिया जाता है जिससे गर्म गैस अंदर नहीं आ पाती इस प्रकार बेल्ट कन्वेयर को रॉ मिल इनलेट गर्म गैसों से क्षतिग्रस्त होने से बचा लेता है। कच्चे माल को विभिन्न प्रकार की पिसाई की जरुरत होती है।

रेमण्ड संयंत्र के प्रमुख उत्पाद

रेमण्ड सीमेंट संयंत्र में मुख्यतः तीन प्रकार के सीमेंट का उत्पादन होता है।

- (1) आर्डिनरी पोर्टलैंड सीमेंट
- (2) पोजोलाना पोर्टलैंड सीमेंट
- (3) पोर्टलैंड स्लैग सीमेंट

आर्डिनरी पोर्टलैंड सीमेंट — रेमण्ड सीमेंट संयंत्र में दो अलग अलग प्रकार के सीमेंट का उत्पादन होता है जिसमें चूने का पत्थर, आयरन, जिप्सम, एवं स्लेग आदि कच्ची सामग्री का उपयोग होता है। 33 ग्रेड सीमेंट एवं 43 ग्रेड सीमेंट दोनों का सीमेन्ट उत्पादन किया जाता है। संयंत्र 33 ग्रेड की उत्तम सीमेंट का निर्माण करता है। इसके अलावा एक और बेहतर सीमेंट 43 ग्रेड का भी तैयार किया जाता है।

स्त्रोत- औद्योगिक सेमिनार जिला उद्योग संघ स्मारिका जिला उद्योग केन्द्र



पोजोलाना पोर्टलैंड सीमेंट- यह संयंत्र का दूसरा प्रमुख उत्पादन है जिसमें चूना पत्थर आयरन व जिप्सम के अलावा पलाई एश भी मिलाया जाता है।

पोर्टलैंड स्लेग सीमेंट- रेमंड सीमेंट संयंत्र का तीसरा मुख्य उत्पाद पोर्टलैंड स्लेग सीमेंट है। इसमें चूना पत्थर, आयरन जिप्सम के अलावा स्लेग भी मिलाया जाता है।

उत्पादन गुणवत्ता का विश्लेषण (पैकिंग बेग में)

संयंत्र का नाम	आकृति	प्रतिशत
एसीसी	29	72.5
मोदी	3	7.5
रेमण्ड	3	7.5
सेंचुरी	3	7.5
अन्य	2	5.0
कुल-	40	100.0

रेमण्ड सीमेंट की विपणन स्थिति

रेमण्ड सीमेंट विक्रय हेतु देश के लगभग सभी हिस्सों में भेजा जाता है। अन्य सीमेंट की तुलना में इसकी विपणन स्थिति बेहतर है। क्वालिटी के लिए आईएसओ 9002 प्रमाण पत्र हासिल कर चुके इस संयंत्र के उत्पाद ने उत्पादन और खपत में कीर्तिमानी सफर तय किया है।

विपणन के प्रमुख क्षेत्र— शहडोल, बुढ़ार, मनेन्द्रगढ़, अंबिकापुर, रायगढ़, बिलासपुर, भोपाल, जबलपुर, रायपुर, दुर्ग एवं राजनांदगांव है। बिलासपुर रेमंड के सबसे बड़े बाजारों में से एक है। संभागीय मुख्यालय के साथ साथ रेलवे का जोनल मुख्यालय होने के कारण अंचल में 6 से 7 हजार मीद्रिक टन एवं शहर में करीब 3 हजार मीद्रिक टन का विक्रय होता है।

बिलासपुर संभाग की कुल खपत 9 हजार मीट्रिक टन है। इसमें से 3500 मी. टन केवल रेमण्ड की



हिस्सेदारी है। सेंचुरी एवं एसीसी का बाजार क्रमशः 2000 और 1800 मी. टन है। इसी तरह रायपुर में कुल खपत का 18 फीसदी हिस्सा रेमंड का होता है। वहां एसीसी 25 प्रतिशत के साथ आगे है। रेमंड ने प्रदेश के प्रमुख शहरों के साथ-साथ बिहार, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, बंगलादेश में अधि ाकृत डीलर नियुक्त किए हैं।

नेशनल सीमेन्ट कार्पोरेशन तिफरा

स्थापनाः-

देश में बढ़ती हुई सीमेन्ट की मांग एवं बढ़ते हुये महत्व को देखते हुये बिलासपुर में उपलब्ध सुविध्याओं तथा इस क्षेत्र में पूर्व से स्थापित सीमेन्ट उद्योग की सफलता आदि तत्वों से प्रभावित होकर ''नेशनल सीमेन्ट कार्पोरेशन'' की स्थापना की गई यूं तो इस क्षेत्र में सीमेन्ट संयंत्र की स्थापना का विचार एनसीसी के संस्थापक के दिमाग में काफी समय से यह योजना थी परंतु 1 अक्टूबर 1990 के दिन एन.सी.सी. के नाम से सीमेन्ट उद्योग के पंजीयन हेतु आवश्यक प्रपत्रों को तैयार कर जिला उद्योग केन्द्र को प्रेषित करने के रूप में उनके द्वारा विचार को मूर्त रूप देने की प्रक्रिया प्रारंभ की गई। यही ''नेशनल सीमेन्ट कार्पोरेशन के जन्म की प्रारंभिक प्रक्रिया थी।

15 अक्टूबर सन 1990 को इसके पंजीयन होने के साथ ही ''नेशनल सीमेन्ट कार्पोरेशन की नींव पड़ी। जिला उद्योग केंद्र के अंर्तगत नेशनल सीमेन्ट कार्पोरेशन का पंजीयन क्रमांक 100509309 है। इस प्रकार नेशनल सीमेन्ट कार्पोरेशन ''तिफरा'' बिलासपुर (म.प्र.) का उद्भव हुआ।

स्थिति: — बिलासपुर में औद्योगिक महत्ता को स्वीकारते हुये उद्योगों के विस्तार एवं विकास हेतु म.प्र. शासन ने सन 1964 में औद्योगिक प्रक्षेत्र ''तिफरा'' की स्थापना की। बिलासपुर बस स्टैंड से 3 कि.मी. एवं रेल्वे स्टेशन से करीब 5 किमी. की दूरी पर तिफरा औद्योगिक प्रक्षेत्र है जहां नेशनल सीमेन्ट कार्पोरेशन ''तिफरा'' बिलासपुर सीमेन्ट उद्योग स्थित है। यह उद्योग बिलासपुर से रायपुर मुख्य कार्पोरेशन ''तिफरा'' बिलासपुर सीमेन्ट उद्योग स्थित है। वह उद्योग बिलासपुर के दक्षिण पश्चिम भाग राजमार्ग वाली सड़क से कुछ दूरी पर है। नेशनल सीमेंट कार्पोरेशन बिलासपुर के दक्षिण पश्चिम भाग

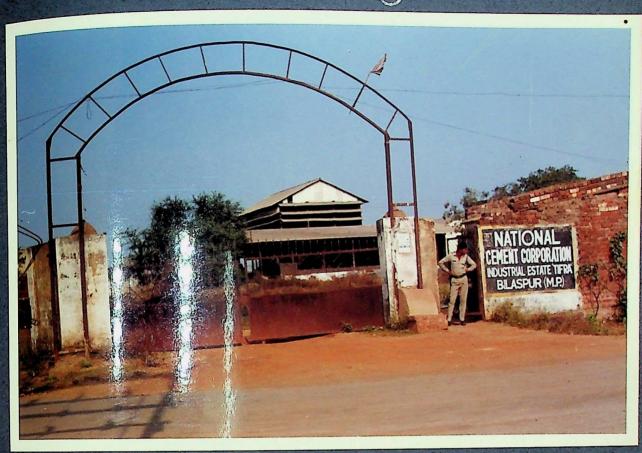
THE REPORT OF THE PERSON ASSESSMENT OF THE PERSON ASSESSMENT OF THE PERSON ASSESSMENT OF THE PERSON OF THE PERSON

एनव्सीव सीव-ने बेलासपुर





Digitized by Side Party Gyaan Kosha Uoto Alo Alo Alo - Toler H12









में स्थित है। यहां आवागमन के लिए डामरीकृत सड़क मार्ग है। इस उद्योग का प्रमुख द्वार दक्षिण दिशा की तरफ है।

विस्तार: – नेशनल सीमेंन्ट कार्पोरेशन तिफरा के संयंत्र क्षेत्र में एक कारखना भवन, एक कार्यालय भवन तीन गोदाम, एक स्टोर एवं सुरक्षा कर्मियों के कमरे सहित शेष खुला क्षेत्र है। इस पूरे निर्माण कार्य में 12 लाख रु. व्यय हुये। इस स्थल पर पूर्व में एक उद्योग का अहाता था जिसकी लागत करीब 3 लाख थी। मिनी टेक प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली द्वारा यहां प्रमुख मशीनों की स्थापना हुई। अप्रेल 1991 से 20 लाख रु. की कार्यशील पूंजी एवं 73 लाख रु. की कुल विनियोजित पूंजी की लागत से उत्पादन कार्य प्रारंभ हुआ।

नेशनल सीमेन्ट कार्पोरेशन में उत्पादन

इस संयंत्र में केवल पोर्टलैंड स्लेग सीमेन्ट का ही उत्पादन किया जाता है। देश में स्थापित सीमेन्ट उद्योगों में से 60 प्रतिशत सीमेन्ट उद्योग इसी प्रकार का सीमेन्ट बनाते हैं। सीमेन्ट उत्पादन में 70 प्रतिशत क्लिंकर 25 प्रतिशत स्लेग, 50 प्रतिशत जिप्सम का उपयोग किया जाता है।

कच्चे माल की प्राप्ति:— (1) क्लिंकर नेशनल सीमेन्ट कार्पोरेशन निम्न लिखित ख्याति प्राप्त कम्पनियों से क्लिंकर क्रय करता है।

- (अ) रेमण्ड सीमेन्ट वर्क्स गोपालनगर
- (ब) जे.पी. रीवां सीमेन्ट रींवा
- (स) एल.एंड.टी. सीमेन्ट उद्योग रायपुर
- (द) सेंचुरी सीमेन्ट उद्योग बैकुंठ
- (2) स्लेग: नेशनल सीमेन्ट कार्पोरेशन स्लेग का क्रय भिलाई इस्पात संयंत्र द्वारा करता है।
- (3) जिप्सम: इस उद्योग को जिप्सम अनुमानगढ़ खदान से प्राप्त होता है। राजस्थान की खदान से यहां जिप्सम आपूर्ति के लिए रेलवे परिवहन और सड़क मार्ग दोनों का उपयोग किया जाता है। उत्पादन क्षमता : नेशनल सीमेन्ट कार्पोरेशन की उत्पादन क्षमता 18,000 मीद्रिक टन प्रतिवर्ष है। आपूर्ति के अनुसार इसे कम ज्यादा किया जाता है।

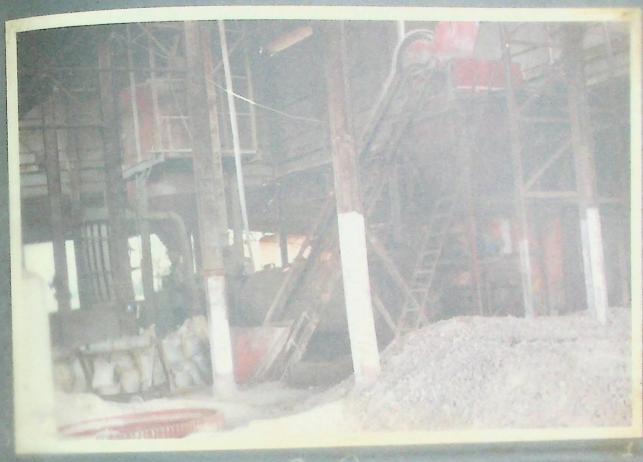
उत्पादन विधि :-

नेशनल सीमेन्ट कार्पोरेशन में पोर्टलैंड स्लेग सीमेंट के निर्माण में किसी जिटल प्रक्रिया को नहीं अपनाया जाता अपितु बड़ी कंपनियों से प्राप्त किये गए क्लिंकर भिलाई इस्पात संयंत्र से प्राप्त स्लेग एवं अनुमानगढ़ राजस्थान खदान से प्राप्त जिप्सम को सही अनुपात में मिलाकर ग्राइन्डिंग मशीन तक पहुंचाया जाता है। ग्राइंडिंग मशीन में पिसने के बाद यह पदार्थ सीमेन्ट के रूप में एलीवेटर के जिरिये टंकी में आता है उसके बाद आटोमेटिक मशीन द्वारा 50 किलो की बोरियों में भरा जाता है। पेकिंग मशीन की विशेषता यह है कि 50 किलो सीमेन्ट भरने के बाद बटन अपने आप बंद हो जाता हैं। उत्पादन में किस्म नियंत्रण:—

यहां उत्पादन की किस्म का निरंतर परीक्षण किया जाता हैं। प्रतिघंटे का औसत सेम्पल लेकर लैब में परीक्षण किया जाता है। फिजिकल एवं केमिकल टेस्टिंग के द्वारा गुणवत्ता परीक्षण किया जाता है। उपलब्ध ग्रेड 1,2,3 के स्टेण्डर्ड रेत में प्रत्येक में से 200 ग्राम सीमेन्ट मिलाकर उसमें आवश्यकतानुसार पानी मिलाया जाता है। मिश्रण को ब्राइब्रेसिंग मशीन के द्वारा 2 मिनट तक ब्रेसिंग करते हैं। सामान्यतः दो मिनट में यह क्रिया हो जाती है। तत्पश्चात उसे 20 घंटे तक आद्रता कक्ष में रखा जाता हैं 24 घंटे के पश्चात इस ठोस पदार्थ को 3 दिन, 7 दिन, 28 दिन वाटर टेंक में रखते हैं। निश्चित अविध पूर्ण होने पर उसे कम्प्रेसिव मशीन में तोड़कर रखा जाता है जिससे उत्पाद की मजबूती का परीक्षण होता है।

लैब:-

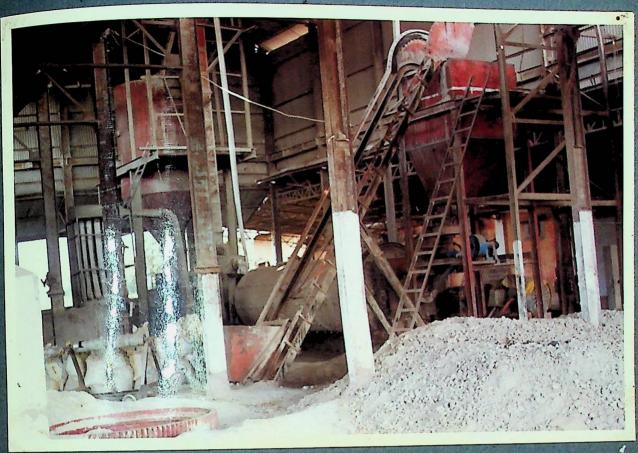
लैब कारखाना विभाग का एक महत्वपूर्ण भाग है। यह कच्चे माल के क्रय के समय उसकी गुणवत्ता के संबंध में परामर्श देने, कच्चे माल की प्राप्ति के पश्चात उसकी गुणवत्ता का सत्यापन करने निर्मित माल में कच्चे मालों के अनुपातों का निर्धारण करने एवं संयंत्र के उत्पादन के सेम्पल लेकर उसकी गुणवत्ता की जांच करने तथ गुणवत्ता में किसी भी किस्म की गिरावट आने पर संबंधित विभाग को इसकी तुरंत जानकारी देने का कार्य करता



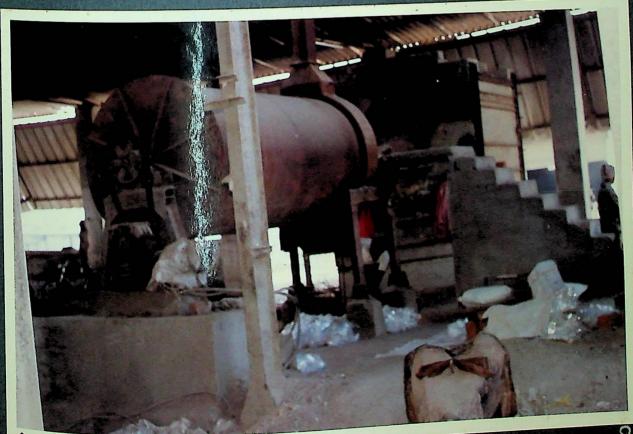
2010 21/00



Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.



एनः सीःसीः सीमेन्ट निर्मान प्रीक्रिया





है। उद्योग में संयंत्र स्थल से 25 फीट की दूरी पर स्थित बाड लेब आकृतिक मशीनों से युक्त है। यहां अनेक प्रकार की मशीनों तथा यंत्रों की सहायता से उत्पाद के 'सेटिंग टाईम' पानी डालने के पश्चात सीमेन्ट के जमने की अविध्या (स्ट्रन्ध) उत्पाद का मजबूती परीक्षण तथा कम्पलीट एलीमेंट टेस्टिंग (उत्पाद में विभिन्न कच्चे मालों का मानक अनुपात) आदि का परीक्षण किया जाता है। लेब में प्रमुख (चीफ केमिस्ट) श्री के.व्ही.एस. मुरली है जो कि स्तंभ रसायन शास्त्र में स्नातकोत्तर उपाधि हासिल किए हुये हैं। इसके अलावा उनके सहायक के रूप में एक लेब वार तथा एक टेस्टिंग व्याय भी कार्यरत है।

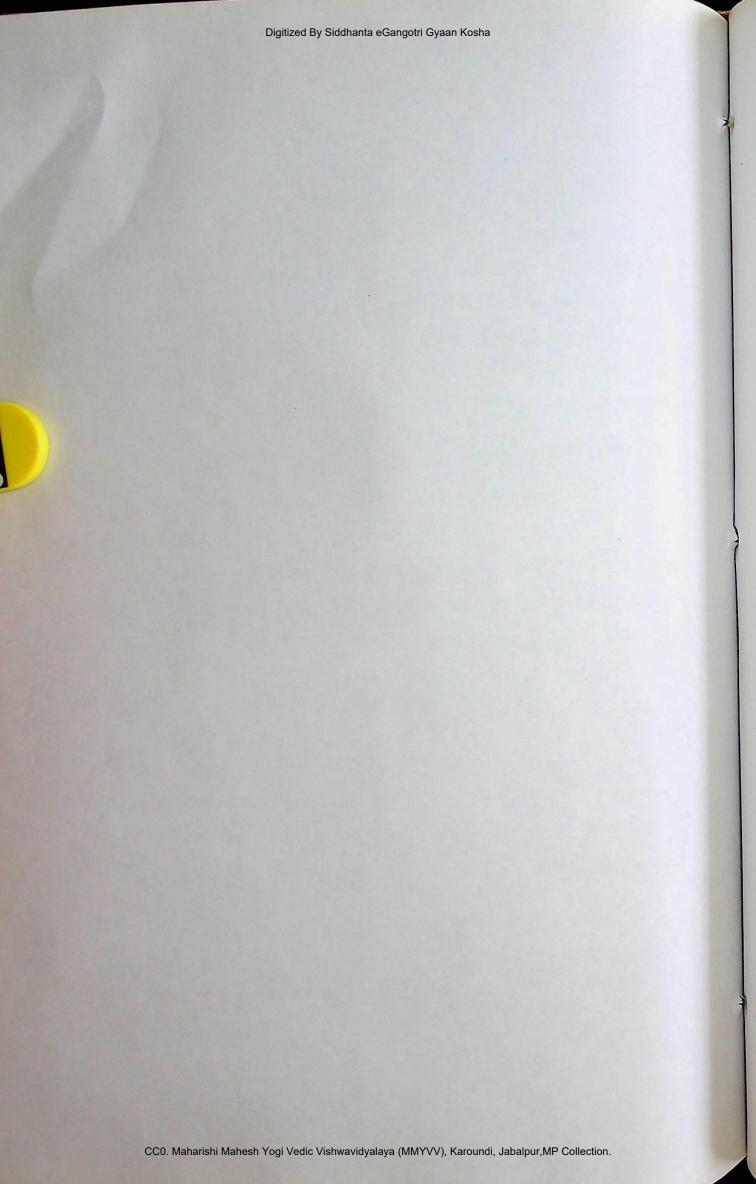
तकनीकी विशेषज्ञ

नेशनल सीमेंट कार्पोरेशन तिफरा में तकनीकी विशेषज्ञ की नियुक्ति नहीं की गई है जब कभी भी संयंत्र में खराबी आती है तक भिलाई से तकनीकी विशेषज्ञों को बुलाया जाता है और संयंत्र की खराबी को दूर किया जाता है इस प्रक्रिया में समय अधिक लगता है। कुछ दिन संयंत्र बंद पड़ा रहता है जिससे उत्पादन प्रक्रिया में रुकावाट आती हैं अतः उद्योग में सुचारु संचालन हेतु स्वयं के तकनीकी विशेषज्ञ नियुक्त होने चाहिये। संयंत्र को छोटी मोटी खराबी के लिये एवं तकनीकी सलाह के लिये एक यंत्री की नियुक्ति भी की गई है। यंत्री को पद पर ही श्री एय.एल. साहू कार्यरत है।

संयंत्र का अभिन्यासः-

नेशनल सीमेन्ट कार्पोरेशन मूलतः लघु उद्योग इकाई है जिसमें क्लिंकर जिप्सम और स्लेग की सीधे आपूर्ति कर निर्माण कार्य किया जाता है। संयंत्र के अभिन्यास में मूलतः निम्न मशीनें हैं (1) ट्रॅाली :— यह निर्माण प्रक्रिया में काम आने वाला सबसे प्रथम संयंत्र है जो मिश्रण हुये कच्चे

माल को हापर तक पहुंचाने में मदद करती है। ट्राली की सामान्य स्थिति में ऊंचाई जमीन से 3 फीट ऊपर होती है।



- (2) हापर :- कच्चे माल का मिश्रण ट्राली के माध्यम से जिस मशीन में पहुंचता है उसे हापर कहते हैं। यहां इकट्टा किया हुआ पदार्थ ग्राइंडिंग मशीन में जाता हैं।
- (3) ग्राइंडिंग मशीन:— इस उद्योग की प्रमुख मशीन माइंडिम मशीन है क्यों कि बाकी मशीनें इसकी सहायक है। 7 मीटर लंबी बेलननुमा मशीन चारों ओर गोल घूम सकती है। इसके अंदर गेंदनुमा लोहे की आकृति होती है इसलिये इसे वॉल मिल भी कहते हैं। मिश्रण की ग्राइंडिंग के बाद जो उत्पाद यहां से निकलता है वह सीमेन्ट कहलाता है।
- (4) एलीवेटर: एलीवेटर को सीमेन्ट उत्पादन का मालवाहक कह सकते हैं जो ग्राइंडिंग मशीन में ग्राइन्ड किये हुये माल को साइलो तक पहुंचाने का कार्य करता है।
- (5) पेकिंग मशीन :- साइलो (टंकी) में इकट्टा माल इस मशीन के द्वारा बैगों में केवल 50 किलोग्राम सीमेन्ट ही भरती है। यह ग्राइंडिंग मशीन के पीछे की ओर लगभग 10 फीट की दूरी पर स्थापित की गई है। इस मशीन के संचालन हेतु मुख्य आपरेटर तथ एक सहायक आपरेटर की नियुक्ति की गई है।
- (6) द्रायर मशीन :- इस मशीन का उपयोग बरसात के दिनों में कच्चा माल सुखाने में होता है। चूंकि नमी युक्त कच्चा माल ग्राइंडिंग मशीन में ग्राइन्ड नहीं हो पाता इसिलये उसे द्रायर में सुखाकर ग्राइंडिंग मशीन में डाला जाता है। ग्राइंडिंग की यह मशीन ग्राइंडिंग की भट्टी के उपर स्थापित है। कच्चे मालों को सुखाने के लिये उन्हें भरकर कोयले की आंच दी जाती है जिससे वे ग्राइन्ड करने योग्य बन जाते हैं।

नेशनल सीमेन्ट कार्पोटेशन का वार्षिक विक्रय एवं विपणन :-

संस्थान में विपणन प्रबंध के मूलभूत उद्देश्यों को हमेश महत्व दिया है। उत्पाद की गुणवत्ता, मूल्य विज्ञापन आदि की व्यवस्था उत्तम रखते हुये अधिकतम विक्रय करने का प्रयास किया जाता है। प्रतिस्पर्धा के दौर में जब बड़ी-बड़ी कम्पनियां आकर्षक प्रस्ताव के साथ डीलर्स और उपभोक्ताओं को आकर्षित कर रही है तब नेशनल सीमेन्ट अपनी गुणवत्ता को बरकरार रखते हुये अनुकूल दर के साथ बाजार में मजबूती से टिकी

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection. हुई है। इस उद्योग ने प्रारंभ से ही दोहरी वितरण प्रणाली लागू रखी है। प्रत्यक्ष वितरण के जिरये स्वयं वितरण प्रभारी सौदा कर ग्राहकों को आपूर्ति करते हैं। इसके अलावा विक्रय प्रतिनिधि सीधे ग्राहकों से आईर लेकर माल की पूर्ति करते हैं। इसके अलावा थोक विक्रेता भी बनाये गये हैं जो फुटकर ग्राहकों को सीमेंट विक्रय करते हैं। सन 1991 से 1997 के आंकड़ों को देखने से स्पष्ट होता है कि नेशनल सीमेन्ट कार्पोरेशन अपनी क्षमता अनुसार बेहतर प्रगति कर रहा है। सीमेन्ट के मूल्य निर्धारण में बड़ी कंपनियों से कुछ दर कम रखने का लाभ भी संस्थान को मिला है जबिक यह बड़े संस्थानों की तरह ही भारतीय मानक संस्थान आई.एस.आई. के मापदंड पर खरी उतरने वाली सीमेन्ट बनाता है।

वार्षिक उत्पादन का वितरण

वर्ष	उत्पादन (बोरियों में)	उत्पादन (टन में)
1991-92	1,2,0,400	6020
1992-93	1,21,300	6065
1993-94	1,22,500	6125
1994-95	1,24,200	6210
1995-96	1,26,000	6300
1996-97	1,28,560	6428

वार्षिक विक्रय का विवरण

वर्ष	मात्रा (टन)	विक्रय मूल्य (टन)	विक्रय की राशि (लाख रु.)
1991-92	6020	1440	86.688
1992-93	6065	1460	88.549
1993-94	6125	6125	90.650
1994-95	6210	1520	94.392
1995-96	6300	1560	98.280
1996.97		1600	102.884
1990.97	6428		

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एन.सी.सी. संयंत्र में वर्षवार कुल व्यय का विवरण

	P-P		(लाख टन में)
वर्ष	विविध व्यय	आयकर	क्ल व्यय
91-92	18.662	0.30	18.962
92-93	19.530	0.31	19.84
93-94	20.825	0.32	21.145
94-95	23.474	0.34	23.814
95-96	24.066	0.352	24.418
96-97	25.026	0.371	25.397

1996-97 में माहवार विक्रय

माह	रुपयों में	बोरियों में	
अप्रेल	769200	9615	
मई	696600	8600	
जून	595080	7520	
जुलाई	779200	9730	
अगस्त	715200	8940	
सितंबर	789750	9750	
अक्टुबर	772000	9770	
नवंबर	791370	9870	
दिसंबर	794535	9675	
जनवरी	764250	9675	
फरवरी	892880	11161	
मार्च	797900	10100	
कुल योग :-	9156965	114381	

अध्याय पंचम

उद्योग एवं व्यवसाय में स्थापत्यवेद की भूमिका

- अ. उद्भव, विकास एवं महत्ता
- ब. वैदिक परम्परा में स्थापत्य
- स. उद्योग एवं व्यवसाय में स्थापत्य का प्रभाव

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अध्याय पंचम

उद्योग एवं व्यवसाय में स्थापत्यवेद की भूमिका

- अ. उद्भव, विकास एवं महत्ता
- ब. वैदिक परम्परा में स्थापत्य
- स. उद्योग एवं व्यवसाय में स्थापत्य का प्रभाव

पंचम अध्याय

उद्योग एवं व्यवसाय में स्थापत्यवेद की भूमिका

(अ) उद्भव, विकास एवं महत्ता-

वास्तु या स्थापत्य मूलतः भवन निर्माण कला है। भारतीय परम्परा में वास्तु को वेदांग से समुद्रभूत कहा गया है। इसका विशेष सम्बन्ध जयोतिष एवं कल्प से जोड़ा गया हैं। वास्तुशास्त्र या स्थापत्य मूलतः वेद का ही एक अंग है। जिस प्रकार आर्युवेद, ऋग्वेद का, धनुर्वेद यजुर्वेद का गन्धवंवेद सामवेद का उपवेद परिगणित है उसी प्रकार स्थापत्य अथर्व वेद का उपवेद माना गया हैं। वास्तुशास्त्र अपने व्यापक स्वरूप में तंत्र विद्या से संबंधित है। तन्त्र अथर्ववेद का उपवेद है। वास्तुकला यज्ञीय कार्य के रूप में सनातनकाल से परिकल्पित चली आ रही है। वास्तुशास्त्र का वेदों से दोहरा संबंध है क्यों कि इसका वेदांग षट्क में दो वेदांगों से संबंध है। पांचवां वेदांग्य ज्योतिष एवं छठा कल्प जिसमें वैदिक ज्ञान की मीमांसा है दोनों ही वास्तुशास्त्र के सहयोगी हैं। ' कल्प सूत्रों में सूल्व सूत्रों के अन्तर्गत वेदी रचना एवं मान आदि का जिक्र है। उन्हीं नियमों की आधारशिला पर प्रासाद भवन निर्माण की प्रक्रिया प्रकल्पित हुई। वास्तुशास्त्र या स्थापत्य शास्त्र भवन निर्माण कला का प्रतिपादक समझा जाता है।

भारतीय वास्तुकला का जन्म यज्ञशालाओं से हुआ माना जाता है। यज्ञवेदियों से विशाल मंदिरों का जन्म हुआ है ऐसा सभी वास्तु विशारदों ने माना है। ' वेदी लक्षण पर जो विचार किया गया है उससे सिद्ध है कि यज्ञवेदियों की पृष्ठभूमि पर ही भवन निर्माण की कल्पना की गई है। पुरातन वेदियों का संबंध विभिन्न यज्ञों से था। कालान्तर में किसी भी शुभ अथवा धार्मिक कार्य में वेदी रचना अनिवार्य परम्परा थी। यज्ञवेदी के चौकोर आकार की मीमांसा में इतना ही संकेत काफी है कि इसमें मानव जीवन की पूर्णता निहित है। इसमें संस्थान की पूर्ण अभिव्यक्ति भी प्रतिष्ठित है। कोई भी संस्थान जो चौकोर

स्त्रोत:

⁽¹⁾ स्थपति लक्षण- स.सू. (44.3)

⁽²⁾ भारतीय स्थापत्य पृष्ठ 9

⁽³⁾ स.सू. पृष्ठ ४७ अ

नहीं वह पूर्ण नहीं है। इस सत्य को आसानी से समझा जा सकता है। चार वेद, चार वर्ण, चार आश्रम, चार अवस्थायें जिस प्रकार ज्ञान, मानवता, मानव पुस्तके एवं मानव विकास की प्रतीक हैं उसी प्रकार वास्तु रचना में चार अस्त्रों (चतुरस) का महत्व है।

स्थापत्य को तन्त्र विद्या से संबंधित भी माना जाता है। तन्त्र विद्या से यन्त्रों का समावेश आवश्यक हैं अतएव किसी भी वास्तु कार्य में यन्त्र निर्माण प्रथम प्रक्रिया है। यन्त्र विद्या को आधुनिक अभियांत्रिकी ज्ञानिंग स्केच के रूप में अंकित कर पायी है। प्राचीन मत में वास्तु यन्त्र एक प्रकार की रैखिक रचना है। जिसके द्वारा परम सत्ता किसी भी स्थल पर पूजने हेतु बांधी जा सके। इसी को वास्तु पुरुष कहा जाता है।

तमेव वास्तुपुरुषं ब्रम्हा समस्जत्प्रयुः।
कृष्ण पक्षे तृतीया मास भाद्रपदे तथा।। ¹
आश्रियं मृत्युमाप्नोति विष्नस्तस्य पदे पदे।
वास्तु पूजां अकुर्वाणः तवाहारो भविष्यति।। ²

वास्तु पुरुष की उत्पितिन वास्तु पुरुष का जो उल्लेख शास्त्रों में मिलता है उसके अनुसार प्राचीन काल में अंधकासुर नामक दैत्य एवं भगवान शंकर के बीच भीषण युद्ध हुआ। उस युद्ध में शंकर जी के पसीने की कुछ बूदें भूमि पर आ गिरीं। इससे कराल मुख वाला अद्भुद प्राणी प्रादुर्भूत हुआ। तीनों लोकों का आहार करने में समर्थ वह अद्भुद प्राणी अंति क्षुधा से व्याकुल होकर तपस्या करता रहा। यह देखकर इन्द्र सहित समस्त देवता घबराये और ब्रम्हा जी के पास पहुंचे। ब्रम्हा जी की आज्ञा से समस्त देवताओं ने उस अद्भृत प्राणी को जमीन पर गिरा दिया। फिर वह भयंकर गर्जना करते हुये ब्रम्हा जी के पास पहुंचा और कहा कि आपने सम्पूर्ण जगत की रचना की है किन्तु बिना अपराध देवगण मुझे कष्ट दे रहे हैं। यह सुनकर ब्रम्हा जी ने वरदान दिया कि तुम वास्तुपुरुष कहलाओगे। ग्राम, नगर, दुर्ग, मकान, प्रासाद, जलाशय, उद्यान निर्माण के पहले जो वास्तुपुरुष का पूजन नहीं करेगा उसे पग पग पर बाधाओं का सामना करना पड़ेगा और वह भविष्य में तुम्हारा आहार बनेगा। यह कहकर ब्रम्हा जी अन्तध्यान हो गये। भाद्र पद मास के कृष्ण पक्ष की तृतीया तिथि, शनिवार, कृतिका नक्षत्र, व्यतिपात योग, विष्टिकरण योग, भद्रा के मध्य में कुलिक मुहूर्त में वास्तु पुरुष की उत्पत्ति मानी जाती है। व

स्त्रोत : (1) विश्वकर्मा प्रकाश 9-14

⁽²⁾ विश्वकर्मा प्रकाश 1-17

⁽³⁾ वास्त् एवं ज्योतिष- विजय तेलवाले

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वार-तुषुरूष

उत्तर

विद्याग

उत्तर

गयन्यः

ज़ेवस्

ईशान



आग्नेय

दक्षिण



ईशा मूधिर्न समाश्रितः श्रवणयो पर्जन्यनामादितिः आपः तस्य गले तदंशयुगले प्रोक्तो जयश्पादितिः। उक्तावर्णम भूधारौ स्तनुयगे स्यादापवत्सो हृदि, पंचेन्द्रादि सुराश्च दक्षिणभुजे वामे च नागादयः।। सावित्रः सविता च दक्षिणकरे वामे च ह्यंरुद्रतः, मृतयुभैंत्रगणस्थारु विषये स्यान्नाभिपृष्ठे विधिः। मेढे शक-जयौ च जानु-मुगले तौ वहिन रोगौ स्मृतौ, पूषानन्दिगषाश्च सप्तविषुधान् अल्पो पदोः पैतृकः।। ¹

शास्त्रानुसार वास्तु पुरुष के दोनों पैर नैत्रच्य कोण में है। पदतल एक दूसरे से सटे हुये हैं मस्तिष्क ईशानकोण में है। हांथ पैर की संधियां, अग्नि और वायव्य कोण मे हैं। विभिन्न अंगों में देवताओं का वास है। मस्तिष्क में महादेव, दोनों कानों में पर्यजन्मय, गले के ऊपर आपदेव, कन्धों में जय और अदिति, स्तनों पर अर्थमा और पृथ्वी घर, हृदय पर आपवत्स, दाहिने हाथ पर इन्द्र, सूर्य, मत्य, भ्रश और आकाश, बाये हाथ में नाग, भल्लाट, कुबेर और शैल, दाहिने हांथ पर अर्थात कोहिनी से कमर तक सावित्र, सविता हैं, इसी तरह दाहिनी कोहिनी से कमर तक रुद्र और रुद्र दाशक, जंघा पर मृत्यु और मैत्र है। चूंकि वास्तु पुरुष उल्टा सोता है इसिलये नामि के पीछे कमर के उपर पीठ के सामने ब्रम्हा, उपस्थ स्थान में इन्द्र और जय दोनों घुटने के उपर अग्नि और रोग, दोनों पैर की नली पर पूजा, वितथ, गृहक्षत, यम, गन्धर्व, भृष और मृग दूसरी नली पर नन्दी, सुग्रीव, पूषा, वरुण, असुर शोष और पाष्ययक्ष्मा और दोनों पैर की एड़ी पर पितृ देवता की स्थापना करनी चाहिये।

प्राचीन आयों ने वास्तु शब्द की जो व्याख्या की है वह इसके व्यापक क्षेत्र में बड़ी सहायक है। मानसार के अनुसार भूमि, भवन, यान, एवं पर्यक का ही वास्तु शब्द से बोध होता हैं डा. आचार्य के शब्दों में हर्म्य में प्रासाद, मंडप, सभा शाला, प्रपा ये सभी शामिल हैं। ' पर्यक में पंजर, मंचली, मंच, फलकासन, तथा बाल पर्यक इसमें शामिल किये गये हैं। वास्तु शब्द ग्रामों पुरों, दुर्गों, पुटभेदनों का भी वाचक है। मूर्ति कला अथवा पाषाण कला वास्तु की सहचरी मानी जाती है। अग्नि पुराण, गरुड़ पुराण, और कौटिल्य अर्थशास्त्र में वास्तु का व्यापक उल्लेख मिलता है। 3

स्त्रोत: (1)संपूर्ण वास्त्विज्ञान पृष्ठ- 45

⁽²⁾ विश्वकोष पृष्ठ- 45

⁽³⁾ अग्नि पुराण अध्याय 106-5-1, गरुण पुराण अध्याय 46, कौटिल्य अर्थशास्त्र अध्याय 65



0

उद्भव एवं विकास :

वास्तु विद्या का जन्म वैदिक काल के ही समकालीन माना जाता है। उसका रूप वेदांगों के समय में स्थिर हुआ तथा पुराणों एवं आगमों में उसका विकास हुआ। आगे चलकर वास्तुविद्या के आचार्यों ने उसको एक स्वाधीन शास्त्र के रूप में खड़ा किया और यह शास्त्र शुक्राचार्य के अनुसार विद्या स्थान के पद को भी प्राप्त हो गया। 1

वास्तुकला के मर्मज्ञ डा. कुमार स्वामी के शब्दों में भारत की सभी देन उसके दर्शन से अनुप्राणित है। जहां तक भारतीय कला की उद्भावना का संबंध है उसमें धर्म के कलेवर और भारतीय दर्शन की आत्मा का निवास है ऋग्वेद में ही वास्तुकला संबंधी अनेक उल्लेख मिलते हैं। जब पुराणों और आगमों की उपासना परम्परा पल्लवित हुई तो शिव पूजा और विष्णु पूजा की प्रबल धारा हिमान्द्री उत्तर से दिक्षण सेतुबन्ध रामेश्वर तक बहने लगी। शिव भिवत और विष्णु भिवत ने देश के कोने कोने में एक धार्मिक वातावरण निर्मित किया। इसी दौरान मंदिरों की स्थापना हुई। इस पौराणिक धर्म के प्रचार ने वास्तुकला को उन्नित पर पहुंचा दिया।

भारतीय वास्तुशास्त्र का प्रथम प्रयोग ऋग्वेद में मिलता है। ईसा पूर्व द्वितीय सहस्त्राब्दी के पूर्व भारतीयों को भवन निर्माण का सर्वाधिक ज्ञान था। ऋग्वेद में कई स्थलों पर वास्तोष्पति ² नामक देवता का उल्लेख मिलता है। एक स्थान पर वास्तोष्पति तथा इन्द्र को तथा अन्यत्र ³ वास्तोस्पति त्वस्ट्रा को एक ही माना गया है।

वास्तुविद्या की परम्परा एवं विकास की शुरुआत मानवता एवं मानव सभ्यता के साथ—साथ सनातन से सर्वत्र रही है। मुख्यतः वास्तु विद्या का विकास ऋग्वेदकालीन ही है। हालांकि वैदिक एवं पौराणिक काल में वास्तु विद्या का विकास अपने उत्कर्ष पर था। यद्यपि कालान्तर में इसके विकास के प्रामाणिक साक्ष्य न भी उपलब्ध रहे हों, इस बात से इन्कार भी नहीं किया जा सकता कि वास्तु विद्या की परम्परा आदिकाल से ही विकसित होती चली आ रही है। आधुनिक भारत के इतिहास में दृष्टि डालने पर हम पाते हैं कि सिन्धु घाटी सभ्यता में तो वास्तु कला का विकास अपने समुन्त एवं उत्कृष्ट रूप में था। ईसा पूर्व 1500 के लगभग हड़प्पा एवं मोहन जोदड़ों के नगरों की खोज से जो अवशेष प्राप्त हुये हैं, उनसे यह ज्ञात होता है कि नगर, भवन कितने व्यवस्थित तरीके से बसाये जाते थे। यहीं पर कनिष्क कालीन

स्त्रोत- (1) भारतीय स्थापत्य, डा. शुक्ल पृष्ठ. 25

⁽²⁾ ऋग्वेद 7/54, 7/55, 8/17/14

बौद्ध स्तूप भी पाया गया है मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त का पाटिलपुत्र स्थित राजमहल नगर के मध्य में स्थित विशालता और सुन्दरता में संसार में सबसे बढ़कर था। तेंरहवी शताब्दी (1232 ईस्वी) के तेजपाल के देलवाड़ा (आबु पहाड़) में बनवाये नेमिनाथ के मंदिर की छत पर कंस के राज महल की डिजाईन का चित्रण हैं जिससे उस काल के भवन निवेश की जानकारी मिलती है। महाभारत काल में महाराजा विश्वकर्मा द्वारा एवं मय द्वारा बनाये गये राजमहल इन्द्रप्रस्थ माया सभा आदि वास्तु के अद्भूत उदाहरण है। ऐसे भवन जिसके फर्श जलाशय का भ्रम पैदा करें और ऐसे जलाशय जो सुंदर संगमरमर की फर्श के सदृश्य दिखें ऐसे वास्तुकला का उदाहरण इस काल में मिला। मुगल कालीन ताज महल वास्तुशास्त्र का अनुपम उदाहरण है भगवान वेंकटेश्वर तिरुपति का मंदिर वास्तुशास्त्र के सिद्धांतों पर निर्मित है जिसका प्रवेश द्वार पूर्व में, पानी का स्त्रोत इशान में है। यह मंदिर भारत में सबसे धनाढ्य माना जाता है। प्राचीन काल के इन उदाहरणों से यह बात पुष्ट होती हैं कि वास्तु विद्या कितनी प्राचीनतम है।

स्थापत्य का महत्व -

भारतीय संस्कृति का प्राण धर्म है और भारतीय धर्म का मूल उद्देश्य आत्मिक शांति है। अतः अन्ततोगत्वा वास्तु शास्त्र के नियमों का उद्देश्य मानव को सुख समृद्धि एवं आत्मिक शांति प्रदान करना है।

''प्रकृति क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वसः ¹ अर्थात सम्पूर्ण कर्म वास्तव में प्रकृति के गुणों द्वारा ही सम्पादित होते हैं। अतः वास्तु शास्त्र के नियम इस तरह बताये गये हैं कि प्राकृतिक स्त्रोतों के माध्यम से हमें ऊर्जा मिल सके और हमें अच्छा स्वास्थ्य एवं सुख समृद्धि प्राप्त हो सके। अतः वास्तुशास्त्र के अन्तर्गत वास्तुविधा का तात्पर्य केवल चहारदीवारी खड़ी कर देने से नहीं है और न ही कारागार की तरह सीलन भरी अंधेरी कोठिरयों को 'घर' कहा जा संकता है, वास्तु विधा में उत्तम गृह के संबंध में बताया गया है।

स्त्रीपुत्रादि भोगसौरव्यजननं धम्मार्थकामपदम् जन्तनामयनं सुखास्पदमिदं शींताम्बुद्यमायहम्।।

स्त्रोत-(1) भगवद्गीता (19)

वापीदेवगृहादिपुण्यमिखलं गेहात्समुत्पद्यते। गेह पूर्वमुशन्तितेन विबुधाः श्रीविश्वम्मादयः।। १

स्त्री पुत्र आदि के भोग सुख, धर्म अर्थ, काम आदि देने वाला प्राणियों का सुख स्थल सर्दी, गर्मी, वायु से रक्षा करने वाला गृह ही है। नियमानुसार निर्माणकर्ता को बावड़ी व देव स्थान निर्माण का पुण्य भी प्राप्त होता है अतः विश्वकर्मा आदि देव शिल्पियों ने सर्वप्रथम गृह निर्माण का निर्देश किया है क्योंकि पर गृह निवास स्वतंत्रता एवं स्वाभिमान की दृष्टि से सर्वथा त्याज्य है। इसकी निंदा महर्षि चाणक्य के शब्दों में इस प्रकार है—

''पर सदननिविष्टः को लघुत्वं न याति।'' ²

पर गृह में बिना शुल्क दिये समस्त शुभ कार्य, श्रौतस्मार्त आदि निष्फल हो जाते हैं क्योंकि उनका फल भूस्वामी को प्राप्त होता है।

परगेहें कृतास्सर्वाः श्रौतस्मार्तक्रिया शुभाः।

निष्फलः स्युर्यतस्तासां भूमीशः फलमश्नुते।। 3

अतः चतुवर्ग के कल्याण को केन्द्रित कर सभी को परम सुख प्रदान करने वाला शास्त्र जिसके द्वारा मनुष्य शांति को प्राप्त करें ऐसे देव सुलभ अमृत तुल्य, परम आनंद दायक वास्तु विज्ञान, जो सृष्टि के अंतिनिहित हैं उस शास्त्र का ज्ञान भगवान विश्वकर्मा ने संसार को दिया है।

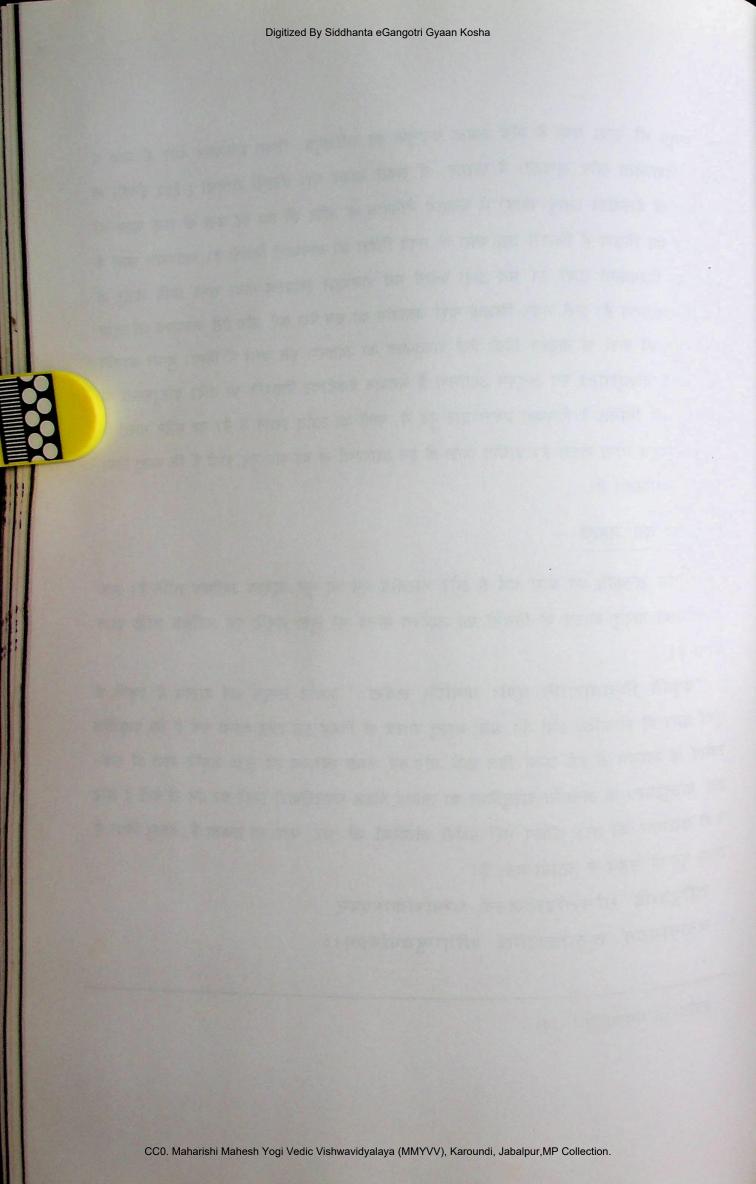
''सा परा शक्तिरेवैषा शुलिनः केन वर्ण्यते। या तता त्रिषु लोकेषु तैलिबन्दुरिवाम्भासि। यत्प्रसादान्मया ज्ञातं वास्तुशास्त्रमिंद ततम्।। शास्त्रेणानेन सर्वस्य लोकस्य परमं सुखम्। चतुर्वर्ग फलप्राप्तिस्सलोकश्च भवेद्धुवम।। शिल्पशास्त्र परिज्ञानान्मत्यौडिप सुरतांवजेत्। परमानन्द जनकं देवानामीद मा रितम्।। शिल्यं विना निह जगत् त्रिषुलोकषुविद्यते। जगद्विना न शिल्पश्च वर्ततेवासवः प्रभो। '

स्त्रोत.

⁽¹⁾ भारतीय वैदिक वास्तुकला, पृष्ठ-5

⁽२ व ३) भारतीय वैदिक वास्तुकला, पृष्ठ-6

⁽⁴⁾ विश्वकर्मा वास्तुशास्त्र



वापीदेवगृहादिपुण्यमिखलं गेहात्समुत्पद्यते। गेह पूर्वमुशन्तितेन विबुधाः श्रीविश्वम्मादयः।। ¹

स्त्री पुत्र आदि के भोग सुख, धर्म अर्थ, काम आदि देने वाला प्राणियों का सुख स्थल सर्दी, गर्मी, वायु से रक्षा करने वाला गृह ही है। नियमानुसार निर्माणकर्ता को बावड़ी व देव स्थान निर्माण का पुण्य भी प्राप्त होता है अतः विश्वकर्मा आदि देव शिल्पियों ने सर्वप्रथम गृह निर्माण का निर्देश किया है क्यों कि पर गृह निवास स्वतंत्रता एवं स्वाभिमान की दृष्टि से सर्वथा त्याज्य है। इसकी निंदा महर्षि चाणक्य के शब्दों में इस प्रकार है–

''पर सदननिविष्टः को लघुत्वं न याति।'' ²

पर गृह में बिना शुल्क दिये समस्त शुभ कार्य, श्रौतस्मार्त आदि निष्फल हो जाते हैं क्यों कि उनका फल भूस्वामी को प्राप्त होता है।

परगेहें कृतास्सर्वाः श्रौतस्मार्तक्रिया शुभाः।

निष्फलः स्युर्यतस्तासां भूमीशः फलमश्नुते।। 3

अतः चतुवर्ग के कल्याण को केन्द्रित कर सभी को परम सुख प्रदान करने वाला शास्त्र जिसके द्वारा मनुष्य शांति को प्राप्त करें ऐसे देव सुलभ अमृत तुल्य, परम आनंद दायक वास्तु विज्ञान, जो सृष्टि के अंतीनिहित हैं उस शास्त्र का ज्ञान भगवान विश्वकर्मा ने संसार को दिया है।

''सा परा शक्तिरेवैषा शुलिनः केन वर्ण्यते। या तता त्रिषु लोकेषु तैलिबन्दुरिवाम्भासि। यत्प्रसादान्मया ज्ञातं वास्तुशास्त्रमिंद ततम्।। शास्त्रेणानेन सर्वस्य लोकस्य परमं सुखम्। चतुर्वर्ग फलपाप्तिस्सलोकश्च भवेद्धुवम।। शिल्पशास्त्र परिज्ञानान्मत्यौं डिप सुरतां वजेत्। परमानन्द जनकं देवानामीद मा रितम्।। शिल्यं विना निह जगत् त्रिषुलोकषुविद्यते। जगद्विना न शिल्पश्च वर्ततेवासवः प्रभो। '

स्त्रोत. (1) भारतीय वैदिक वास्तुकला, पृष्ठ-5

⁽२ व ३) भारतीय वैदिक वास्तुकला, पृष्ठ-6

⁽⁴⁾ विश्वकर्मा वास्तुशास्त्र

अतः भवन निवेश के विधिवत् निर्माण के लिये हमारे पूर्वजों ने जो नियम बनाये हैं, यदि हम उनकी अनदेखी करते हैं तो भविष्यं में असंतोष ही हाथ लगेगा और गृह स्वामी होने के सुख की अनुभूति भी नहीं हो पायेगी। भारतीय साहित्य में विश्वकर्मा को आदिवस्तुदेव के रूप में अनकेशः उल्लेख हुआ है, उन्हें देव शिल्पी भी कहा गया है तथा उनके द्वारा निर्मित भवनों का विस्तार पूर्वक वर्णन भी उपलब्ध है। इन वर्णनों के अनुसार भारतीय वास्तुविद केवल वातानुकृतित भवनों का निर्माण ही नहीं जानते थे वरन् वह ऐसे भवनों का निर्माण भी करने में सक्षम थे जिनमें भूख, प्यास, दुख विन्ताओं तक का प्रवेश भी नहीं हो सकता था, दुर्भाग्यवश विश्वकर्मा रचित ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है। किंतु पुराणों में जो स्फुट अंश उपलब्ध होते हैं उनके आधार पर भारतीय वास्तुकला के नियमों–सिद्धांतों की परिकल्पना की जा सकती है।

वास्तु-शास्त्र के नियमों के अध्ययन से हमें यह जानकारी मिलती है कि भवन-निर्माण के समय कैसे प्रकृति के स्त्रोतों के साथ समन्वय बैठाया जाये कि भवन के उपयोग से किस प्रकार उपयुक्त ऊर्जा हमारे स्वास्थ्य एवं शान्तिमय वातावरण के लिये प्राप्त हो सके।

वास्तु के नियम-सिद्धांत पूर्णतः वैज्ञानिक दृष्टिकोण युक्त हैं तथा सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि पृथ्वी पर सूर्य राशियों के प्रभाव, हवाओं का रुख पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र का दोहन कैसे किया जाना है पूरा ध्यान वास्तु-नियमों में रखा जाता है। अतः उत्तम स्वास्थ्य के लिये शांतिमय वातावरण के लिये वास्तु नियमों का काफी महत्व है।

वास्तु-शास्त्र में पंचभूतात्मक तत्वों का महत्व

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता
परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
स्वयं कृतं स्वेन फलेन युज्यते
शारीर हे निस्तर यच्चया कृतम् ¹

वास्तु कला के नियमों में जो मूल नैसर्गिक भाव निहित है उसका मूख्य आधार, पंचभूतात्मक तत्वों का संतुलन। यह सृष्टि एवं मानव शरीर, इन्हीं तत्वों से निर्मित है (आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी)

स्त्रोत- (1) गरुड़ पुराण

जैसा कि महर्षि तुलसीदास जी ने कहा है।
छिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित अति अधम शरीरा।। 1

यह कहावत भी प्राचीन काल से प्रचलित है कि ''यथा पिण्डे तथा ब्राह्मण्डे'' अतः भवन निर्माण में मूल नैसर्गिक तत्वों का क्या महत्व है इसे अनेक प्राचीन ग्रन्थों में समझाने का प्रयास किया गया है। प्राचीन ग्रन्थों में प्रमुख ग्रन्थ है यजुर्वेद, मत्स्य, पुराण, अग्नि पुराण, वेदान्तों, उपनिषियों, माया–वास्तु, शुक्रनीति समरांडण सूत्रधार आदि है। अतः संक्षेप में उपरोक्त पंचभूतात्मक तत्वों की भवन निर्माण में निहित महता की समीक्षा निम्नानुसार की गई है।

पृथ्वी-तत्व-

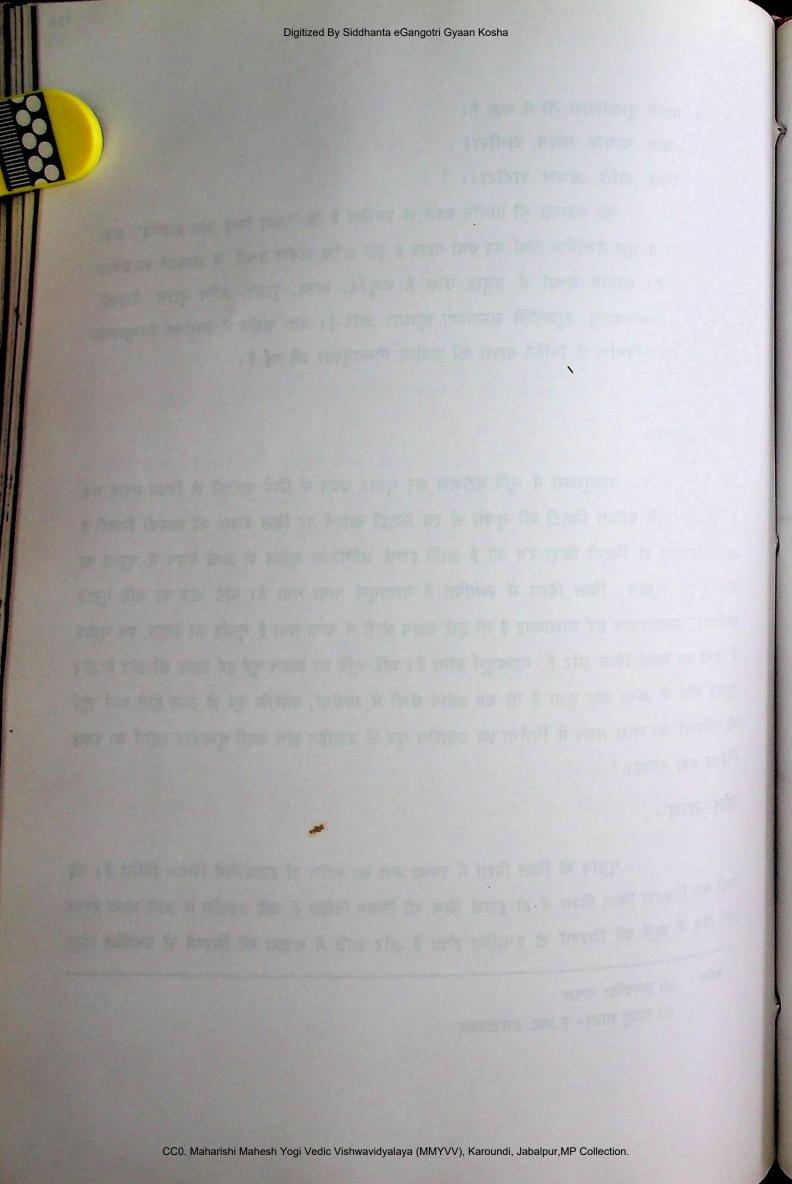
वास्तुकला में भूमि परीक्षण कर भूखंड चयन के लिये बारीकी से नियम बनाये गये हैं, जिसमें भूमि परीक्षा मिट्टी की सुगंध से एवं मिट्टी खोदने पर किस प्रकार की सामग्री मिलती है उसके विवरण से मिट्टी किस रंग की है आदि इसके अतिरिक्त भूखंड के अच्छे चयन में भूखंड का आकार एवं भूखंड किस दिशा में स्थापित है महत्वपूर्ण माना गया है। मोटे तौर पर यदि भूखंड वर्गाकार, आयताकार एवं गोलाकार है तो इसे उत्तम श्रेणी में माना गया है भूखंड का ढलान, एवं भूखंड में पानी का बहाव किस ओर है, महत्वपूर्ण होता है। यदि भूमि का ढलान पूर्व एवं उत्तर की ओर है और भूखंड बीच में ऊंचा उठा हुआ है तो यह उत्तम श्रेणी में आयेगा, क्योंकि पूर्व से उदय होने वाले सूर्य की रिश्मयों का लाभ भवन में मिलेगा एवं उत्तरीय धुव से प्रवाहित होने वाली चुम्बकीय तरंगों का प्रवाह निरंतर बना रहेगा। 2

जल-तत्व-

भूखांड के किस दिशा में स्वच्छ जल का स्त्रोत हो इसकेलिये विधान निहित है। गंदे पानी का निकास किस दिशा में हो इसके लिये भी नियम निहित हैं यदि उपयोग में आने वाला स्वच्छ जल दिन में सूर्य की किरणों से प्रभावित होता है और रात्रि में चन्द्रमा की किरणों से प्रभावित होता

स्त्रोत: (1) रामचरित मानस

⁽२) वास्तु शास्त्र- ए.आर. तारखेडकर



हैं तो इस तरह के जल के उपयोग से निरोगता प्राप्त होती हैं। पानी का स्त्रोत उत्तर पूर्व में उत्तम माना गया है तथा गंदे पानी का निकास उत्तर पश्चिम में उचित बताया गया है।

अग्नि-तत्व

वास्तु शास्त्र में भूखंड के दक्षिण पूर्व का भाग आग्नेय कोण कहलाता है, अतः इस भाग में अग्नि से संबंधित सभी कार्य उचित बताये गये हैं जैसे रसोई घर, वायलर आदि।

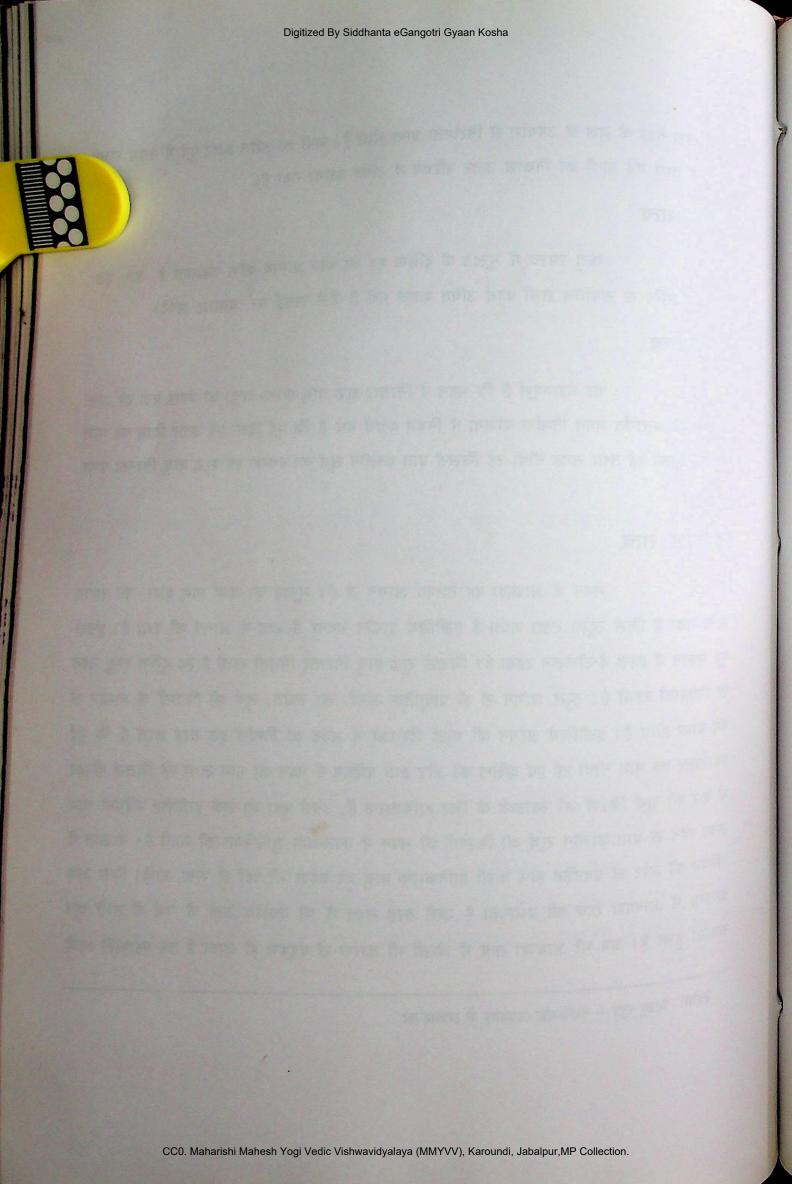
वाय्-तत्व

यह महत्वपूर्ण है कि भवन में निरन्तर शुद्ध वायु (प्राण-वायु) का प्रवाह बना रहे अतः नियमों के अन्तर्गत भवन निर्माण योजना में नियम बनाये गये हैं कि पूर्व दिशा एवं उत्तर दिशा का भाग अधिक खाला रहे तथा सतह नीची रहे जिससे प्रात कालीन सूर्य का प्रकाश एवं शुद्ध वायु निरन्तर प्राप्त होती रहे।

आकाश तत्व

भवन में आकाश का तात्पर्य आंगन से हैं। भूखंड का मध्य भाग ब्रह्मा का स्थान माना गया है जिसे खुला रखा जाता है इसीलिये प्राचीन भवनों में मध्य में आंगन की प्रथा है। इससे पूरे मकान में क्रास वेन्टीलेसन रहता है। जिससे शुद्ध वायु निरन्तर मिलती रहती है एवं दृषित वायु भवन से निकलती रहती है। खुले आंगन से ही प्राकृतिक ऊर्जा का स्त्रोत, सूर्य की किरणों के माध्यम से हमें प्राप्त होता है। इसीलिये आंगन की चारों दिशाओं में भवन का निर्माण इस तरह करते हैं कि पूर्व एवं उत्तर का भाग नीचा रहे एवं दक्षिण की ओर तथा पश्चिम में भवन का भाग ऊंचा रहे जिससे दोपहर के बाद की सूर्य किरणों जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं, उनसे बचा जा सके इसीलिए पश्चिमी भाग ऊंचा रहने से प्रातःकालीन सूर्य की किरणों की भवन में उपलब्धता सुनिश्चित की जाती है– बरसात में पश्चिम की ओर से प्रवाहित होने वाली हानिकारक वायु का प्रवेश भी नहीं हो पाता आदि। जिस तरह ब्रह्माण्ड में आकाश तत्व की प्रधानता है उसी तरह भवन में भी क्योंकि उसी के गर्भ में सभी कुछ समाया हुआ है। जब भी आकाश तत्व में किसी भी कारण से प्रदूषण हो जाता है तब महामारी आदि

स्त्रोतः वास्तु सूत्र – नंदिकशोर अग्रवाल के आधार पर



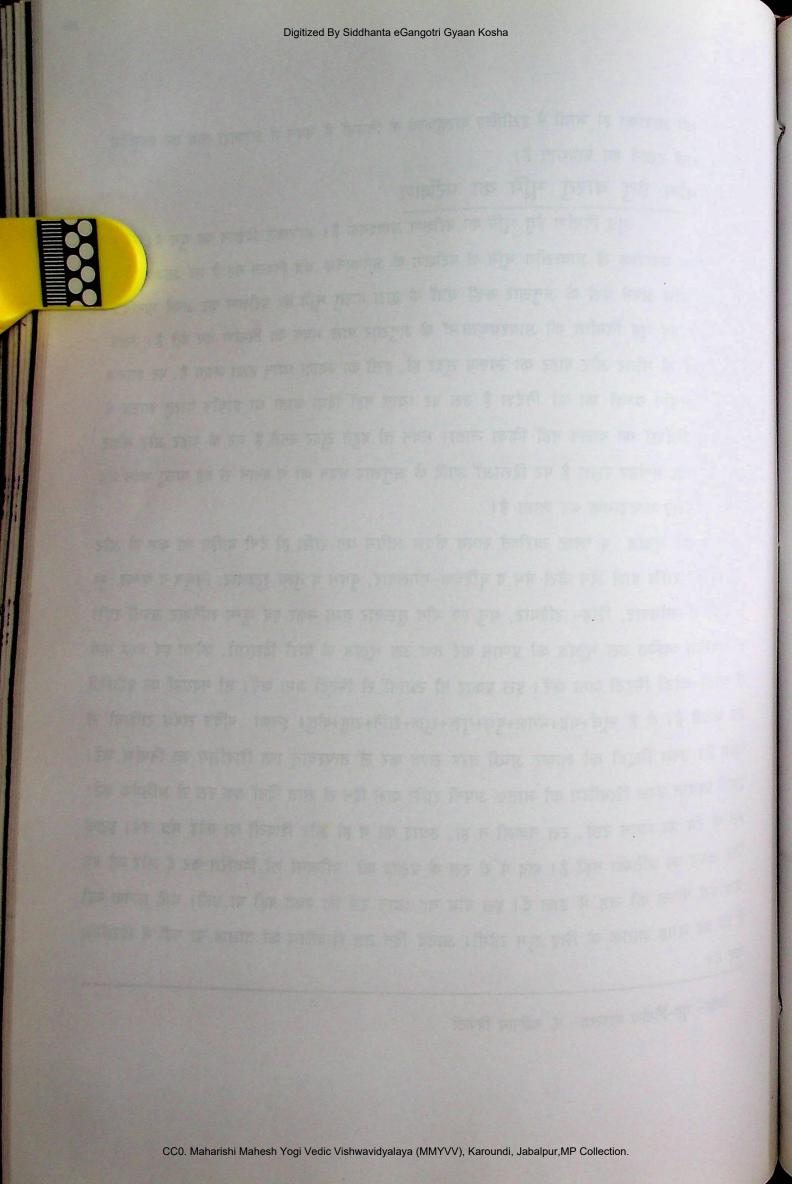
के फैलने की आशंका हो जाती है इसीलिए वास्तुकला के नियमों में भवन में आकाश तत्व को समुचित रूप में बनाये रखने का प्रावधान है।

गृह निर्माण हेतु वास्तु भूमि का परीक्षण

गृह निर्माण हेतु भूमि का परीक्षण आवश्यक है। आजकल विज्ञान का युग है। आज तो वैज्ञानिक तकनीक से आवासीय भूमि के परीक्षण के अनेकानेक यंत्र निकल गए है एवं आजकल के आर्किटेक लोग अपने पेशे के अनुसार उन्हीं यंत्रों के द्वारा वास्तु भूमि का परीक्षण कर अपने मानचित्र के अनुसार एवं गृह निर्माता की आवश्यकताओं के अनुसार वास भवन का निर्माण कर देते हैं। उसमें सिर्फ भवनों के भीतर और बाहर का स्वरूप सुंदर हो, इसी का ज्यादा ध्यान रखा जाता है, पर वास्तव में हमारे प्राचीन ग्रन्थों का जो निर्देश है उस पर ध्यान नहीं दिया जाता था प्राचीन वास्तु शास्त्र में उल्लेखित निर्देशों का पालन नहीं किया जाता। भवन तो बहुत सुंदर बनते हैं घर के बाहर और भीतर देखनें में बड़ा मनोहर रहता है पर दिशाओं आदि के अनुसार भवन को न बनाने से वह वास्तु भवन गृह स्वामी के लिए कष्टदायक बन जाता है।

मानव को भूखंड व प्लाट खरीदते समय केवल अग्रिम धन राशि ही देनी चाहिए जो कम हो और फिर अपनी राशि वाले दिन जैसे मेष व वृष्टिंचक-मंगलवार, वृष्म व तुला शुक्रवार, मिथुन व कन्या. बुध वार, कर्क-सोमवार, सिंह- रविवार, धनु एवं मीन गुरुवार तथा मकर एवं कुम्भ शनिवार अपनी राशि से संबंधित व्यक्ति उस भूखंड को प्रणाम करें तथ उस भूखंड के चारों दिशाओं, कोणा एवं मध्य मार्ग से थोड़ी-थोड़ी मिट्टी जमा करें। इस प्रकार नौ स्थानों से मिट्टी जमा करें। जो नवग्रहों का प्रतिनिधि त्य करती है। वे हैं सूर्य+चंद्र+मंगल+बुध+गुरु+शुक्र+शिन+राहु+केतु। इनका पवित्र संबंध राशियों से रहता है। उक्त मिट्टी को लाकर अच्छी तरह साफ कर लें तत्पश्चात् एक शिवलिंग का निर्माण करें। इसके पश्चात उक्त शिवलिंग को जातक अपनी राशि वाले दिन से सात दिनों तक रस से अभिषेक करे। रस के रंग का ध्यान रखें, रस नकली न हो, उधार का न हो और शिवजी का कोई मंत्र जपे। इसके लिए समय का प्रतिबंध नहीं है। बाद में ये रस के प्रसाद को परिजनों को वितरित कर दें और जो बच जाए उसे पीपल की जड़ में डाल दें। इस बीच यह ध्यान रखें कि बचत बढ़ी या घटी। यदि आवक बढ़ी है तो वह जगह जातक के लिए शुभ रहेगी। आठवें दिन उस शिवलिंग को तालाब या नदी में विसर्जित कर दें।

स्त्रोत- गृह-निर्माण व्यवस्था- पं. बद्रीनाथ त्रिपाठी



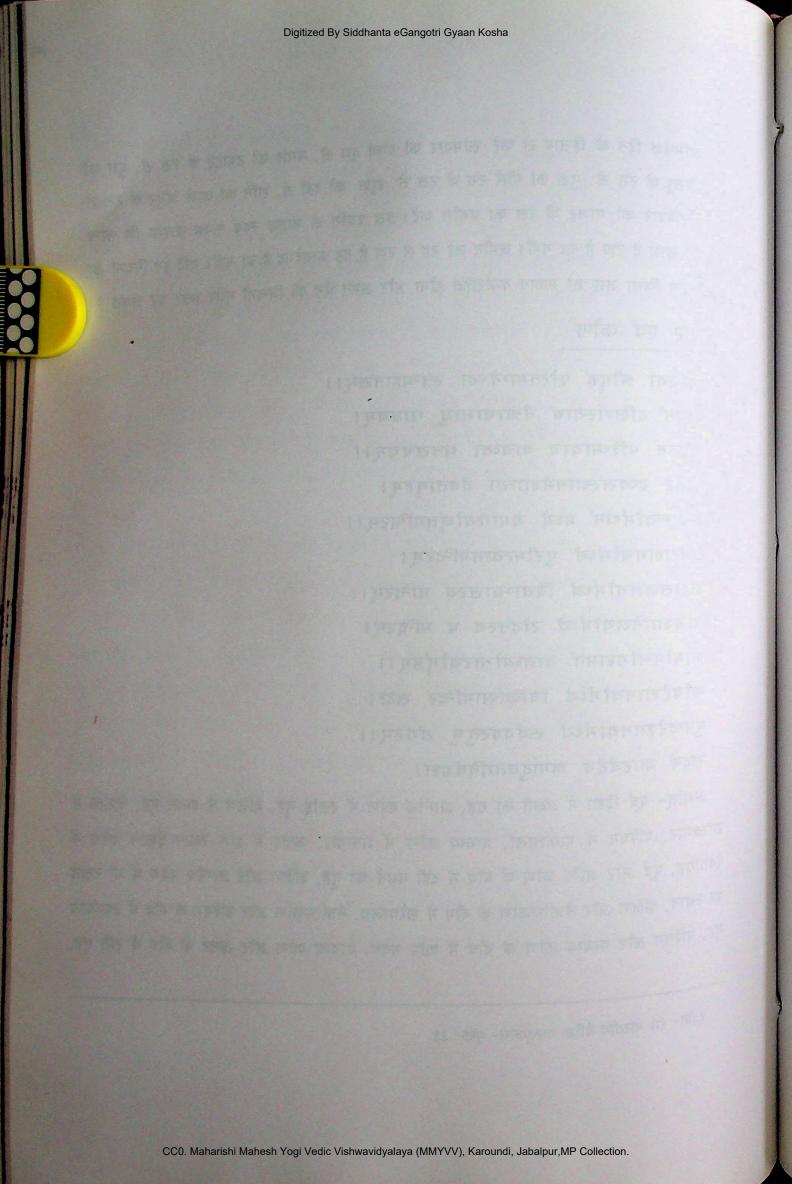
अभिषेक दिन के हिसाब से करें सोमवार को कच्चे दूध से, मंगल को टमाटर के रस से, बुध को हरी वस्तु के रंग से, गुरू को पीले रंग के रस से, शुक्र को दही से, शिन को काले अंगूर के रस से तथा रिववार को गाजर के रस का प्रयोग करें। इस प्रयोग से जातक स्वयं समझ जाएगा कि भाग्य उसका साथ दे रहा है या नहीं। जमीन जो वह ले रहा है वह फायदेमंद है या नहीं। यदि इन नियमों का अनुसरण किया जाए तो मकान कर्जरहित होगा और अमन चैन की जिन्दगी गुजर बसर कर सकते हैं।

दिशाएं एवं कोण

पूर्वस्या श्रीगृहं पोत्तमाग्नेच्यां स्त्रन्महानसम्।।
शयनं दक्षिणस्याचं नैऋत्याभायु धाम्रयम्।
भोजनं पिष्टमायांच वायव्यां धनसंचयम्।।
उत्तरे द्रव्यसंस्थानमैशान्यां देवतागृहम्।
इन्द्राग्न्योर्मथनं मध्ये यमाग्त्योघृतमन्दिरम्।।
यमराक्षययोर्मध्ये पुरीषत्यागमन्दिरम्।
राक्षसंजलयोर्मध्ये विद्याभ्यासस्य मन्दिरम्।
तोयशानिलयोर्मध्ये रोदनस्य च मन्दिरम्।
कामोपभोगशमनं वायव्योन्तरयोगृहम्।।
कौवरेशानयोर्मध्ये चिकित्सामन्दिरं सदा।
पुरन्दरेशानयोर्मध्ये सर्वववस्तुषु संग्रहम्।।
सदनं कारयेदेवं कमादुक्तानिषेडशः।

अर्थात् – पूर्व दिशा में लक्ष्मी का ग्रह, आग्नेय कोण में रसोई गृह, दक्षिण में शयन गृह, नैर्ऋत्य में शास्त्रगार, पश्चिम में पाकशाला, वायव्य कोण में धनागार, उत्तर में द्रव्य स्थान ईशान कोण में देवताग्रह, पूर्व और अग्नि कोण के बीच में दही मथने का गृह, दक्षिण और आग्नेय कोण में घी रखने का स्थान, दक्षिण और नैर्ऋत्यकोण के बीच में शौचालय, नैर्ऋत्यकोण और पश्चिम के बीच में स्वाध्याय गृह, पश्चिम और वायव्य कोण के बीच में कोप भवन, वायव्य कोण और उत्तर के बीच में रित गृह,

स्त्रोत- (1) भारतीय वैदिक वास्तुकला- पृष्ठ- 28



उत्तर और ईशान के बीच में औषध गृह, ईशान कोण और पूर्व के बीच में सर्व वस्तु संग्रह (भंडार गृह) इस प्रकार सौलह गृहों का विधान है।

वास्तुशास्त्र में दिशाओं एवं कोणों का महत्व है। हमारे पूर्वजों ने बहुत पूर्व ही सूर्य के प्रकाश में मौजूद जीवन दायक तत्वों के विषय में जानकारी प्राप्त कर ली थी अतः इसी आधार पर उन्होंने गृह निर्माण के लिउ विभिन्न दिशाओं तथा कोणों के आधार पर गृह निर्माण की योजनाएं बनाई जिससे वह मनुष्य को सुख समृद्धि तथा आरोग्य रखने में सदैव सहायक रहें।

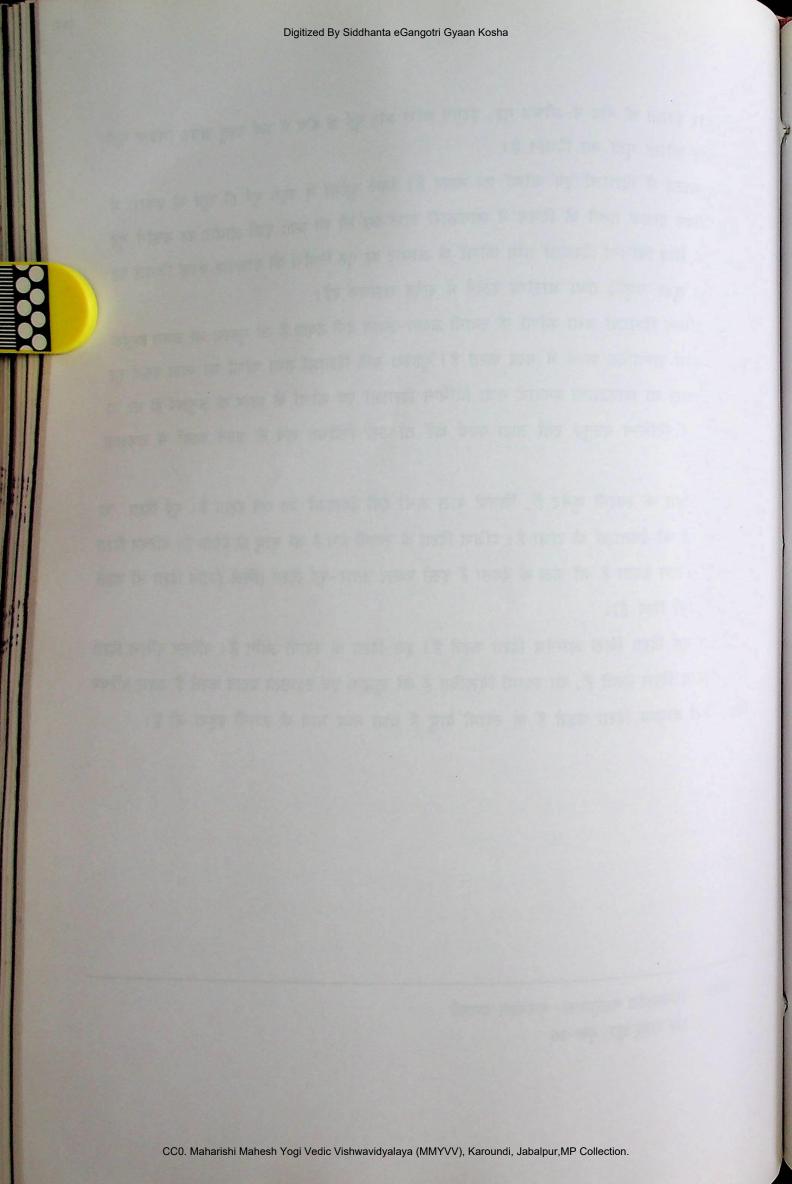
इन विभिन्न दिशाओं तथा कोणों के स्वामी अलग-अलग देवी देवता हैं जो गृहस्थ को सफल तमूर्वक विभिन्न कार्य सम्पादित करने में मदद करते हैं। गृहस्थ यदि दिशाओं तथा कोणों का ध्यान रखते हुए अपना आवास या कारखाना बनवाये तथा विभिन्न दिशाओं एवं कोणों के महत्व के अनुरूप ही घर या कारखाने में विभिन्न वस्तुएं रखे तथा कार्य करें तो उसे निश्चित रूप से अपने कार्यों में सफलता मिलेगी।

उत्तर दिशा के स्वामी कुबेर हैं, जिनके पास सभी देवी देवताओं का धन रहता है। पूर्व दिशा का स्वामी इंद्र है जो देवताओं के राजा है। दक्षिण दिशा के स्वामी यम है जो मृत्यु के देवता है। पश्चिम दिशा के स्वामी वरूण देवता है जो जल के देवता हैं इसी प्रकार उत्तर-पूर्व दिशा (जिसे ईशान दिशा भी कहते हैं। के स्वामी शिव है)। 1

दक्षिण पूर्व दिशा जिसे आग्नेय दिशा कहते हैं। इस दिशा के स्वामी अग्नि हैं। पश्चिम दक्षिण दिशा जिसे नैर्ऋव्य दिशा कहते हैं, का स्वामी निरूक्ति हैं जो शुद्धता एवं स्वच्छता प्रदान करते हैं उत्तर पश्चिम दिशा जिसे वायव्य दिशा कहते हैं के स्वामी वायु हैं तथा मध्य भाग के स्वामी ब्रह्मा जी हैं।

स्त्रोतः (1)भारतीय वास्तुकला- बृजमोहन दम्माणी

(2) वास्तु सूत्र, पृष्ठ-26



स्थापत्य वेद एवं विज्ञान

ग्रहाधीनं जगत् सर्व ग्रहाधीना नरावराः।

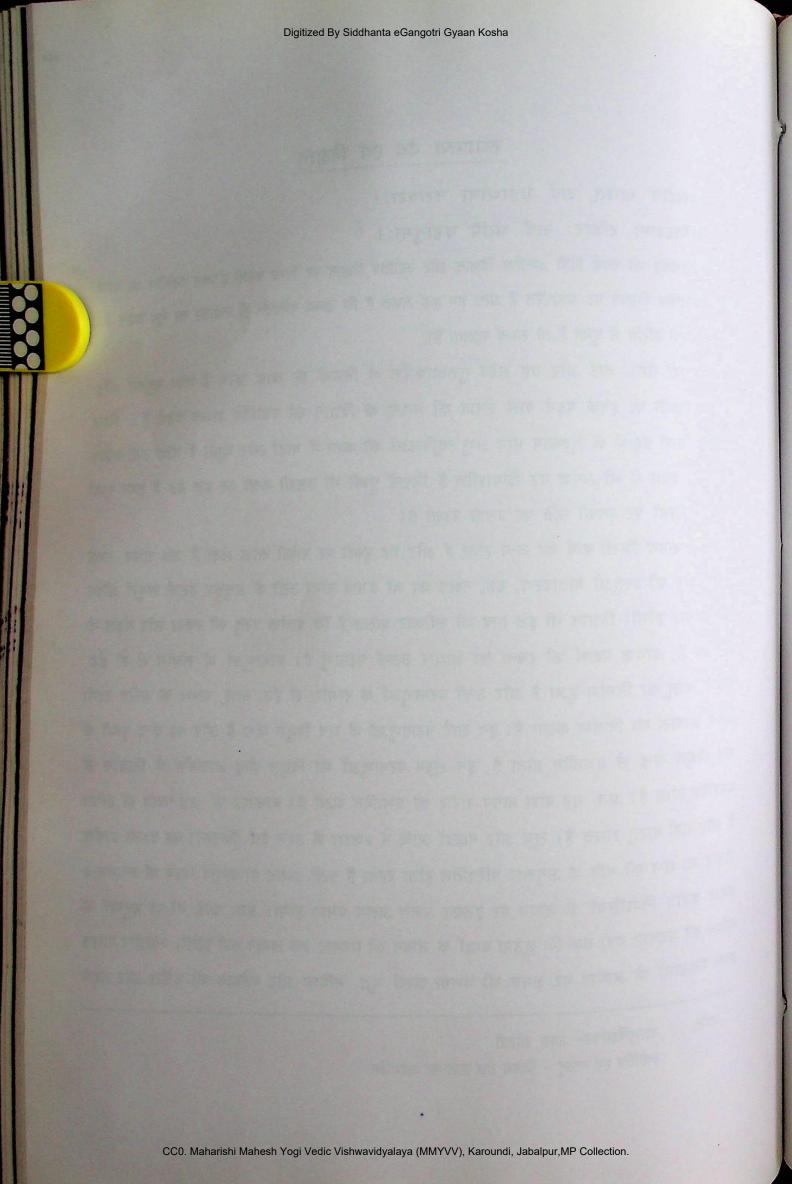
सृष्टिरक्षण संहारः सर्वे चापि ग्रहानुगाः। 2

स्थापत्यवेद की कार्य विधि अंतरिक्ष विज्ञान और ज्योतिष विज्ञान पर निर्भर करती हैं तथा ज्योतिष की कार्य विधि अंतरिक्ष विज्ञान पर आधारित हैं अतः हम कह सकते हैं कि समय परिवर्तन ही ज्योतिष का मूल स्थान है। (ग्रह, अपनी परिधि में घूमते हैं तो समय बदलता है।)

आकाश गंगा, तारे और ग्रह सदैव गुरुत्वाकर्षण के नियमों पर कार्य करते हैं तथा मनुष्यों और संपूर्ण प्रकृति पर इनके पड़ने वाले प्रभाव की गणना के विज्ञान को ज्योतिष शास्त्र कहते हैं। जिस प्रकार किसी प्रदार्थ के सूक्ष्मतम भाग अणु न्यूक्लिअर की कक्षा में चारों ओर घूमते हैं ठीक उसी प्रकार सूर्य की कक्षा में भी अनेक ग्रह क्रियाशील हैं जिसमें पृथ्वी भी उसकी कक्षा का एक ग्रह हैं तथा पृथ्वी के निवासियों पर इनकी गति का प्रभाव पड़ता है।

जिस समय किसी बच्चे का जन्म होता हैं और वह पृथ्वी पर पहली सांस लेता हैं उस समय उसके चारों ओर की वस्तुओं वातावरण, ग्रह, नक्षत्र का जो ग्रभाव होगा उसी के अनुरुप उसके संपूर्ण जीवन की घटनाएं होंगी। विज्ञान भी इस तत्व को स्वीकार करता है कि प्रत्येक वस्तु की रचना सौर मंडल के अनुरूप है, प्रत्येक पदार्थ की रचना का आधार उसके परमाणु है। परमाणुओं के संयोग से ही ईंट, पत्थर, बालू का निर्माण हुआ है और उन्हीं परमाणुओं के संयोग से ईंट, बालू, पत्थर के जिरए प्राणी अपने आवास का निर्माण करता है। इन सारे परमाणुओं के धन विद्युत केन्द्र है और वह केन्द्र पृथ्वी के धन विद्युत केन्द्र से प्रभावित होता है, इन स्क्ष्म परमाणुओं का विद्युत केन्द्र आकर्षण के सिद्धांत से प्रभावित होता है। अतः गृह वाश मानव शरीर को प्रभावित करते हैं। ब्राम्हाण्ड के ग्रह नक्षत्र ही प्रधान है और यही वास्तु शास्त्र है। सूर्य और नक्षत्रों आदि में प्रकाश के तरंग दैर्य (किरणों) का प्रभाव प्रत्येक सेकेंड या क्षण की गति के अनुसार परिवर्तित होता रहता हैं इसी अधार पर संपूर्ण विश्व के लगभग 2 हजार करोड़ निवासियों के जीवन पर इसका अलग अलग प्रभाव होगा। अतः कोई भी दो मनुष्यों के जीवन की घटनाएं एक समान नहीं होती। ज्योतिष शास्त्र इन्हीं सिद्धांतों के आधार पर समय की गणना करके भूत, भविष्य और वर्तमान की घटित और घटने इन्हीं सिद्धांतों के आधार पर समय की गणना करके भूत, भविष्य और वर्तमान की घटित और घटने

स्त्रोतः वास्तुविज्ञानम– उमेश शास्त्री ज्योतिष एवं वास्तु – विजय तेल वाले पर आधारित



वाली घटनाओं से अवगत कराता हैं तथा अशुभ प्रभाव को शुभ प्रभाव में परिवर्तित करने का समाधान भी करता है, क्यों कि जब किसी वस्तु पर प्रकाश पड़ता है तो उससे परिवर्तित किरणों का उसकी तरंगदैर्य के अनुसार प्रभाव पड़ता हैं और इसी तरंग दैर्य में 86 तरह की किरणें होती हैं इन सभी का अलग-अलग प्रभाव पड़ता है।

राशि और सौर ऊर्जा का सिद्धांत- कालक्रम के आधार पर राशि चक्र को 2 भागों में बांटा गया हैं अतः सभी भाग 30 अंश के होते हैं इन सभी समान भागों को 12 अलग अलग राशियों के नाम से जाना जाता हैं और इन राशियों का सूर्य, चन्द्र और अन्य ग्रहों के अनुसार अलग प्रभाव होता हैं इन राशियों का वर्गीकरण निम्नानुसार हैं (राशि. 12 है)

1.	मेष	0 से 30 अंश
2.	वृष	30 से 60 अंश
3.	मिथुन	60 से 90 अंश
4.	कर्क	90 से 120 अंश
5.	सिंह	120 से 150 अंश
6.	कन्या	150 से 180 अंश
7.	तुला	180 से 210 अंश
8.	वृश्चिक	210 से 240 अंश
9.	धनु	240 से 270 अंश
10.	मकर	270 से 300 अंश
11.	कु म्भ	300 से 330 अंश
12.	मीन	330 से 360 अंश ¹
ग्रह 9		

1. रवि-सूर्य 2. चन्द्र-सोम 3. मंगल 4. बुध 5. गुरु 6. शुक्र 7. शनि 8. राहु 9. केत्

इस प्रकार कुल 12 राशियां और 9 ग्रह होते हैं जिनका अलग अलग प्रभाव पड़ता है सभी मनुष्यों और प्रकृति पर इन 12 राशियों और 28 नक्षत्रों का प्रभाव पड़ता है क्यों कि चंद्रमा, पृथ्वी के चारों ओर एक चक्कर पूरा करने में लगभग 28 दिन का समय लेता हैं इन्हीं 28 दिनों को अलग अलग नामों से जाना जाता हैं जिन्हें नक्षत्र कहते हैं। 28वां अभिजित नक्षत्र होता हैं उत्तराषाढ़ और श्रावण के मध्य 28वां नक्षत्र हिता हैं परंतु इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं होता है। 2

स्त्रोत: (1) वृहत पराशर होराशास्त्रम

⁽²⁾ मानसागरी

यहां पर ज्योतिष की कार्यविधि और उसके भागों का वर्णन मात्र वस्तु शिल्प शास्त्र पर उसके प्रभावों और महत्व को दर्शाया जा रहा है –

मीन	मेष	वृष	मिथुन
12 .	1	2	3
कुम्भ	ब्रह्मा स्थान		कर्क
11	आंगन		4
मकर			सिंह
10			5
धनु	वृश्चिक	तुला	कन्या
9	8	7	6

ज्योतिष एवं वास्तु का संबंधः-

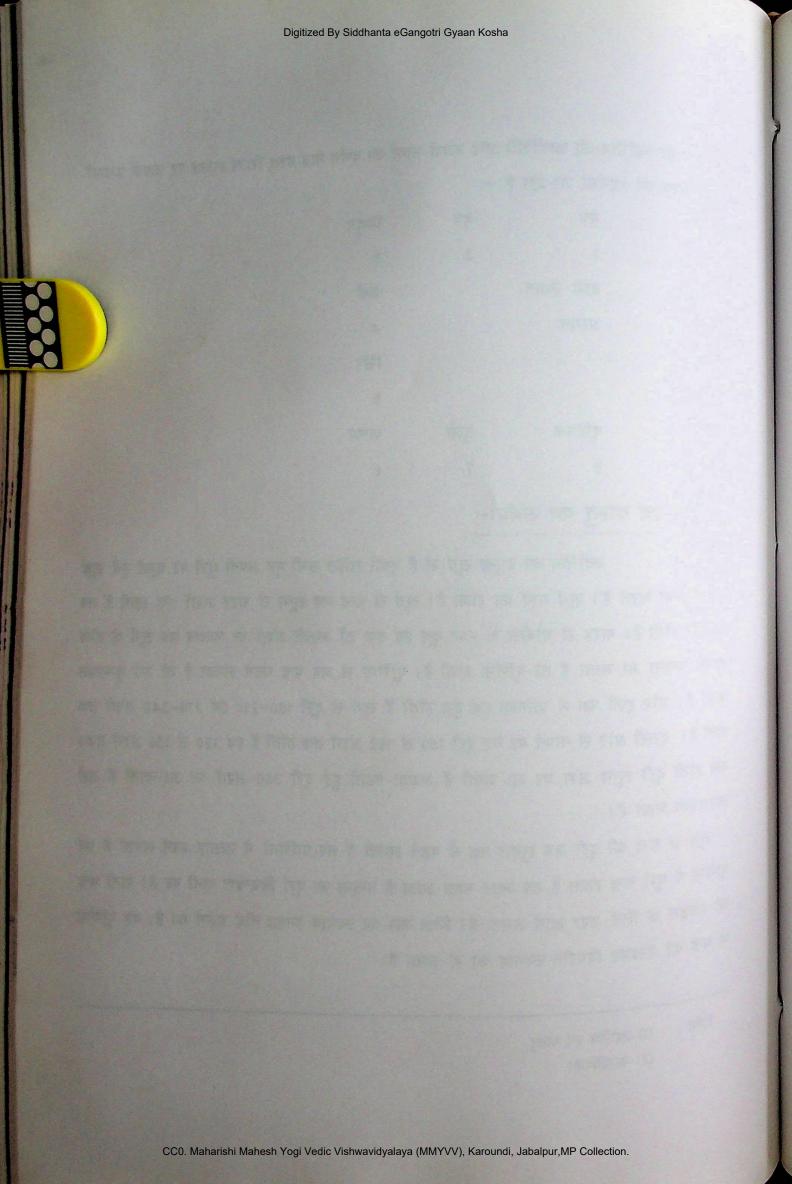
. ज्योतिष का प्रमुख सूर्य से है पृथ्वी सहित सभी गृह अपनी धुरी पर घूमते हुये सूर्य की परिक्रमा करते हैं। सूर्य ग्रहों का रोजा है। सूर्य से चन्द्र जब शून्य से बारह अंशों तक रहती हैं तब प्रतिपदा होती है। बारह से चौबीस के मध्य दूज एवं एक सौ अस्सी अंशों पर मतलब जब सूर्य के ठीक सामने चन्द्रमा आ जाता है तो पूर्णिमा होती है। पूर्णिमा से जब चन्द्र घटने लगता है तो उसे कृष्णपक्ष कहते है। और इसी पक्ष में प्रतिपदा एवं दूज होती हैं सूर्य से दूरी 180-210 एवं 210-240 अंशों तक होती है। दूसरी ओर से नापने पर यह दूरी 150 से 180 अंशों तक होती हैं एवं 120 से 150 अंशों तक। कम होती दूरी शून्य अंश पर आ जाती हैं अथवा बढ़ती हुई दूरी 360 अंशों पर आ जाती हैं उसे अमावस्या कहते हैं।

सूर्य से चन्द्र की दूरी जब शुक्ल पक्ष में बढ़ने लगती हैं तब प्राणियों में उत्साह बढ़ने लगता हैं एवं पूर्णिमा में पूर्ण चन्द्र रहता है तब ज्वार भाटा आता है चन्द्रमा का पूर्ण नियन्त्रण पानी पर है। पानी चन्द्र को पकड़ने के लिये उपर उठने लगता है। जिस जल का स्वभाव हमेशा नीचे चलने का है, वह पूर्णिमा के चन्द्र को देखकर विपरीत स्वभाव का हो जाता है। 2

स्त्रोत:

(1) ज्योतिष एवं वास्तु

(2) फलदीपिका



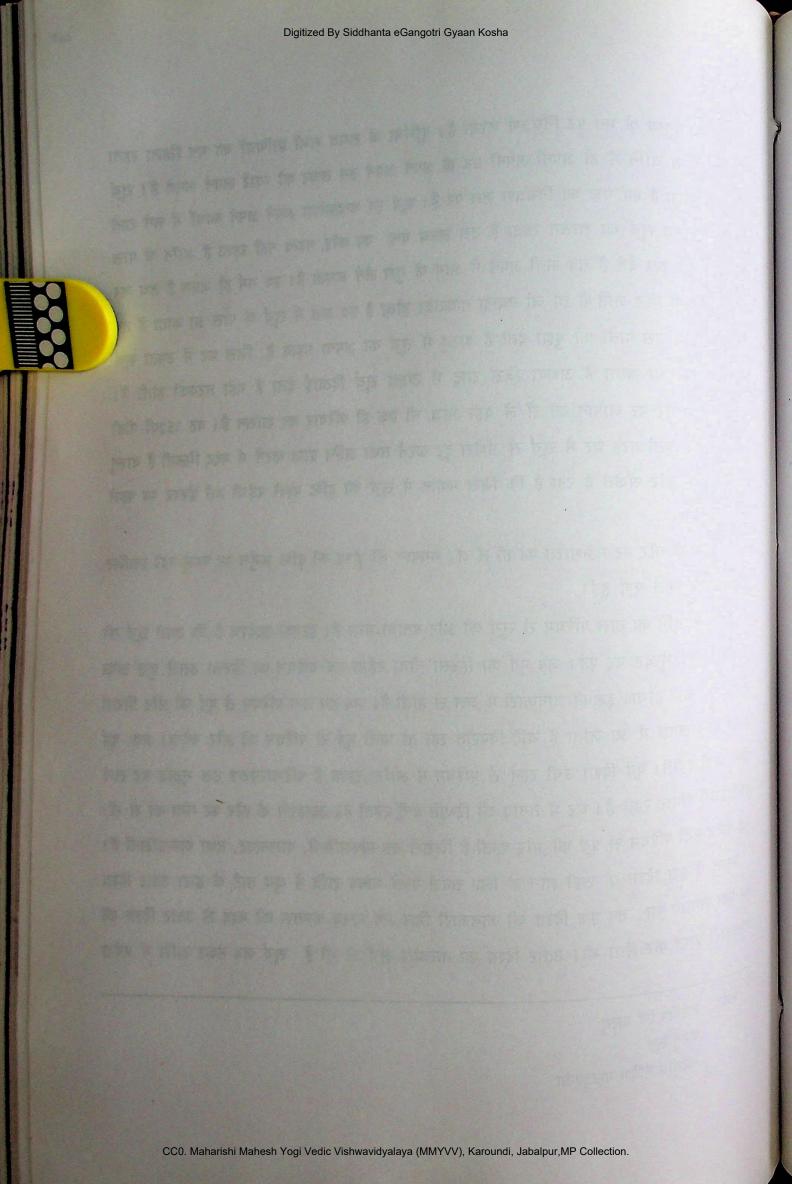
चन्द्रमा, मनुष्य के मन पर नियंत्रण करता है। पूर्णिमा के समय सभी प्राणियों का मन खिला रहता हैं प्राणी जिस योनि में हो अपनी अपनी उम्र के अपने अपने हम सफर को प्यारे लगने लगते हैं। सूर्य आग का गोला है एवं चन्द्र का नियंत्रण जल पर है। सूर्य एवं चन्द्रहमेशा अपने अपने कार्यों में लगे रहते है। जिस सूमय सूर्य का शासन रहता हैं उस समय चन्द्र का कोई महत्व नहीं रहता हैं अग्नि के पास जब पानी को रख देते हैं तब पानी अपने में आग के गुण लेने लगता है। एवं गर्म हो जाता है तथ जब आग एवं पानी मिल जाते हैं तो जो ज्यादा ताकतवर होता है एवं अंत में सूर्य के पास आ जाता हैं तब सूर्य की आग उस पानी को बुझा देती हैं वास्तु में सूर्य का अपना महत्व है, जिस घर में उगता सूर्य जितनी जल्दी आ जाता है अथवा जिस राष्ट्र में उगता सूर्य दिखाई देता हैं वहां तरक्की होती हैं। उदाहरण के तौर पर जापान को लें लें वहां आज भी एक ही परिवार का शासन है। वह 152वीं पीढ़ी के शासक हैं इसी तरह घर में सूर्य से अधेरा दूर करने तथा अग्नि प्राप्त करने में मदद मिलती हैं वास्तु इस बात की ओर संकेते दे रहा है कि जिस मकान में सूर्य की दृष्टि पहले पड़ेगी उसे ईश्वर का पहले प्रश्रय मिलेगा।

उदाहरण के तौर पर महाभारत को ही लें लें, भगवान श्री कृष्ण की दृष्टि अर्जुन पर पहले पड़ी इसलिए उनकी इच्छा पहले पूर्ण हुई।

वास्तु में भूमि का ढाल पश्चिम से सूर्य की ओर बताया गया है। इसका उददेश्य है कि उगते सूर्य की किरणें संपूर्ण भूखंड पर पड़े। जब पूर्व का हिस्सा नीचा रहेगा एवं पश्चिम का हिस्सा उससे कुछ ऊंचा रहेगा तभी यही होगा। इसकी जानकारी में जल से होती है। जब हम जल पश्चिम से पूर्व की ओर गिराते हैं तो ढाल समझ में आ जाता हैं यदि विपरीत रहा तो पानी पूर्व से पश्चिम की ओर बहेगा। अतः पूर्व दिशा उंची रहेगी। पूर्व दिशा उंची रहने से पश्चिम में अंधेरा रहता है परिणास्वरुप उस भूखंड पर रहने वाले प्राणी बीमार रहते हैं। घर में तनाव की स्थिति बनी रहती है। उदाहरण के तौर पर गंगा को ले लें। यह पवित्र नदी पश्चिम से पूर्व की ओर बहती है जिससे यह मोक्दायिनी, पालनहार, तथा पापनाशिनी हैं। वास्तु में इस दिशा के सही ज्ञान के लिए सबसे पहले मानव रात्रि में धुव तारे के द्वारा उत्तर दिशा की पता लगाता था, जब एक दिशा की जानकारी मिल अब मानव कम्पास की मदद से उत्तर दिशा की

जानकारी प्राप्त कर लेता था। उत्तर दिशा का तालमेल सूर्य से भी हैं सूर्य जब मकर राशि में प्रवेश

स्त्रोत : ज्योतिष एवं वास्तु वास्तु सूत्र भारतीय वैदिक वास्तुकला



करता हैं तब उत्तरागण शुरु होता हैं मतलब उजाला बढ़ने लग जाता है। और अंधेरा घटने लगता हैं इसी तरह मकर राशि में जब मंगल आ जाता है तब वह उच्च का हो जाता है। मंगल भूमि का स्वामी हैं मंगल पर नियंत्रण पवन पुत्र हनुमान का है इसी तरह मकर राशि में जल गुरु आता है तो नीच का हो जाता है। मतलब सीताहरण जैसी घटनाएं होती हैं मेष, वृषभ तथा मिथुन में उत्तरागण के रूप में रहता है।

सूर्य जब कर्क राशि में प्रवेश करता हैं तबसे दक्षिणायन शुरु होता हैं जिससे दिन का उजाला घटने लगता हैं और रात्रि बढ़ने लगती है। इस समय प्राणी अपने घर में रहना अधिक पसंद करता हैं। जब मंगल कर्क राशि में आता हैं तब वह नीच का हो जाता हैं। मंगल नीच का होते ही कई प्रकार के गलत कार्यों के लिए प्रेरित करता है। जैसे दंगा फसाद, कत्ल आदि।

जब गुरु कर्क राशि में प्रवेश करता हैं तब वह उच्च का हो जाता हैं हर घर में ईश्वर व अल्लाह के गुणगान होने लगते हैं। आपस में भाईचारा बढ़ने लगता हैं। दक्षिणायण के सूर्य में महिला पक्ष का प्रभाव बढ़ता है। अतः वास्तुशास्त्र, दिशाओं के द्वारा यह जानकारी देना चाहता हैं कि घर पर उस स्थान पर जहां पुरुष अपने परिवार के साथ रहता हैं उक्त स्थान की प्रमुख स्त्री हैं जो प्रमुख होता हैं उसका स्थान ऊंचा होता हैं जैसे मानव का मुंह ऊंचा हैं जो ऊपर की ओर हैं।

दक्षिण दिशा इसलिये ऊंची रखी जानी चाहिये कि घर में मालिकन का स्थान ऊंचा है। मकान की दिशा की अहाते की दीवार उत्तर दिशा से मोटी रखने का कारण यह है कि मकान में महिला का शासन हैं। रामायण में बताया गया है कि पर्णकुटी का दक्षिण दिशा में दरवाजा था जिसकी वजह से सीता का हरण हुआ। दिशा का स्वामी वास्तुशास्त्र के मुताबिक यम हैं एवं ज्योतिष के अनुसार मंगल साहस व पराक्रम का ग्रह हैं इसलिये किसी भी अनिष्ट से बचने के लिये दिशा में पूर्वजों के छायाचित्र लगाए जिसका रुख उत्तर दिशा में हो। ये पूर्वज स्वयं पंचतत्व में विलीन रहकर सब पर निगाह रखते हैं और भ्रष्टाचारी को सजा देते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ज्योतिष एवं वास्तु एक प्रण व दो शरीर हैं इसमें ज्योतिष एवं वास्तु हर पल अपना स्वरुप बदलते रहते हैं अतरु एक दूसरे के बिना किसी एक के बारे में कल्पना अधूरी हो सकती है।

स्त्रोत: सारावली

सूर्य सिद्धांत

लीलावती

आयुनिर्णय के आघार पर

होरो स्कोप — (जन्म पत्रिका या जातक) इसके अंतर्गत जन्म के सही समय के अनुसार किसी भी मनुष्य के जीवन की घटनाओं का मूल्यांकन होता हैं किसी की जन्म कुंडली बनाने के लिये जन्म का सही समय, लिंग, भेद, तिथि, स्थान, दिन जानना आवश्यक है। परंतु पश्चिमी और हिन्दू राशियों में 22 अंश का फर्क हैं अतः कोई भी ग्रह की स्थिति 20 अंश कर्क पर स्थित हैं तो पश्चिमी ज्योतिष के अनुसार 12 या 13 अंश सिंह पर स्थित होगा लेकिन इन दोनों विधियों को मिलाने की आवश्यकता नहीं हैं किंतु किसी एक विधि के अनुसार गणना कर ली जाती है।

हिंदू ज्योतिष सामान्य उद्देश्यों को निर्धारित करने के लिये राशि चक्र और नव मस ही मुख्य रूप से आवश्यक हैं मानव जीवन को 12 राशियों से अवगत कराया जाता हैं जबिक वास्तु (भवन) के लिये ऐसा नहीं है अतः उसके राशि के 12 घर आवश्यक नहीं माने जाते क्योंकि प्रत्येक राशि 30 अंश की होती हैं और वास्तु में भूखंड के आकार के अनुसार इसकी कोण स्थल रहता है और वास्तु घरों का क्षेत्रफल कम ज्यादा होता रहता हैं। भवन की आयु उसके निर्माण समय और भूमि के जन्म के अनुसार निर्धारित होती हैं अतः किसी भवन का आयादि निर्णय स्वास्थ्य और रोग, शिक्षा, विवाह आदि का निर्धारण किसी विशिष्ट समयाविध में कैसा होगा, इसके आधार पर शुभ समय का निर्धारण कर ही शिलान्यास, प्रवेश द्वार लगाना तथ गृह प्रवेश किया जाता है अतः वास्तु निवेश के ये तीन कार्य, सुख, संपत्ति और वैभव प्राप्त करने के अनुकूल समय में करना चाहिये।

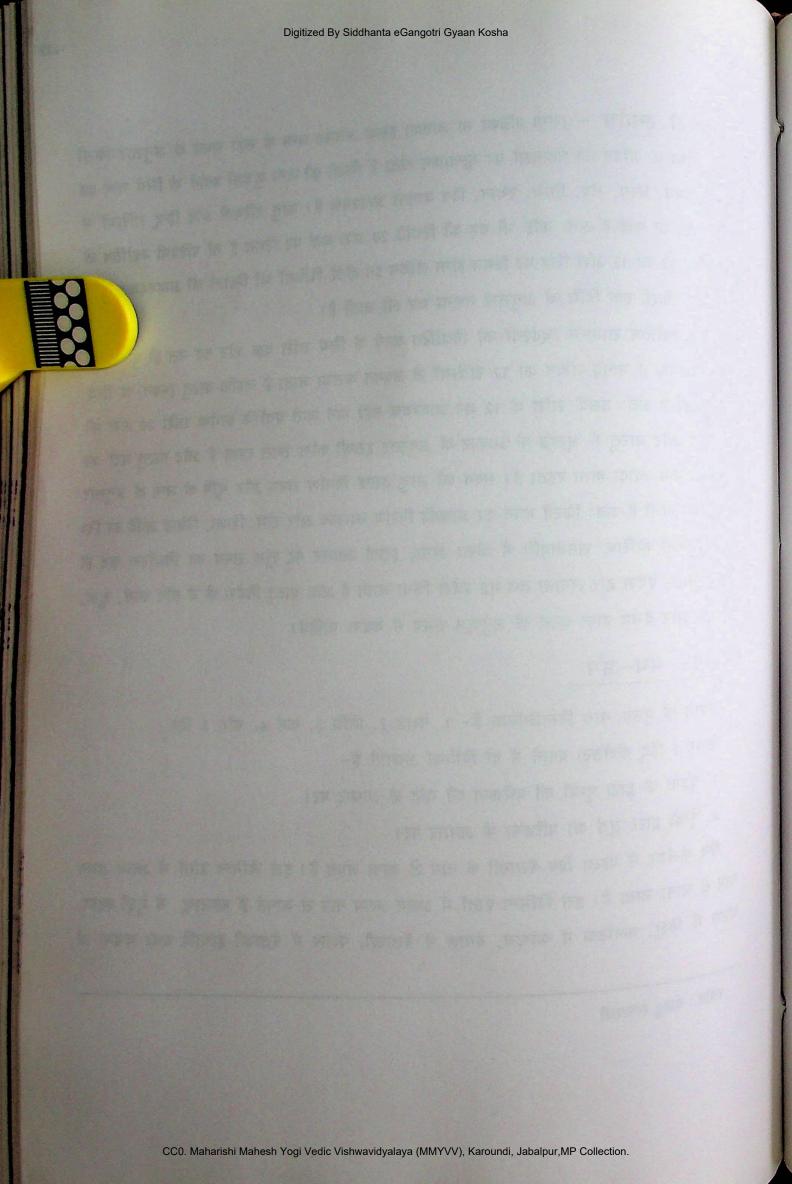
पंचांग- पंच-अंग

पंचांग के मुख्य भाग निम्नलिखित हैं – 1. नक्षत्र 2. तिथि 3. कर्म 4. योग 5 दिन पंचाग (हिंदू कैलेंडर) बनाने में दो विधियां अपनाते हैं –

- 1. चंद्रमा के द्वारा पृथ्वी की परिक्रमा की गति के आधार पर।
- 2. पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा के आधार पर।

हिंदू कैलेंडर में पहला दिन बैसाखी के नाम से जाना जाता हैं। इसे विभिन्न प्रांतों में अलग अलग नाम से जाना जाता है। इसे विभिन्न प्रांतों में अलग अलग नाम से जानते हैं महाराष्ट्र में गुड़ी पड़वा, केरल में विशु, कर्नाटक में कोष्टल, बंगाल में बैसाखी, पंजाब में बैसाखी इत्यादि तथा चन्द्रमा के

स्त्रोत : वास्तु रलावली



अनुसार इसका निर्धारण करने वाले इसे वर्ष का पहला दिन चन्द्रमा, युगथी मानते हैं तथा सूर्य के अनुसार सूर्य मान युगथी कहते हैं।

महिने- महिनों को निम्नलिखित नामों से जाना जाता हैं

1. चैत्र 2. बैसाख 3. जेष्ठ 4. आषाढ़ 5. सावन 6. भाद्रपद 7. कुंवार 8. कार्तिक 9. मृगशिरा (अगहन) 10. पौष 11. माघ 12. फाल्गुन।

मास- प्रत्येक मास को दो भागों में बांटा गया हैं अर्थात 14 दिन व 16 दिन के हिस्सों में जिन्हें निमन नामों से जाना जाता हैं

1. शुक्ल पक्ष 2. कृष्ण पक्ष

शुक्ल पक्ष- चन्द्रमा के निकलने के दिन से (अमावस्या) पूर्ण चन्द्रमा तक (पूर्णिमा तक) कृष्ण पक्ष- इसमें पूर्ण चन्द्र (पूर्णिमा से) पुनः चन्द्रउदय होने तक (अमावस्या तक)

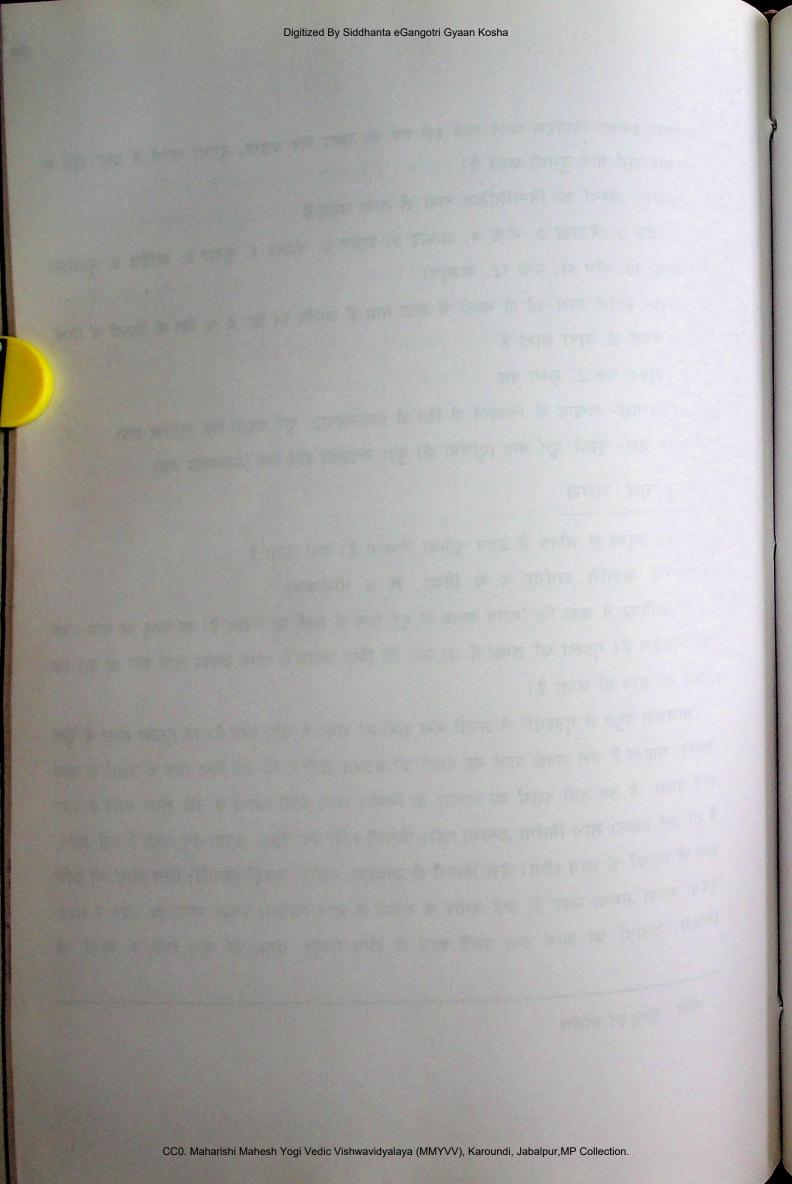
वास्तु एवं भाग्य

भाग्य मनुष्य के जीवन में अहम भूमिका निभाता है। कहा जाता है भाग्यं फलति सर्वदा न च विद्या, न च पौरूषम।

शेक्सिपियर ने कहा कि 'भाग्य मानव के पूर्व जन्म के कर्मी पर निहित है। हर वस्तु पर पांच तत्वों का नियंत्रण है। गृहस्थ को समझ में आ जाए कि किस उद्योग में भाग्य उसका साथ देगा तो उसे एक दिशा का ज्ञान हो जाता है।

आजकल बहुत से गृहस्थों ने अपनी जमा पूंजी को शेयर में लगा रखा है। जो गृहस्थ शेयर में पूंजी लगाना चाहता है उसे सबसे पहले यह देखने की जरूरत होती है कि उसे किस तत्व के पदार्थ से लाभ होने वाला है तब उसी पदार्थ का व्यापार या निर्माण करने वाली कंपनी के यदि शेयर आदि ले लेता है तो उसे उसका लाभ मिलेगा अन्यथा नहीं। जिनकी राशि मेष, सिंह, अथवा धनु आती है उन्हें अग्नि, तत्व के पदार्थों से लाभ होगा। जैसे बिजली के उपकरण, मशीने, लकड़ी इतयादि। जिन लोगों की राशि वृषभ, कन्या अथवा मकर है, उन्हें जमीन के कार्यों से लाभ मिलेगा। उनका भाग्योइय भवन व सड़क निर्माण, खदानों का कार्य तथा खेती कार्य से होगा मिथुन, तुला, एवं कुंभ राशि के लोगों को

स्त्रोत : वास्तु एवं ज्योतिष



भाग्योदय वायु तत्व से होगा। जैसे पंखा, कूलर, स्प्रे, अगरबत्ती इत्र, हवाई जहाज, पतंग व गुब्बारे इत्यादि।

कर्क, वृश्चिक व मीन राशि के व्यक्तियों का भाग्योदय द्रवीय वस्तुओं के निर्माण व व्यापार करने से होगा जैसे कोल्डड्रिंक्स, दूध, घी, तेल, पारा, शराब, आईसक्रीम इत्यादि। जब भी ग्रह जातक के भाग्य में भ्रमण करते हैं तो वे उसका साथ देते हैं। यह जातक पर निर्भर करता है कि वह कितना चाहता है जिन्हें भाग्य का सहयोग मिलता है उन्हें कम मेहनत में अधिक लाभ अर्जित होता है एवं जहां भाग्य का विरोध रहता है उन्हें कदम-कदम पर अपमानित होना पड़ता है।

वास्तु में स्थपित की योग्यता

शास्त्रं कर्म तथा प्रजाशीलं च क्रियान्वितम्। लक्ष्यलक्षण युक्तार्थन्शास्त्रनिष्ठो नरो भवेत्।। ¹

वास्तुकला में स्थपित का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान होता है। समरांडांण सूत्रधार के स्थपित लक्षणम् नामक 44 वें अध्याय में मालवा के प्रसिद्ध शासक भोज परमार ने स्थपित की योग्यता का वर्णन किया हैं। स्थपित या भवन निर्माता की कार्य कुशलता और योग्यता जीवन को व्यवस्थित एवं कलात्मक बनाती हैं स्थपित को शास्त्र का ज्ञाता तथा व्यवहारिक कर्म में कुशल होना चाहिए। वास्तु विषय सम्यक ज्ञान भी अत्यंत आवश्यक है।

यस्तु केवल शास्त्रज्ञः कर्म स्वपरिनिष्ठितः स मुहयति क्रियाकाले दृष्ट्वा भीरू रिवाहम्।। ²

समरांगण सूत्रधार में भवन निर्माण की बारीकियों को बहुत ही सलीके से उभारा गया है। वास्तुकला के वैज्ञानिक कौशल के साथ-साथ वास्तुकला कर्म की सहायक कलापों का ज्ञान भी स्थपित को होना अत्यंत आवश्यक है। ये कर्म 8 प्रकार के हैं -

- (1) आलेख्य (चित्रकला)
- (2) लेप्यजात (लेपकर्म)
- (3) दारूकर्म
- (4) शय्या

स्त्रोत: (1) समरांगण सूत्रधार- 44/2

(2) समरांगण सूत्रधार- 44/8

- (5) यन्त्र एवं चेय (चुनाई)
- (6) पाषाणकला (मूर्ति निर्माण)
- (7) स्वर्णकला

इन गुणों से युक्त स्थपित संसार में सम्मान प्राप्त करता है। प्राचीनकारीगरों को चार कोटियों में विभाजित किया गया था

(स्थपित) यह प्रधान वास्तुशास्त्री होता है जो यज्ञ कार्य के आचार्य के समान भूमिका में होता है। समरागण में प्रासाद निर्माण में स्थपित को कर्ता तथा यजमान को कारक के रूप में परिभाषित किया है। मयमत में स्थपित को विश्वकर्मा बताया गया है वहीं स्थापत्य को शिष्य भी माना गया है स्थपित एवं स्थापत्य का गहरा सम्बन्ध भारतीय स्थापत्य में विशेष रूप से देखा जा सकता है।

- (2) सूत्रग्राही इसे नापजोक करने वाला इंजीनियर कहा जा सकता है। स्थपित के समान ही इसे समस्त विधाओं को ज्ञान होना आवश्यक है। मानसार के अनुसार इसे सूत्रज्ञ सूत्रग्राही होना चाहिए। सूत्रग्राही, तक्षक तथा वर्धिक का गुरू कहा गया है।
- (3) वर्धिक इनका विशेष क्षेत्र चित्रकला होता है। वर्धिक का कार्य भवन कला एवं मूर्तिकला के रेखा चित्रों को बनाना होता है।
- (4) तक्षक इसे आजकल का बढ़ई कहा जा सकता है जो काष्ठ कौशल के लिए प्रसिद्ध होते थे। स्थापति का हिन्दू स्थापत्य में बहुत ही ऊंचा स्थान है।

योग्यताएं

(1) शास्त्र— स्थपित की प्रथम योग्यता शास्त्र ज्ञान है। शास्त्रज्ञान से तात्पर्य स्थापत्य शास्त्र है। स्थापत्य के अलावा स्थपित को अपनी बौद्धिक योग्यता के लिए गणित, ज्योतिष एवं छंद का ज्ञान होना जरूरी है। भवन निर्माण में प्रत्येक अवयव की जानकारी, द्रव्य संयोजन, चेय आदि का पूर्ण ज्ञान जरूरी है। शिरा ज्ञान एवं यन्त्र विधि की भी जानकारी स्थपित को होना चाहिए। वास्तु परंपरा में द्वार, वेध, स्तम्भ वेध तुला वेध, भवन, वेध, आदि वेधों से बचे रहने पर काफी जोर दिया गया हैं यह सब शिराज्ञान से ही सम्भव है।

स्त्रोत:

⁽¹⁾ समरांगण सूत्रधार- 56/303

⁽²⁾ मयमत अध्याय 5, 2

⁽³⁾ समरांगण सूत्रधार 44/3

- (2) कर्मकौशल स्थपित के लिए केवल किताबीय ज्ञान ही नहीं बल्कि कर्मकौशल भी जरूरी है। स्थपित को वास्तु स्थान उसके निवेश, वास्तु क्षेत्र से संबंधित विभिन्न कर्मों में सिद्धहस्त होना चाहिए। इसी प्रकार संधिकर्म संधानकर्म, चेय विधि आदि की क्रिया एवं रेखाज्ञान भी होना चाहिए। समरांगण सूत्रधार में विभिन्न कलाओं से संबंधित विस्तृत उल्लेख मिलता है। 1
- (3) प्रज्ञा— कल्पना शक्ति किसी भी कलाकार की कला को संवारने में सबसे महत्वपूर्ण कारक होती है। कल्पना के बगैर वस्तुकला की उत्कृष्टता हमेशा संदिग्ध रहती है। प्रज्ञावान स्थपित को निर्माण के दौरान अपने शास्त्रीय ज्ञान का ज्यादा लाभ मिलता है।
- (4) शील- बिना शील के कर्म सिद्ध नहीं होता। रोष, लोभ, मोह, राग एवं द्वेष आदि से वशीभूत स्थापित का कर्म सफल नहीं हो सकता। शास्त्रों में स्थापित के शील के महत्व को विस्तार से बताया गया है। वास्तुकला बिना शील के शुभ व उत्कृष्ट नहीं हो सकती है। 2

(ब) वैदिक परम्परा में स्थापत्य-

वास्तु परम्पराओं के संबंध में शास्त्रों में मूलतः दो तरह के उल्लेख मिलते हैं जिन्हें उत्तरी (नागर) और दक्षिणी (द्राविड़) शैली के नाम से जाना जाता है। इन दो शैलियों के अतिरिक्त तीसरी शैली 'वैसर' के नाम से प्रसिद्ध है। समरांगण सूत्रधार में नागर द्रविड़, वेसर की त्रयी के स्थान पर नागर, द्राविड़, बावठ, भूमिज लाट आदि बहुसंख्यक वास्तु शैलियों का जिक्र है परंतु भारतीय वास्तुविद्या में दो ही परम्परायें मुख्य मानी गयी है।

(1) दक्षिणी परम्परा = इस परम्परा के प्रवर्तक आचार्यों में निम्न नाम विशेष हैं - ब्रम्हा, त्वष्टा, मय, मातंग, भृगु, काश्यप, अगस्त्य, शुक्र, पराशर, नारद, भग्नजीत, प्रहलाद, शक्र, बृहस्पति, मानसार। मत्स्य पुराण एवं वृहद संहिता में जिन 25 आचार्यों का उल्लेख किया हैं उनमें जयादातर द्राविड़ परम्परा के प्रवर्तक के माने जाते हैं वहीं कुछ नागर परम्परा के भी प्रवर्तक हैं मत्स्य पुराण की तालिका निम्नलिखित है।

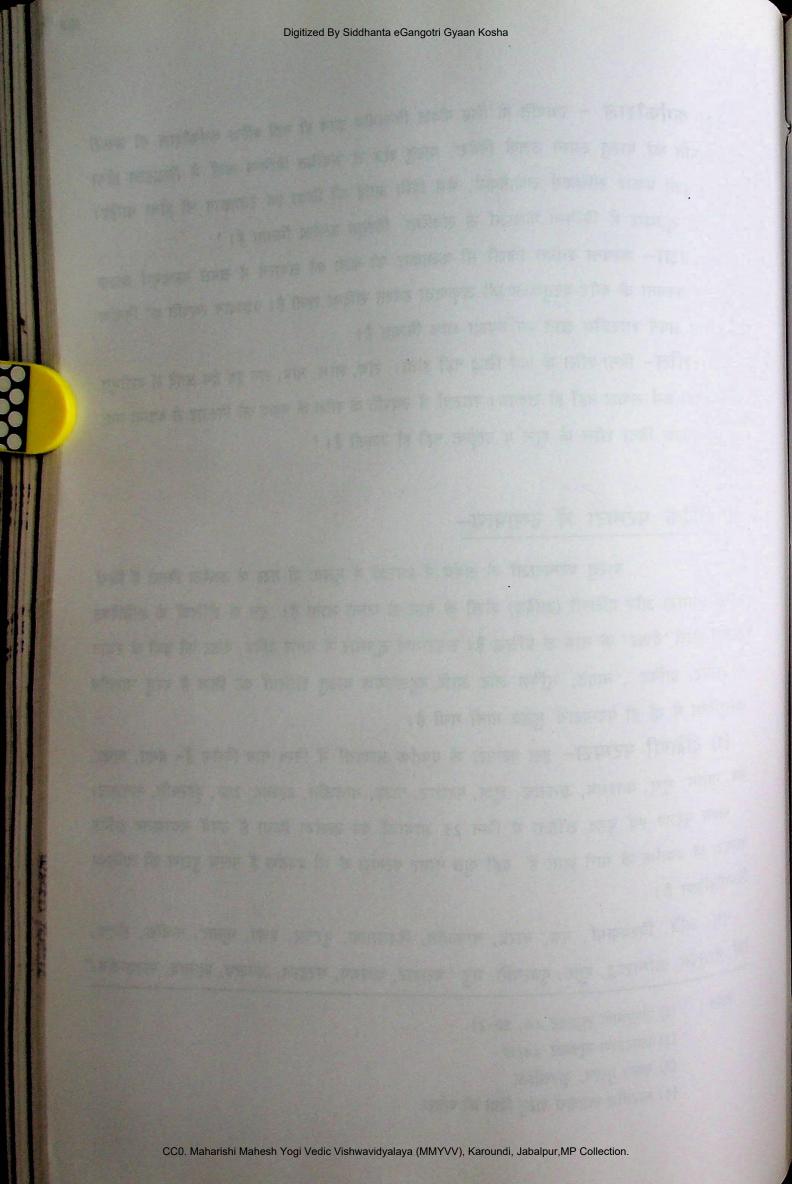
भृगु, अत्रि, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजीत, विशालाक्ष, पुरन्दर, ब्रम्हा, कुमार, नन्दीश, शैनक, गर्ग, वासुदेव, अग्निरुद्ध, शुक्र, वृहस्पति, मनु ³ पराशर, काश्यप, भरद्वाज, अगस्त्य, प्रहलाद, मारकण्डेय। ै

स्त्रोत: (1) समरांगण सूत्रधार 44, 20-21

⁽²⁾ समरांगण सूत्रधार 44/19

⁽³⁾ मत्स्य पुराण, वृहत्संहिता

⁽⁴⁾ भारतीय स्थापत्य वास्तु विद्या की परंपरा



दोनों परम्पराओं में प्रवर्तक आचार्यो द्वारा दो प्रकार का साहित्य सृजन किया गया। डा. आचार्य के अनुसार वास्तुशास्त्रीय एवं अवास्तु शास्त्रीय ग्रन्थों में अलग अलग विवेचन किया गया है। वास्तु शास्त्रीय ग्रन्थों में वास्तुशास्त्र की जानकारी है। वही अवास्तुशास्त्री ग्रन्थों में वेद, वेदांग, ज्योतिष, पुराण, धार्मिक संस्कार, पूजा पद्धति तथा नीति विषयक उल्लेख मिलता है।

दक्षिणी परम्परा के अवास्तु शास्त्रीय ग्रन्थ-

शैवागम, वैष्णव पंचरात्र, अत्रि संहिता, वैखानसागम, तन्त्र ग्रन्थ, तन्त्र, क्षमुच्य, ईशान शिवगुरुदेव पद्धति। आगम साहित्य में वस्तु विद्या का वैज्ञानिक रूप परिभाषित किया गया हैं कामिकागम के 75 पटलों में से 60 पटलों में वास्तु विद्या का वर्णन हैं कहा जाता है कि कामिकागम, सुप्रभेदागम, कर्णागम, वैरवानसा, गम जैसा उल्लेख पुराणों में भी नहीं मिलता।

दक्षिणी परम्परा के वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थ-

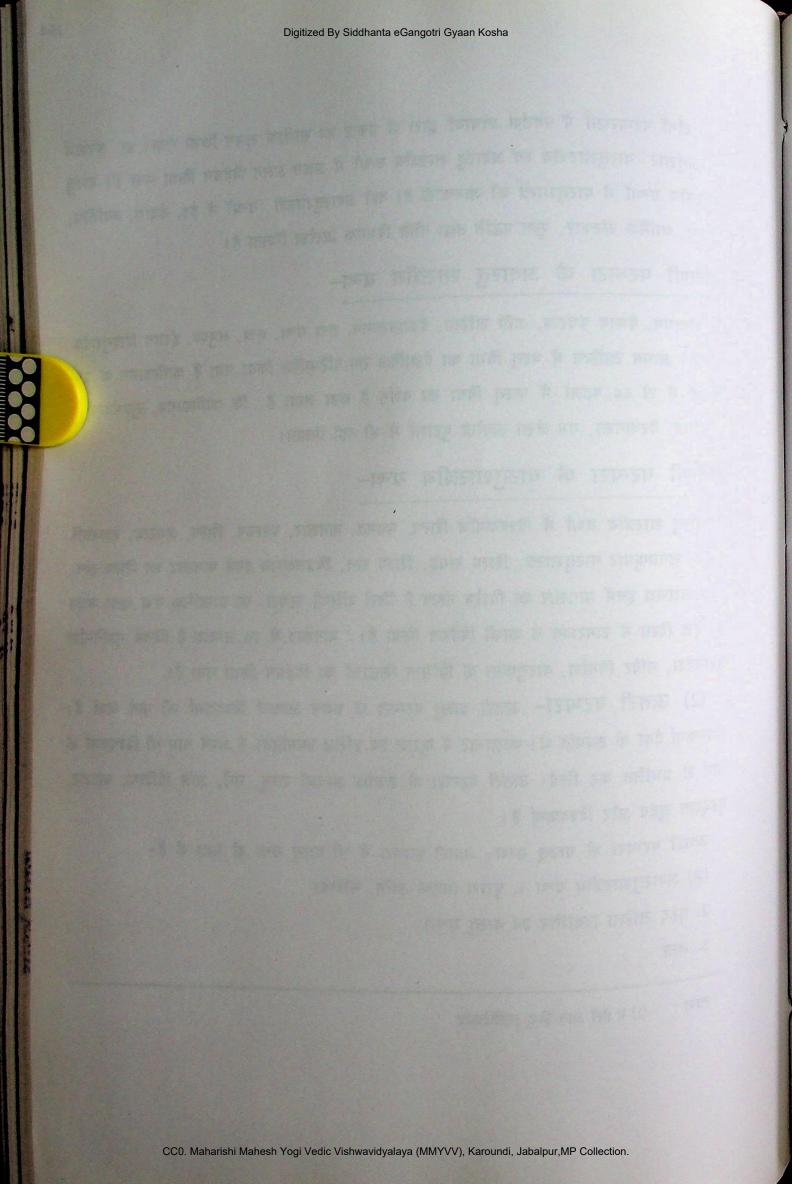
वास्तु शास्त्रीय ग्रंथों में विश्वकर्मीय शिल्प, मयमत, मानसार, काश्यप, शिल्प, अगस्त्य, सकलाि । कार, सनतकुमार वास्तुशास्त्र, शिल्प संग्रह, शिल्प रत्न, चित्रलक्षणय इनमें मानसार का शिल्प रत्न, चित्रलक्षणय इनमें मानसार का विशेष महत्व है जिसे दक्षिणी परंपरा का प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। इस दिशा में रामराज्य ने काफी विवेचन किया है। मानसार में 70 अध्याय है जिनमें गृहनिर्माण पुरनिवेश, मंदिर निर्माण, वास्तुकला के विभिन्न सिद्धांतों का विवेचन किया गया है।

(2) उत्तरी परम्परा – उत्तरी वास्तु परम्परा के प्रथम आचार्य विश्वकर्मा जी माने जाते हैं। विश्वकर्मा देवों के स्थपित थे। कालान्तर में कुशल एवं प्रसिद्ध स्थपितयों ने अपने नाम भी विश्वकर्मा के नाम से प्रचलित कर लिये। उत्तरी परम्परा के प्रवर्तक आचार्य शम्भु, गर्ग, अत्रि विशिष्ट, पराशर, वृहद्दत्त सुदेव और विश्वकर्मा हैं।

उत्तरी परम्परा के वास्तु ग्रन्थ- उत्तरी परम्परा में भी वास्तु ग्रन्थ दो तरह के हैं-

- (अ) अवास्तुशास्त्रीय ग्रन्थ 1. पुराण (मतस्य अग्नि, भविष्य)
- 2. वृहद् संहिता (ज्योतिष एवं वास्तु ग्रन्थ)
- 3. तन्त्र

स्त्रोत : (1) द ऐसे आन हिन्दू आर्किटेक्चर



- 4. हयशीर्ष पंचरात्र
- 5. प्रतिष्ठा धर्मोत्तर पुराण
- 6. प्रतिष्ठा ग्रन्थ (हेमाद्रि तथा रघुनंदन आदि)
- 7. हरि भिक्त विलास

(ब) वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थ-

उत्तरी परम्परा के वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में विश्व कर्मा प्रकाश, अपराजित पृच्छा, समरांगण, सूत्रधार, वास्तु रत्नावली, सूत्रधारमंडल, वास्तु प्रदीप आदि ग्रन्थ आते है।

वैदिक ग्रन्थों में वास्तु— वैदिक कालीन वास्तुकला का वेदों में विस्तृत विवरण मिलता हैं। ऋग्वेद में त्रिधातुशरणम, सहस्त्र द्वार, पुर भवन का स्पष्ट उल्लेख है। वास्तुपुजा, वास्तु भूमि चयन, स्तम्भ पूजा, द्वार पूजा, आदि वास्तु के प्रारंभिक सिद्धांत ऋग्वेद काल में प्रचलित थे। वहीं यर्जुवेद में कर्म का निरुपण है इसमें कर्म और कर्म फल का विषद वर्णन भी किया गया है। सामवेद में भिक्त मार्ग की विभिन्न विधाओं का सविस्तार वर्णन है। अथर्ववेद में वास्तु विद्या एवं कला के विकास का जिक्र मिलता है। गृह निर्माण के संबंध में अर्थववेद के शालासूक्त में द्विपक्षा, चतुष्पक्षा, अष्ट पक्षा तथा दस पक्षा शालाओं का वर्णन है। यह कक्षा भवन आगे के साल भवनों के समान हैं।

ऋग्वेद और वास्तु:— भारतीय साहित्य के सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद में स्थापत्य संबंधी विभिन्न उल्लेख मिलते हैं जिससे पता चलता है कि ईसवी पूर्व द्वितीय सहस्त्राब्दी पहले भी भारतीयों को भवन निर्माण में कुशलता हासिल थी ऋग्वेद के अलावा बाकी वेदों में निर्माण संबंधी जानकारी मिलती हैं लेकिन ऋग्वेद में पूर्व ग्राम, गृह आदि का विस्तृत उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में मान तथा विशष्ठ ' नामक दो ऋषियों की घड़े से उत्पत्ति की कथा बताई गई है। अगस्त्य ऋषि की उत्पत्ति भी घड़े से मानी जाती है। बाद के वास्तुशस्त्रियों ने अगस्त्य को वास्तुविद्या का आचार्य कहा।

ऋग्वेद में कई स्थलों पर वास्तोष्पित नामक देवता का उल्लेख है। एक स्थान पर वास्तोष्पित तथा इन्द्र व त्यष्ट्रा को कुशल कारीगर कहा गया है। ³ भवन निर्माण में अश्ममई तथा आयशी दुर्गों के उल्लेख भी मिलते हैं इससे पता चलता है कि दुर्गों के निर्माण में पत्थर तथा धातु का उपयोग आयों ने किया था।

स्त्रोतः

⁽¹⁾ अथर्ववेद 9-3-21

⁽²⁾ ऋग्वेद 7-33-13

⁽³⁾ संस्कार विधि- महर्षि दयानन्द

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection. ग्राम एवं पुर- ऋग्वेद में ग्राम एवं पुर शब्द का अनेक बार उपयोग हुआ है। ग्राम बसाते समय वायु, जल, प्रकाश आदि को ध्यान में रखा जाता था। वैदिक ग्रामों के चारों ओर लकड़ी की बाढ़ बनाई जाती थी। जैसे जैन बौद्ध स्तूपों में देखने को मिलता है। बाढ़ के चारों ओर एक या अधिक तोरण भी बनाये जाते थे। वैदिक ग्रामों की संरचना एक दूसरे के करीब होती थीकुछ ग्राम दूर दूर बसे होते थे जो एक दूसरे से संबंद्ध थे।

पुर शब्द का प्रयोग ऋग्वेद तथा परवर्ती वैदिक साहित्य में अनेक स्थानों पर मिलता है संस्कृत साहित्य में ये शब्द नगर के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है वैदिक साहित्य में पुरशब्द का प्रयोग दुर्ग, गढ़, प्राकार, के लिये भी हुआ है। ऋग्वेद में पुरों पर घेरा डालने तथा उन्हें विनष्ट करने के उल्लेख मिलते है। इससे प्रतीत होता है कि उस युग में पुरों की संख्या अधिक रही होगी। अनुमान लगाया जाता है कि प्रारंभ में ये पुर मिटटी के बनाये जाते रहे होंगे। पुरों के लिये एक स्थान पर विशेषण के रूप में शारदी शब्द का प्रयोग हुआ है। शरद ऋतु में बाहरी आक्रमणों से पुर की रक्षा हेतु इनका विशेष रूप से उपयोग होता था। पत्थर के बने पुरों (अश्मयी पुर) का भी उल्लेख मिलता है। बलोचिस्तान सिंध तथा पंजाब में हड़प्पा पुर तथा हड़प्पा युगीन कई इमारतें मिली हैं जिनमें पत्थर के प्रयोग का स्पष्ट पता चला है एक पर पशुओं से युक्त गोमतीपुर का भी उल्लेख है।

गृह:— ऋग्वेद में गृह शब्द निवास अथवा घर के लिये प्रयुक्त हुआ है। अर्थववेद तथा ब्राम्हण ग्रन्थों में भी इसी अर्थ में यह शब्द मिलता है। दम, पस्त्या तथा हर्म्य शब्दों का उल्लेख घर तथा पारिवारिक संपत्ति के अर्थ में हुआ है। ऋग्वेद में निवास स्थानों तथा उनके विविध उपांगों के लिये करीब तीस शब्दों का प्रयोग हुआ है। छरदी शब्द का प्रयोग संभवतः मकान की छत के लिये किया गया है। वैदिक कालीन भवन इतने विशाल होते थे कि उसमें संयुक्त परिवार रह सके। कुछ मकान कई तलों के होते थे। भवन से जुड़े पशुओं के बाड़े (गोश्ट) होते थे। घर का एक भाग अग्नि के लिये सुरक्षित रखा जाता था। बड़ी छतों को संभालने के लिये मोटी बिल्लयां लगाई जाती थी। सरपत, कास आदि की पतवार से छाये गये घर आज भी भारत के विभिन्न क्षेत्रों में दिखते हैं।

स्त्रोत: (1, 2) वास्तु सूत्र- नंदिकशोर अग्रवाल पृष्ठ -75-76

अथर्ववेद और वास्तु-

उपिमतां प्रतिमिता मर्थो परिमितांमुद। शालाया विश्ववाराया नद्वानि वि चृतामसि हविर्धानमिन शालं पत्नीनां सदनं सदः सदों देवानामसि देवि शाले

अथर्ववेद में शाला कर्मविधि के अनेक प्रमाण ¹ समाहित है। महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थ संस्कार विधि में कहा हैं कि मनुष्यों के रहने योग्य जो कोई भी घर बनावे तो वह वास्तु के प्रतिमानों को पूर्ण करने वाला हो। भवन शाला गृह चारों ओर से बराबर हो चारों दिशाओं से वायु का आवागमन हो, निर्माण दृढ़ एवं सुन्दर हो। कुशल शिल्पियों द्वारा निर्मित किया गया शाला में यज्ञ स्थान, स्त्रियों, पुरुषों के रहने विद्वानों के बैठने तथा सभा आदि का स्थान पृथक-पृथक वास्त अनुसार हो।

अंतराधाग्चां पृथ्वीं च यद्वच्यचस्तेन शालां प्रतिं गृहवामि त इमाम्। यदन्तरिक्षां रजसो विमानं तत्कृवे ऽहमुदरं शेविधम्यः। तेन शालां प्रतिं ग्रह्ममि तस्मै।। उर्जस्वती पयस्वती पृथिव्यां निर्मिता मिता। विश्वान्नं विभुती शाले ग्राह्ममि हिसीः प्रतिगृह्मातः।। ²

शाला भवन में चारों दिशाओं में प्रकाश व खुला वातावरण होना चाहिये। आकाश (अन्तरिक्ष) और शाला के मान परिणाम के अनुसार ऊंची छत होनी चाहिये। जो शाला बहुत बल और आरोग्य को बढ़ाने वाली पराक्रम को बढ़ाने वाली धन धान्य से परिप्रित नियमित हुई हो उस शाला में निवास करने वाले रोग आदि से पीड़ित न हो। ऐसा निर्माण करना चाहिये।

ब्रहणां शालां निर्मितां, कविभिर्निमितो मिताम्। इंद्राग्नि रक्षातां शालाम मृतो सोमंय सदः।। 3

शाला का प्रारुप नाशरहित, वायु और अग्नि से सुरक्षित उत्तम वास्तु शिल्पियों ने जिसे प्रमाणयुक्त अर्थात् माप में ठीक जैसी चाहिये वैसी बनाई हुई शाला चारों वेदों के जानने वाले विद्वान ब्राह्माणों को सुख देने वाली सब ऋतुओं में सुख देने वाली, उसी अनुसार बनाई गई शाला में

स्त्रोत : (1) संस्कार विधि- महर्षि दयानन्द

⁽२ व ३) वास्तु सूत्र- नंदिकशोर अग्रवाल

वास करने वालों की सब भांति रक्षा होती है अर्थात् चारों तरफ से शुद्ध वायु शाला में प्रवेश करके उस शाला में व्याप्त अशुद्ध वायु को निकालती रहे, जिसमें सुगंध युक्त घृत का होम किया जाये तो उस हवन से प्रकट हुई अग्नि उस शाला में व्याप्त दुर्गंध को निकाल सुगंध की स्थापना करे। वहीं शाला ऐश्वर्य, आरोग्य एवं सर्वदा सुखदायक, निवास करने के लिये उत्तम शाला है एवं इसी प्रकार निर्मित शाला को निवास के लिये ग्रहण करें।

यां द्विपक्षा चतुष्यक्षा षट्पक्षा या विमीयतें। अष्टापक्षा दश पक्षां शालां मानस्य पत्नीमग्निर्गर्भ इवाशये।। ¹

जो दो पक्ष अर्थात् मध्य में एक और पूर्व पश्चिम में एक-एक शालायुक्त पुर अथवा चतुस्पक्षा अर्थात् जिसके पूर्व, पश्चिम उत्तर, दक्षिण में एक शाला और उनके मध्य में पांचर्वी एक बड़ी शाला अथवा षटपथा अर्थात् एक-एक बीच में बड़ी शाला और दो-दो पूर्व पश्चिम तथा एक एक उत्तर दक्षिण में शाला हो अथवा अष्टापक्ष अर्थात् चारों ओर दो-दो शाला और उनके बीच में एक नवमी शाला हो अथवा दशपक्षम् अर्थात् जिसके मध्य में दो शाला ओर उनकी चारों दिशाओं में दो-दो शाला हो तथा माप परिणाम में पूर्णतया उत्तम बनाई गई हो ऐसी शाला श्रेष्ठशाला पत्नी को प्राप्त होकर जिसमें अग्निमय आर्त्तव और वीर्य गर्भरूप होकर गर्भाश्य में उहरता है ऐसी शाला के द्वार दो-दो हाथ पर सीध व बराबर हों और जिसके चारों ओर की शालाओं का परिणाम तीन-तीन गज और मध्य की शालाओं का छ:-छः गज से परिणाम से न्यून न हो और चार चार गज चारों दिशाओं की ओर आठ-आठ गज मध्य की शालाओं का परिणाम हो अथवा मध्य की शालाओं का दस दस गज अर्थात् बीस-बीस के विस्तार से अधिक न हो, ऐसी सर्वोत्तम शाला का निर्माण कर गृहस्थों को रहना चाहिये। यदि वह सभा का स्थान हो तो बाहर की ओर द्वारों में चारों तरफ कपाट और मध्य में गोल गोल स्तंभ बनाकर चारों तरफ खुला बनाना चाहिये जिससे दरवाजे त्योलने पर चारों दिशाओं से वायु भीतर प्रवेश कर सके और चारों ओर से वायु प्रवेश करने के लिये खुला स्थान, वृक्ष, फूल, तालाब-पुष्पकरणी कुंड आदि होना चाहिये। इस तरह से निर्मित गृह आवास एवं सभागार आदि ही उत्तम श्रेणी के होते हैं।

प्रचीता त्वा प्रती चीनः शो प्रैम्यार्हिसतीम्। अग्निर्धरापंश्च ऋुदुतस्यं प्रथमा द्वाः।। ²

स्त्रोत : 1 व 2 वास्तु सूत्र, अग्रवाल पृष्ठ- 77-78

जो शालागृह (भवन) पूर्वाभिमुख हो तथा जो गृह पश्चिम द्वारयुक्त हो तथा हिंसादि दोष रहित हो अर्थात् पश्चिम द्वार के सम्मुख पूर्व द्वार जिसके मध्यम में अग्नि का घर (पाकशाला-यज्ञशाला आदि) एवं जल का स्थान एवं ध्यान-पूजा अर्चन का स्थान का प्रथम द्वार हो, मैं उस शाला में निवास करने वालों को प्राप्त होता हूं।

मा नः पाशुं प्रतिं मुचो गुरुर्मारो लघुर्भव। बधूमिवं स्वा शालेयत्र कार्म भरामसि।। ¹

है शिल्पकारों, हमारी शाला आपके द्वारा ऐसी निर्मित हो कि वह अपने बंधन (नींव) को कभी न छोड़े जिसमें गुरुभार (बड़ा भार) छोटा होवे ऐसी शाला आप बनावें। उस शाला को, उस गृह भवन को हमारी जैसी कामना हो वहां ऐसी हम लोग उस शाला को स्त्री के समान अपने लिए सुखदायक के रूप में स्वीकार करें वैसे ही है शिल्पकारों, तुम भी उसे ग्रहण करो अर्थात् शाला में हमें वे सारे सुख मिले जो हम चाहते हैं ऐसी ही शाला है शिल्पकारों, आप लोग हमारे परिवार के लिये निर्माण करों।।

यजुर्वेदं और वास्तु -

यजुर्वेद में आवास की आवश्यकता और निर्माण विधियों का उल्लेख मिलता है।

पृथवयाः नाभौ अन्तरिक्षम् उरु पृथिव्याम् दुय्र्याः दूँ हन्ताम् सादयामि। '

पृथ्वी पर भूखंड जो चारों तरफ से खुला हो चारों तरफ प्रवेश द्वार हो, ऐसा भवन निर्मित करना

चाहिये। सुरक्षित दृढ़ दीवारों वाला वास्तु भवन होना चाहिये सूर्य देव जिससे अग्नि स्वरुप अपनी प्रखर

किरणों से आवास की रक्षा करे। वेद में यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि जल, वायु, पृथ्वी, अग्नि और

सूर्य को ध्यान में रखकर निर्माण कराये जायें। वायु हर समय आबाद रुप से भवन में आवागमन करे,

सूर्य की प्रखर किरणें निरंतर आवास को शक्ति दें। रात्रि में चन्द्र की किरणें आवास गृह में प्रवेश कर

अमृत वर्षा करें तथा गृह स्वामी यज्ञ करता हुआ अपने आपको सुरक्षित पा सके। वेद में वास भवनों के

नियमों के बारे में भी उल्लेख मिलता है। भवन की नींव 'पृथुवध्नः' वृहद एवं स्थूल होनी चाहिये। जिससे

आवास की आयु अधिक हो एवं गृहस्थ की आने वाली संतित भी उसका उपभोग कर सके। गृह सिर्फ

मनुष्य के आवास स्थल को ही नहीं अपितु उद्योग धंधे कल कारखाने लगाने वाले स्थलों को भी माना

जाता है।

स्त्रोत : (1) अ

⁽¹⁾ अथर्ववेद 9, 2-3

⁽²⁾ वास्तु सूत्र

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha THE PER PARTY TO SEE THE PARTY OF THE PERSON CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.

आवास गृह का निर्माण पूर्ण हो जाने के बाद वर्ष दर वर्ष पवित्र यज्ञ से उसे सिंचित करना चाहिये। अगर भवन में कोई उद्योग या कारखाना स्थापित किया जाये तो उसमें भी अग्नि, आयु, और इन्द्र को स्थापित करना चाहिये। सूर्य एवं वायु की पवित्रता से परिपूर्ण उद्योग पूर्ण रूप से सफल होकर फलता फूलता है।

आवास गृह के उपर की छत ऐसी होनी चाहिये जिससे सूर्य की किरणें बगैर बाधा के प्रवेश कर सकें। प्रकाश का आगमन शुद्धि कारक एवं बल वैभव को विकसित करने वाला होता हैं। भूमि पर रहने वाले मानव के लिये सर्वप्रथम आवश्यक है एक भूखंड जो स्थापत्य के सिद्धांतों के अनुरुप हो।

यज्वेंद में भवन निर्माण संबंधी निर्देश अन्य स्थानों पर मिलते हैं।

पृथिव्यमुर्वन्तरिक्षामन्वेमि। पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्याऽ उपस्थेऽग्ने हव्यरक्षा।

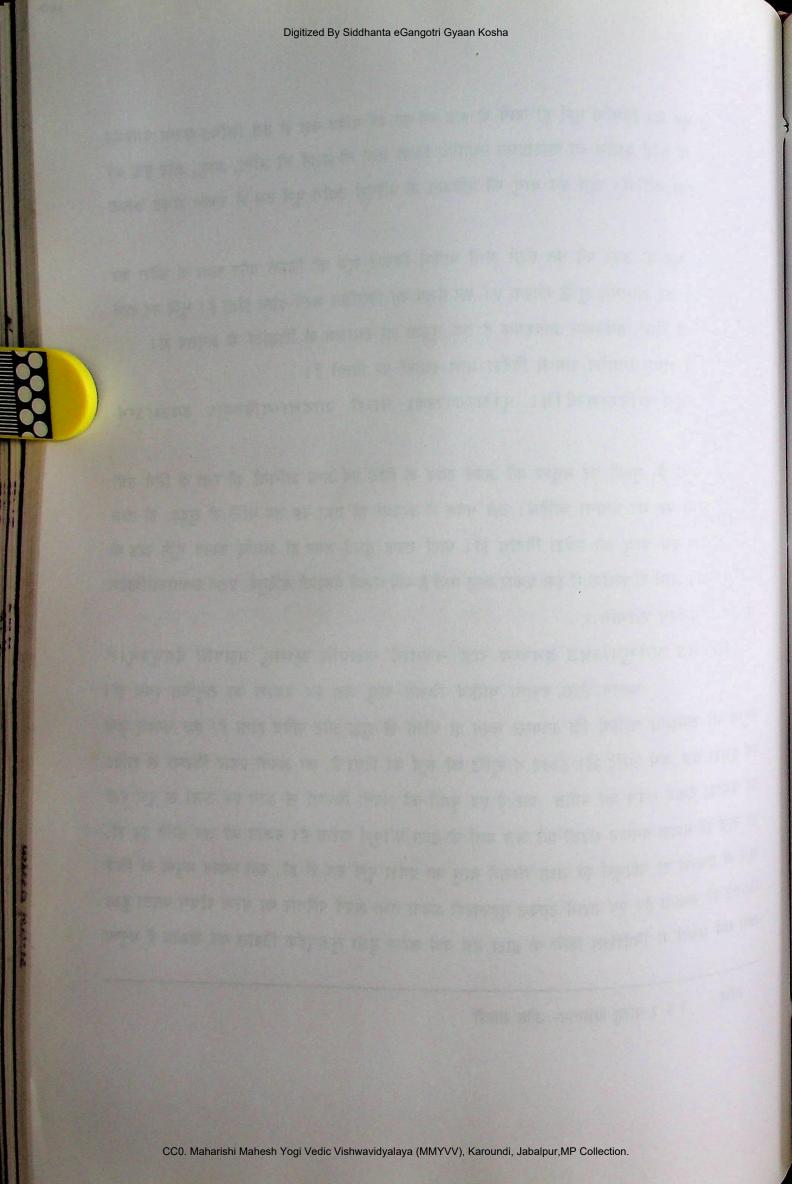
इसका अर्थ है, पृथ्वी पर मनुष्य को अपने स्वयं के लिये एवं अन्य प्राणियों की रक्षा के लिये उंची उठी हुई भूमि पर घर बनाना चाहिये। उस भवन में दरवाजे हों तथा वह सब भांति से सुदृढ़ हो तथा उसमें प्रकाश एवं वायु का प्रवेश निर्वाध हो। चारों तरफ खाली जगह हो अर्थात् मकान भूमि खंड के बीचोबीच हो। आगे के श्लोक में इस प्रकार कहा गया है पवित्रोस्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पनार्थ्या स्थित्रेण सूय्र्यस्य रिमिभिः।

देवीरापोऽ अग्रेगुवोऽप्रड इममध्य यज्ञं नयताग्रे यज्ञपति सुंधातुं यज्ञपतिं देवयुवम्।।²

मकान ऐसा बनाना चाहिये जिसमें वायु जल एवं प्रकाश का समुचित प्रबंध हो।

मनुष्य को समझना चाहिये कि आवास भवन दो चीजों से शुद्ध और पवित्र होता है। एक भगवत् कृपा एवं दूसरा यज्ञ कर्म आदि से। ईश्वर ने सृष्टि को सूर्य को दिया है, जो अपनी प्रस्तर किरणों से शक्ति एवं प्रकाश देकर भवन को पवित्र कर दे एवं पृथ्वी को अपनी किरणों से अन्न एवं ऊर्जा से पूर्ण रखे एवं सूर्य ही बादल बनकर धरती को जल वर्षा के द्वारा परिपूर्ण करता है। मकान जो सब भांति दृढ़ हो, सूर्य के प्रकाश से परिपूर्ण हो तथा जिसमें वायु का प्रवेश पूर्ण रूप से हो, वही मकान मनुष्य के लिये हितकर हो सकता है। एवं उसमें रहकर गृहस्वामी अपना तथा अपने परिवार का भरण पोषण करता हुआ तथा धर्म ग्रन्थों में निर्देशित विधि के द्वारा यज्ञ कर्म करता हुआ सुखपूर्वक निवास कर सकता है मनुष्य

स्त्रोत: 1 व 2 वास्तु विज्ञानम- उमेश शास्त्री

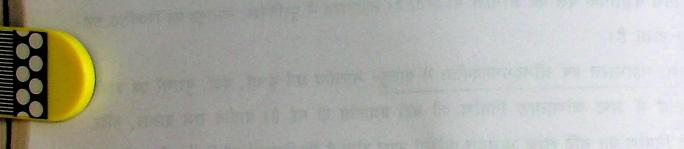


के लिये पृथ्वी पर रहकर निर्वाह करने के लिये सब भांति सुरुचिपूर्ण गृह होना आवश्यक है, उस गृह में रहकर वह धन-ऐश्वर्य से परिपूर्ण होकर सुख शांति एवं समृद्धि को प्राप्त कर आनंदपूर्वक रह सकता है।

महाकाच्यों में वास्तु— महाकाव्यकालीन ग्रन्थों रामायण, महाभारत में वास्तु विद्या के सिद्धांतों के अनेक उल्लेख मिलते हैं। उत्तरापथ और दक्षिणापथ वास्तु विद्या के सूत्रों के दर्शन इन महाकाव्यों के दर्शन इन सूत्रों में विद्यमान है। रामायण में स्थपितयों के भेद प्रासाद, सौध, विमान, सभा आदि में कला के साथ साथ वैज्ञानिक पक्ष का आभास भी होता है। महाभारत में पुरनिवेश, सभागृह का विकसित रुप प्रतिबिंबित होता है।

रामायण, महाभारत एवं श्रीमद्भगवदगीता में वास्तु- भारतीय धर्म ग्रन्थों, वेदों, पुराणों एवं प्राचीन निर्माण कार्य में अष्ट कोणात्मक निर्माण को बड़ी प्रधानता दी गई है। प्राचीन राज प्रासाद, मंदिर, स्मारक के निर्माण का यदि सूक्ष्म अध्ययन करें तो स्पष्ट होता है कि दिशाओं को निर्माण में काफी महत्व दिया गया है। राम की राजधानी अयोध्या का निर्माण अष्ट कोणात्मक शैली से हुआ है। वाल्मिकी रामायण में, रामावतार के समय जो अयोध्या नगरी का वर्णन आता है उसमें भवन आठ मंजिले थे देवालय भवन आदि इसी प्राचीन शैली से निर्मित थे। आठों दिशाओं के विशिष्ट नाम निर्धारित हैं आठों में दिग्पाल हैं जो अपनी अपनी दिशाओं की रक्षा करते हैं। नींव वास्तु देवता के निवास पर स्थापित है। इसलिये सर्वप्रथम वास्त् पूजा अनिवार्य कही गई है। गुम्बज आकाश की ओर उठा हुआ होता है। बालिमकी रामायण में अयोध्या नगरी के वर्णन में बताया गया है कि यह नगरी 11 योजन करीब 50 मील एवं 131-2 मील चौड़ी थी। अब ऐसे निर्माण मंदिर देवालयों, और मठों तक ही सीमित रह गये है। रामायण के विषय में सिविक्स एंड नेशनल आइडियल्स नामक पुस्तक में सुश्री निवेदिता लिखती हैं कि वालिमकी के काव्य में कवि अपनी अतिप्रिय अयोध्या नगरी का प्रशंसनीय वर्णन करते हैं। कहीं रामायण की रचना का कारण यहीं तो नहीं है। वालिमकी अयोध्या तक ही सीमित नहीं हैं अपितु लंका का वर्णन भी उन्होंने काफी वृहत्तर किया हैं रामायण में तत्कालीन नागरिक सभ्यता एवं निर्माण कला का पूर्ण विकास पता चलता है। डा. आचार्य के शब्दों में अयोध्या की नगर निवेश रूप रेखा मानसारीय तथा अन्य शिल्प शास्त्रीय ग्रंथों में प्रतिपादित नगर निवेश से हुबहू मिलती है।

स्त्रोत : वैदिक संस्कृति- थपलियाल वास्तु सूत्र - अग्रवाल



रामायण और महाभारत में वर्णित नगर निवेश के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि वहां राजा राजकुमारों, प्रधान आमात्यों, पुरोहितों तथा सेना नायकों के महल निर्मित होते थे। साथ ही साधारण आवास भवन भी बनाये जाते थे। विभिन्न सभागृह, व्यवसाय विधियां भी विद्यमान थी। महाभारत काल में वास्तुकला और भी ज्यादा उन्नत थी। श्रीकृष्ण की राजधानी द्वारिका में अनेक बुर्जों, गुम्बजों वाले भवन का वर्णन मिलता है। महाभारत का महायुद्ध द्रौपदी के हंसने के कारण हुआ था। द्रौपदी क्यों हंसी थी? इसका उत्तर वास्तु शास्त्र से मिल सकता है। इन्द्र प्रस्थ का निर्माण इतना विचित्र था कि अंदाज करना मुश्किल होता था कि कहा जल है कहा फर्श। महाभारत में मया सुर द्वारा किये गये सभा गृह के निर्माण का उल्लेख है जो उसने 14 माह में पूर्ण किया था। इसे वास्तु का उदाहरण माना जा सकता है। नंदिका आश्रम का उल्लेख भी महाभारतमें आता है। किले के निर्माण में काफी उच्च वास्तुकला महाभारत में देखने को मिलती है। किलों के 6 प्रकार का वर्णन भी उल्लेखित है। जल दुर्ग, धुन्ध दुर्ग, गिरी दुर्ग, मिह दुर्ग, फौजी किला तथा वन दुर्ग है।यज्ञ शालाओं और सभागृह का वर्णन भी महाभारत में जगह—जगह मिलता है। श्रीमद्भगवतगीता में वास्तु सिद्धांतों का जिक्र आता है। दिशाओं के अनुरुप निर्माण और प्रकृति के अनुरुप रहन, सहन के वचन गीता में मिलते है।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च। अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।। अपरेयमित स्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि में पराम्। जीवभूतां महावाही ययेदं धार्यते जगतम्।। '

पृथ्वी, जल, तेज वायु और आकाश ये पंच महाभूत और मन, बुद्धि और अहंकार ये आठ प्रकार के भेदों वाली मेरी प्रकृति है। जिसे अपरा प्रकृति कहते हैं। हे अर्जुन, इस अपरा प्रकृति से भिन्न मेरी जीवरुपा 'परा' प्रकृति को भी जान, जिस पर प्रकृति के द्वारा मैं इस जगत को धारण करता हूं।

परम ब्रवत परमात्मा सबके कारण हैं – वे पंच भूतों की प्रकृति को लेकर सृष्टि की रचना करते हैं और पंच भूतों को लेकर जहां एक तरफ सृष्टि की रचना करते हैं वहां 'परा प्रकृति' के द्वारा वे जीव की रचना करते हैं, जीव जो उस ब्रक्त का अंश है और उस ब्रक्त की परा प्रकृति है।

स्त्रोत: (1) भारतीय स्थापत्य

''प्रकृति प्रभु ही का एक ही स्वभाव है एवं जीव ईश्वर का अंश है दोनों ही ईश्वर के द्वारा निर्मित हैं। जब जीव पृथ्वी पर आता है ईश्वर के अंश के रूप में तो उसे ईश्वर के द्वारा निर्मित प्रकृति यानी पृथ्वी पर ही आना होता है।''

'इदम्' पद से शरीर और संसार दोनों को समझना चाहिये क्यों कि शरीर और संसार अलग-अलग नहीं हैं। जीव और संसार एक ही ईश्वर द्वारा निर्मित है। सृष्टि यानी संसार- जीव का संसार है पृथ्वी, सचेतन जीव को ईश्वर ने रहने को पृथ्वी दी है, अब उस जीव को प्रभु के साथ अपना संपर्क बनाए रखते हुये इस पृथ्वी पर निवास करना है। संपूर्ण पृथ्वी एक विशाल भूखंड, जलखंड एवं आकाशखंड है, मनुष्य को प्रभुप्रदत्त भूखंड पर प्रभु के बनाए विधि विधान से अपना जीवन जीना है पृथ्वी पर वह भवन निर्माण करता है आवास के लिये व्यवसाय एवं वाणिज्य के लिये, उद्योग धंधों, यज्ञ देवालय आदि के निर्माण करता है, यह निर्माण मनुष्य के कर्म का कर्तव्य का क्षेत्र है, यह उसे करना ही है, फल की आशा से नहीं क्यों कि कर्म फल तो पहले निर्धारित हुआ है, जो कर्तव्य है वही शास्त्रोक्त विधि से करना है- फल ईश्वर स्वयं देंगे।

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विस्जामि पुनः पुनः भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्।। ¹

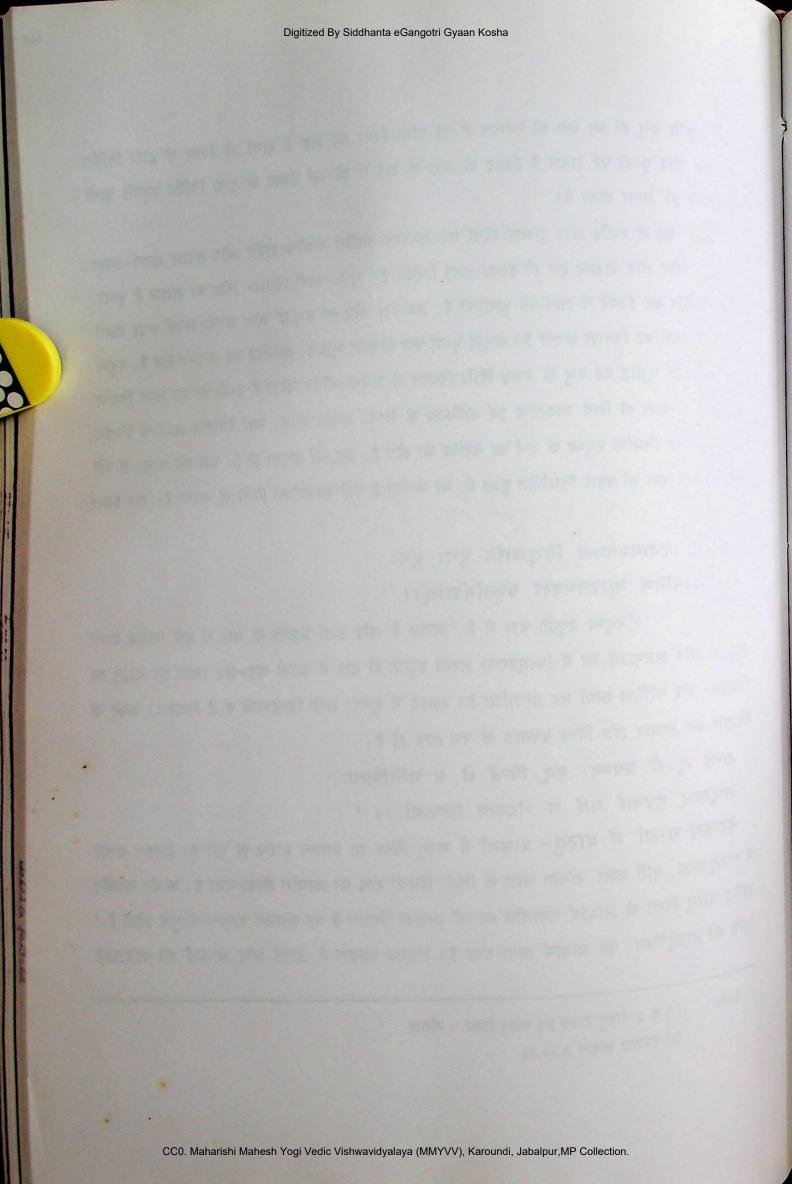
मनुष्य प्रकृति वश में है, परतंत्र है और इसी प्रकृति के वश में हुये परतंत्र प्राणी समुदाय जीव आत्माओं का में (परम्ब्रक्त) अपनी प्रकृति के वश में करके बार-बार रचता हूं। वास्तु का सिद्धांत- पंच भौतिक तत्वों पर आधारित है। ब्रह्मांडे ये गुणाः संति पिण्डेष्वपि च ते स्थिताः। वास्तु के सिद्धांत का आधार अंड पिण्ड ब्रक्तांड के पंच तत्व ही हैं।

अण्डे तु ये प्रपञ्चः स्यू पिण्डे ते च प्रतिष्ठिताः लघुत्वम् गुरुतां चर्ते न भेदस्त्व पिण्डयोः।। ²

ब्राम्हण ग्रन्थों में वास्तु – ब्राम्हणों में वास्तु विद्या का प्रचलन प्रारंभ से रहा है। ब्राम्हण ग्रन्थों में वास्तु कला, मूर्ति कला, संगीत कला के लिये 'शिल्प' शब्द का उपयोग किया गया है। ऋग्वेद कालीन द्राविड़ वास्तु विद्या के आचार्य नग्नजीत का जो उल्लेख मिलता है वह शतपथ ब्राम्हण में पुष्ट होता हैं 3 नारद को वास्तुविद्या का आचार्य माना गया है। शतपथ ब्राम्हण में आर्यों और अनार्यों की परंपराओं

स्त्रोत: (1) व 2 वास्तु शास्त्र एवं वास्तु शिल्प - गोयल

⁽³⁾ शतपथ ब्राम्हण 8,14,10



के उल्लेख में वास्तुविद्या के संक्त मिलते हैं वैदिक ग्रामों की संरचना किस तरह होती है और ग्राम एक दूसरे के निकट किस तरह बनाए जाते थे, इसका उल्लेख भी शतपथ ब्राम्हण में मिलताा है। 1

सूत्रकालीन वास्तु— वास्तुविद्या के प्रारंभिक स्वरुप का विकास सूत्रकाल से प्रारंभ होता है। इस काल में भारतीय विद्या का स्वरुप अपेक्षाकृत स्थिर हो चला था। गृह सूत्रों को देखने से लगता है कि वास्तु कर्म, वास्तु मंगल, वास्तु होम, वास्तु परीक्षा, भूमि चयन, द्वार एवं स्तंभ नियम, पौधा रोपण, दारु आहरण, पदविन्यास, वास्तु विद्या तथा ज्योतिष वास्तु काल आदि वास्तु विद्या के सिद्धांत आश्वलायन, गोभिल, खादिर, शांखायन, पारस्कर, हिरण्य केशी, गृह सूत्रों से प्राप्त होते हैं, शुल्व सूत्रों का (कल्प सूत्रों में परिगणित है) वेदी निर्माण बड़ा ही पारिभाषिक वैज्ञानिक एवं रोचक है। बड़े बड़े यज्ञों में वेदी निर्माण वास्तु शास्त्रीय सिद्धांत पर किये जाते थे। वेदी निर्माण के ये सिद्धांत आगे जाकर प्रासाद निर्माण के सिद्धांत बने।

बौद्ध कालीन वास्तु: — बौद्ध साहित्य में वास्तु विद्या की सुंदर विधा की झलक मिलती है। स्वयं भगवान बुद्ध के उद्देश्यों में वास्तु विद्या के प्रवचन है। बौद्ध कालीन भारत में वास्तु विद्या के सिद्धांतों का पर्याप्त विकास हो चुका था। वास्तु निर्माण संबंधी विधान दारु चयन, भूमि चयन आदि के निर्देश मिलते हैं भवनों का वर्गीकरण भी बौद्ध कालीन वास्तु सिद्धांतों में देखने मिलता है। बौद्ध स्तुपों में वैदिक सिद्धांतों पर आधारित निर्माण इसके प्रमाण माने जा सकते हैं।

महातमा बुद्ध के समय भारत में राज गृह, साकेत, वाराणसी, कौसाम्बी, मथुरा, मिथिला, वैशाली, आदि विभिन्न नगरों के संकेतों से तत्कालीन नगर निवेश के विकास तथा भारतीय नगरों की प्राचीनता का आभास होता है। बुद्ध के समय निर्माण काफी समृद्ध स्थिति में पहुंच गया था। उतुंग भित्तियों, परिखाओं एवं प्राकारों के वर्णन से जो निष्कर्ष निकलता है उससे लगता है कि तब बड़े बड़े नगरों का निर्माण हो चुका था।²

महागोविन्द नामक एक वास्तु विद् ने साढ़े चार मील की परिधि में गिरिव्रज नाम का किला बनवाया था। समकालीन राजा बिम्बसार ने राजगृह नगर का निवेश किया था। प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ दिग्ध निकाय के अन्सार

स्त्रोत :

⁽¹⁾ शतपथ ब्राम्हण, 12.2.4.2

⁽²⁾ बुद्धिष्ट इंडिया, राईस, डेविड्स पृष्ठ- 82

दन्तपुरं कालिंगानामस्सकानां च पोतनम्।
महिस्मती अवन्तीनाम् सोवीरानां च।।
मिथिला च विदेहानाम् चम्पा अंगेषु माहिता।
वाराणसी च कासीनाम् एतं गोविन्द-मापिता।। '

बौद्ध साहित्य में भवन निर्माण के अनेक विवरण मिलते हैं। बौद्ध रामो एवं बौद्ध विहारों की करुणा, शांति, अहिंसा, सत्य, और सरलता के संदेश इनमें मिलते हैं।

अर्थशास्त्र में वास्तुः – ईसा पूर्व कालीन कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वास्तुकालीन सिद्धांतों का उल्लेख मिलता है। कौटलीय अर्थशास्त्र के अनुसार उस समय वास्तुविद्या के अन्य मौलिक ग्रन्थ भी थे जिससे वास्तु हृदय नौ भाग वास्तु देवता, काष्ठक जैसे शब्द प्रयोग में लाये जाते थे। अर्थशास्त्र में विभिन्न प्रकार की देव नामावली जैसे ऐन्द्र, वारुण, याम्य, किपशीर्ष, इन्द्रकोप, कपाट योग, बीज, गोपुर, तोरण, आयाम, आदि से वास्तु विद्या की प्रचुर सामग्री के प्रमाण मिलते हैं।

चतुर्दिशं जनपदान्ते साम्परायिकं दैवकृतं दुर्ग कारयेत् अन्तर्द्वीपं स्थलं वा निम्नावरुद्धमौदकं, प्रास्तरं गुहां वा पार्वतं, निरुदकस्तम्बिमिरिणं वा धान्वनं, खञ्जनोदकं स्तम्भ्बगहनं वा वनदुर्गम्। तेषां नदीपर्वतदुर्गूम जनपदा रक्षास्थानं धान्वनवनद्रगमटवीस्थानम्।। ²

जनपद — (यहां नई बसने वाली कॉलोनियों और उपनगरों के संदर्भ में इसका अर्थ लगाया जा सकता है) सीमाओं की चारों दिशाओं में राजा (कॉलोनाइजर, विकास प्राधिकरणों अथवा आवास विकास परिषद् का संदर्भ लें) युद्धोचित (सुरक्षित) प्राकृतिक दुर्ग का निर्माण करवाये। दुर्ग चार प्रकार के होते है— 1: औदक 2. पार्वत 3. धान्वन और 4. वनदुर्ग। चारों ओर पानी से घिरा हुआ टापू के समान गहरे तालाबों से आवृत स्थलप्रदेश औदकदुर्ग कहलाता है। बड़ी बड़ी चट्टानों अथवा पर्वत की कन्दराओं के रूप में निर्मित दुर्ग पार्वतदुर्ग कहलाता है। जल तथा घास आदि से रहित अथवा सर्वथा उसर भूमि में निर्मित दुर्ग धान्वनदुर्ग है। इसी प्रकार चारों ओर दलदल से घिरा हुआ अथवा कांटेदार सघन झाड़ियों से परिवृत दुर्ग वनदुर्ग कहलाता है। इनमें औदक तथा पार्वतदुर्ग आपत्तिकाल में जनपद की रक्षा के उपयोग में लाये जाते है। धान्वन और वनदुर्ग वनपालों की रक्षा के लिये उपयोगी होते है। अथवा आपत्ति के समय इन दुर्गों में भागकर राजा भी अपनी रक्षा कर सकता है।

स्त्रोत: (1) दिग्धनिकाय 19.36

⁽²⁾ कोटिल्य वास्तु शास्त्र - दुर्गविधानम्

वृहत्संहिता में वास्तु-

इस ग्रंथ में वास्तु विद्या पर वैज्ञानिक विवेचन मिलता है। वृहत्संहिता वाराहिमिहिर द्वारा रचित है जो विक्रमादित्य के नौ रत्नों में से एक थे। वृहत्संहिता में यद्यपि वास्तुशास्त्र अथवा स्थापत्य से संबंधित कुछ ही अध्याय है परंतु उनमें बहुत सूक्ष्म विवेचन है। वास्तु विद्या के प्रारंभिक प्रवचनों में वास्तुचयन भूमि परीक्षा, वृक्षारोपण, दारु आहरण, पद्यविन्यास, का जिक्र मिलता है।

प्रासाद लक्षण में बीस प्रकार के प्रासादों का वर्णन है जो मत्स्य पुराण से मिलता जुलता है। मंदिर का भूमि द्वार, गर्भ द्वार, चित्रण , प्रतिमा माप, पीठ माप, भूमि आदि पर सुंदर विवरण मिलता है।

वज्र लेप लक्षण में सीमेन्ट के निर्माण तथा द्रव्य पर काफी जानकारी मिलती है। इसी प्रकार शयनासन लक्षण में भवन उपस्कर (फर्नीचर) आसन शैय्या , पर्यक आदि का उल्लेख किया गया है। प्रतिमा लक्षण में पाषाण कला पर विवेचन है। इस ग्रन्थ में वास्तुविद्या के आचार्य गर्ग, मनु, विशष्ठ, पराशर, विश्वकर्मा, नग्नजित, मय के मतों का उल्लेख किया गया है। 1

मत्स्य पुराण में वास्तु:— मत्स्य पुराण में वास्तु विद्या पर करीब 8 अध्याय हैं 252 वें अध्याय में 18 आचार्यो पर प्रकाश डाला गया हैं स्तम्भ मान विनिर्णय नामक 255वें अध्याय में स्तम्भों का विवेचन किया गया। मत्स्य पुराण के अनुसार भवन निर्माण का प्रारंभ स्तम्भ रचना से होना चाहिये। स्तम्भों को 5 वर्गों में बांटा गया है। रुचक, वज्र, द्विवज्र, प्रलीनक, तथा वृत्त। इसी तरह नौवताल लक्षण (258), पीठिका लक्षण (262) लिंग लक्षण (263) अध्याय में प्रस्तर कला तथा मूर्ति कला का विवेचन किया गया है। प्रासाद वर्णन, मण्डप लक्षण का विवरण भी इस ग्रन्थ में है।

स्कन्दपुराण में वास्तु – इस पुराण के माहेश्वर खंड (द्वितीय भाग) तथा वैष्णवखंड (द्वितीय भाग) में वास्तु विद्या के वर्णन प्राप्त होते हैं। डा. आचार्य ने माना है कि मत्स्य के अनन्तर स्कन्द अिं कि प्राचीन है। महानगर-स्थापन, स्वर्णशाला, रथनिर्माण, स्थपित-निर्देश विवाह-मण्डप, चित्र कर्म आदि के जो विवरण मिलते हैं, उनसे वास्तु विद्या के व्यापक विस्तार पर प्रकाश पड़ता है। वास्तुकर्म, शिल्प कर्म का पर्याय हो गया है, अन्यथा रथ-निर्माण आदि तक्षक कला से संबंधित कर्म वास्तु-कला (भवनिर्माण कला) में कैसे संमिन्तित होते। प्राचीन परम्परा में वास्तु-कला एवं पाषाण कला (मूर्ति-निर्माण-कला) का घनिष्ठ संबंध है परंतु चित्रकला के साथ इसका संबंध यहीं पर सर्वप्रथम देखने को मिलता है।

स्त्रोत : (1) वृहत संहिता अध्याय 57, 58, 79

गरुड़पुराण में वास्तु— इस पुराण की वास्तु विद्या के चार अध्यायों में से दो अध्याय (46, 47) सभी प्रकार के भवनों (मानव एवं दैव) तथा दुर्ग-निवेश एवं पुर-निवेश तथा उद्यान भवन तथा और दो अध्याय में (गार्डन सिटीज) साथ ही परंपरा के अनुरुप प्रासाद एवं प्रतिमा (45 तथा 48) पर भी सुंदर विवेचन है। रुढ़िवादिता के कारण आम भारतीय इस अनुपम पुराण को न तो पढ़ना चाहते हैं और न ही घर में रखना चाहते हैं क्योंकि इसे अंतिम संस्कार के वक्त पढ़ा जाने वाला पुराण कहा जाता है। जबकि इसमें वास्तु के अनेक उपयोगी सिद्धांत दिये हुये हैं। गरुड़ पुराण में श्वेत वर्ण, पित वर्ण, श्याम वर्ण, एवं रक्त वर्ण वास्तु भूमियों का उल्लेख है। श्वेत वर्ण ब्राम्हणों के लिये, पित वर्ण वैश्य के लिये, श्याम वर्ण शद्भ के लिये उपयुक्त बतायी गयी है। पुराण में वास्तु भूमि के प्रशिक्षण की विधियों का तरीका भी बताया गया है।

अग्निपुराण में वास्तु – इस पुराण में वास्तु विद्या का बड़ा ही विस्तृत विवेचन हैं जैसा कि अन्य पुराणों में अप्राप्त है। इसमें वास्तु विद्या पर सोलह (42, 43,44, 45, 46, 49, 50, 51, 52, 53, 54, 55, 60, 62, 104, तथा 106) अध्यायों में प्रायः सभी अंगों पर प्रकाश डाला गया है। इस पुराण में पाषाणकला (मूर्ति निर्माण) की प्रधानता है। वास्तुकला पर केवल तीन तथा मूर्ति – निर्माण पर तेरह अध्याय हैं। अग्निपुराण का पुर निवेश वास्तु शास्त्र की एक विशिष्ट देन है।

मानसार में वास्तु:— मानसार में स्थपित, भूमि लक्षण, पदिवन्यास आदि पर प्रकाश डाला गया है। पुर, नगर, दुर्ग के साथ साथ शिलान्यास, स्तम्भ, भूमि तल, एक से सत्रह तक गोपुरों का विवरण भी बताया गया है। 42वें अध्याय में इसका विवरण मिलता है। विमान, प्राकार, परिखा, गोपुर मंडप, शाला द्वार, प्रांगण, तोरण, राजप्रकोष्ठ, सिंहासन, शैय्या टेबल, कुर्सियां, मंजुषा, पिंजर, आदि का जिक्र मिलता है। अंतिम 20 अध्यायों में पाषाण कला, मूर्ति कला का उल्लेख है। इस ग्रंथ में वास्तु कला पर पचास तथा पाषाण कला पर 20 अध्याय हैं। मानसार की वास्तु विद्या के निर्देश से ज्ञात होता है कि उसमें प्रौढ़ दक्षिणात्य मंदिर निर्माण कला की प्रधानता रही। 1–17 तक की भूमिकाओं वाले गोपुरों की

समरांगण सूत्रधार में वास्तु:— वास्तु विद्या के क्षेत्र में समरांगण सूत्रधार को अनुपम ग्रंथ माना जाता है। महाराजा भोज देव ने 11वीं शताब्दी में इसकी रचना की थी। इस ग्रंथ में 83 अध्याय

स्त्रोत : (1) अग्नि पुराण पूरनिवेश अध्याय- 106

the training was the property to the party of the party o

THE REAL PROPERTY AND THE PROPERTY OF THE PARTY OF THE PA

हैं जिनमें शैलियों के भवनों-सभा भवन, शाल भवन, प्रासाद मंदिर, गज शाला, आदि का वर्णन मिलता है। वास्तु विद्या पर तीन अध्याय हैं। पुरनिवेश पर समरांगण काफी सूक्ष्म उल्लेख मिलता है। उत्तरी अथवा दक्षिणी शैलियों से संबंधित टेम्पल आर्किटेक्चर का वर्णन समरांगण में है। लगभग 14 अध्यायों में प्रतिमा विज्ञान पर भी काफी कुछ कहा गया है। वास्तु विद्या में शनैः शनैः जो विस्तार हुआ उसमें अलग अलग ग्रंथ, अलग अलग मूल विषयों पर प्रवचन देते हैं पर समरांगण में स्थापत्य की दृष्टि से सभी का काफी सूक्ष्म विवेचन मिलता है।

देशः पुरम् निवासश्च साभावेश्यासनानि च यदीदृशमन्यच्च तत्तच्छेभस्करम् मतम्। वास्तु शास्त्रद्वते तस्य स्याल्लक्षण निश्चयः तस्माल्लोकस्य कृपया शास्त्रतेत दुदीर्यते।। ¹

(स) उद्योग तथा व्यवसाय में स्थापत्य का प्रभाव

वास्तुशास्त्रेण संबंधो गहनों व्यवसायिनाम्। व्यवसायोन्नतेर्मूलं वास्तुशास्त्रं विचारयेत्।। ²

उद्योग एवं व्यवसाय में स्थापत्य का प्रभाव- स्थापत्य सिद्धांतों के अनुरूप बनाई गई संरचनाएं केवल मानव कल्याण के लिए ही नहीं अपितु पूरे सामाजिक ढांचे को प्रभावित करने वाली होती हैं। पौराणिक ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर इसके प्रमाण मिलते हैं। भवनों की संरचना का प्रभाव व्यापार व्यवसाय पर भी पड़ता है। वैदिक काल में आज की तरह व्यवसाय विकसित भले ही न हुआ हो लेकिन व्यापार, वाणिज्य एवं विनिमय का प्रचलन जरूर था। ऋग्वेद कालीन संस्कृति में मुद्रा, व्यवसायिक संगठन और व्यापारिक स्वतंत्रता का उल्लेख भी मिलता है। उद्योग एवं व्यवसाय में स्थापत्य सिद्धांतों को मानने का प्रचलन इस काल में शुरू हो चुका था। अब जिन वास्तु सिद्धांतों का पालन औद्योगिक इकाई यो अथवा अन्य व्यवसायों में किया जा रहा है, उसकी सत्यता परखी जा चुकी है। भवन की तरह औद्योगिक इकाई के परिसर में वास्तु अनुरूप मशीनों की स्थापना एवं अन्य निर्माण किये जाएं तो उद्योग प्रगति की पथ की ओर बढ़ता जाता है। दुकानों, शो रूम में भी स्थापत्य के सिद्धांत लागू होते

स्त्रोत : (1) भारतीय स्थापत्य -पृष्ठ 17

⁽²⁾ भारतीय वास्तु शास्त्र तथा वास्तु शिल्प, गोयल पृष्ठ-!38

TO MADE WARRY TO THE OWNER.

हैं। व्यवसाय प्रारंभ करने से पूर्व वास्तु विषयक जानकारी ले लेना उपयोगी साबित होता है। वास्तु सिद्धांतों का मुख्य लक्ष्य प्राकृतिक रूप से व्यक्त एवं अव्यक्त ऊर्जाओं से लाभ प्राप्त करना है। वास्तु शास्त्रीय सिद्धांत में अध्ययन, अनुसंधान और अनुभवों के प्रकाश स्तम्भ है। यह प्रामाणिक तथ्य है कि प्रतिष्ठान पूर्वमुखी है तो व्यवसाय उत्तम व लाभप्रद होता है। यदि दुकान पश्चिमाभिमुखी हो तो व्यवसाय तेजी मंदी का शिकार रहता है। इसी तरह उत्तराभिमुखी दुकान धन –धान्य में वृद्धि करती है, वहीं दिक्षणामुखी दुकान बाधाओं का शिकार होती है तथा व्यापार मंदा होता है। वास्तु सिद्धांतों में केवल उद्योग की सरंचना ही नहीं, संचालक के आसन, कर्मचारियों के आवास, आदि की आदर्श स्थिति का उल्लेख मिलता है।

वैदिक काल में उद्योग तथा व्यवसाय-

ऋग्वेद कालीन संस्कृति – वैदिक काल का प्रमुख व्यवसाय कृषि एवं पशुपालन था। वैदिक आर्य मूलतः ग्रामीण थे और उनका आर्थिक जीवन का आधार कृषि, पशुपालन था। इस युग में कृषक उपज बढ़ाने की तकनीक से परिचित हो चुके थे। प्रारंभिक आर्य गाय तथा बैल को मुख्य संपत्ति मानते थे। पुरोहितों को यही दक्षिणा के रूप में दिये जाते थे। युद्ध का एक महत्वपूर्ण पशुधन प्राप्त करना होता था। गाय को मूल्य का मानक माना जाता था। मवेशियों की पहचान के लिए उनके कानों में चिन्ह बनाए जाते थे। ऋग्वेदिक काल में औषधियों आदि का भी व्यवसाय होता था। ऋग्वेद का हिरण्यकार संभवतः सोने का आभूषण बनाता था। भवन निर्माण भी एक महत्वपूर्ण व्यवसाय था। भवन काष्ठ निर्मित होते थे। 2

वैदिक काल में विभिन्न प्रकार की कलाएं एवं दस्तकारी होती थीं। आर्य लोग कला कौशल में दक्ष थे। हर गांव में बढ़ई, लुहार तथा कुम्हार होता था। बढ़ई, हल, रथ, नाव, घरों के लिये दरवाजे, खिड़िकयां आदि बनाता तथा लकड़ी पर सुंदर नक्काशी भी करता था। लुहार हलों के फल, धुरे, तलवार तथा दैनिक जीवन में काम आने वाली अन्य चीजें बनाता था। इस समय कर्म के आधार पर कोई भी हीन नहीं समझा जाता था। अतः आर्य बिना किसी लज्जा के अपनी रुचि के अनुसार व्यवसाय करते थे। स्त्रियां गृह उद्योगों में पर्याप्त सहायता देती थीं। 3

स्त्रोत:

⁽¹⁾ वैदिक संस्कृति – ज. थपलियाल

⁽²⁾ द हिस्ट्री कल्चर आफ इंडियन पीपुल्स- मजुमदार, पुसालकर

⁽³⁾ वैदिक संस्कृति

व्यापार :— ऋग्वेद में पाणि शब्द का उल्लेख है। यह व्यापारियों से संबंधित है ऋग्वेद में व्यापारियों को विणक भी कहा गया है। ये लोग विभिन्न प्रकार की सामग्रियों का बड़े पैमाने पर क्रय करके उसे अधिक लाभ पर बेच देते थे। व्यापार के प्रयोजन में नावों, रथों, जलपोत तथा अन्य उपयोगी पशुओं का प्रयोग भी होता था। व्यापार की वस्तुओं में वस्त्र, आभूषण तथ मूल्यवान धातुएं प्रमुख थीं। विनिमय के साधन— ऋग्वेदिक युग में भारतीय आर्यों ने व्यापार के क्षेत्र में अपार उन्नित की। आर्यों ने सिक्कों का निर्माण नहीं किया था। गाय तथा बैलों को धन का माप तथा विनिमय का साध ान माना जाता था। ऋग्वेद में 'निष्क' शब्द का उल्लेख है। 'निष्क' को मुद्रा माना जाता था किंतु कुछ विद्वान इसे आभूषण मानते हैं किंतु 'निष्क' का भार निश्चित होता था अतः संभव है कि इसका प्रयोग मुद्रा के रूप में किया जाता रहा हो।

ऋग्वेद के एक उल्लेखानुसार एक राजा, पुरोहित को दस हिरण्यपिंड, दान में देता था। दस हिरण्यपिंड की संख्या के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता हैं कि ये सभी एक तौल के रहे होंगे।डा. भंडारकर का यह मानना है कि निष्क निश्चित माप की चित्रित तथा अंकपूर्ण मुद्रा थी तथा हिरण्यपिंड पिटे हुये स्वर्ण का निश्चित दुकड़ा था। इस आधार पर हम यह कह सकते हैं कि इस समय निश्चित माप तौल का ज्ञान था तथा वस्तु विनिमय के अलावा लेनदेन के कार्यों में मुद्रा का भी प्रयोग किया जाता था। 1

उत्तरवैदिक कालीन संस्कृति में व्यापार वाणिज्य

ऋग्वेद के अतिरिक्त वाजसनेयी संहिता तथा तैत्तरीय ब्राम्हण में वाणिज्य शब्द का उल्लेख मिलता है। इस शब्द का प्रयोग उस वर्ग के लिये किया गया है जो देश में विचरण करता हुआ विविध सामग्री का क्रय-विक्रय करता था। उस समय व्यापारिक मार्ग सुरक्षित नहीं थे। ग्रन्थों द्वारा पता चलता है कि आर्य व्यापारी एक राज्य से दूसरे राज्य तथा विदेशों में माल लाते ले जाते थे। ऋग्वेद के सूक्तों में इसका जिक्र आता है। (1.56.2) समुद्री व्यापार भी इस काल में प्रारंभ हो चुका था। विषक व्यापार और सूद पर रुपये देने वाले बोहरे का उल्लेख भी मिलता है। व्यापारी वर्ग धन संपन्न था।

व्यवसाय – उत्तर वैदिक काल में व्यवसायों तथा उद्योग धंधों के क्षेत्र में बड़ी प्रगति हुई। यजुर्वेद के पुरुषमेघ सूक्तों में किसान, चरवाहे, गड़रिये, मछुए, रथकार, नापित, धोबी, लकड़हारे, कुम्हार,

त्रोत : (1) प्राचीन भारतीय संस्कृति कला, राजनीति, पृष्ठ- 54,55

⁽²⁾ प्राचीन भारतीय समाज, अर्थव्यवस्थ एवं धर्म- रमानाथ मित्र

लोहार, रंगरेज, सुनार, रस्सी, टोकरी बनाने वाले आदि का उल्लेख मिलता है। सुरा उत्पादन भी प्रमुख व्यवसाय था। विभिन्न व्यवसायी तथा श्रमिकों को बड़ी आय होती थी तथा ये बड़े पैमाने पर सामान बनाकर व्यापारियों को बेच देते थे।

व्यावसायिक संगठन उत्तर वैदिक काल में 'श्रेष्ठि' के साथ साथ गण तथा गणपित शब्द भी मिलते हैं। ये शब्द व्यावसायिक संगठनों के लिये प्रयुक्त किये जाते थे। विभिन्न व्यवसाय करने वाले अपने पृथक पृथक संघ बनाए हुये थे। इन संगठनों को राज्य की ओर से मान्यता प्राप्त थी। प्रतीत होता है कि इस समय श्रमिक संघ का भी जन्म हो चुका था। '

मुद्रा — उत्तर वैदिक काल में मुद्रा का प्रचलन तो हो चुका था परंतु सामान्य लेनदेन में वस्तु विनियम प्रणाली का प्रचलन था। निष्क जो ऋग्वैदिक काल में आभुषण था, अब मुद्रा माना जाने लगा था। इस काल में प्रयुक्त होने वाला शतमान तथा 'पाद' नामक शब्द भी मुद्रा से संबंधित माने गये है।

महाकाव्यों, सूत्रों तथा स्मृतियों के युग की संस्कृति

उद्योग, व्यवसाय और व्यापार – गृह उद्योगों का पर्याप्त विकास हो चुका था परंतु किसी बड़े कारखाने या उद्योगशाला का उल्लेख अप्राप्य हैं। गृह उद्योगों के अंतर्गत मिट्टी के बर्तन बनाना, कुशा के आसन, चटाई, पर्दे इत्याहि बनाना, लकड़ी के उपकरणों का निर्माण, सिल, प्याले, भाले, बरछी, तीर बनाना आदि थे। वस्त्र, व्यवसाय में पर्याप्त प्रगति हो चुकी थी। रेशम के कीड़े पाले जाते थे, इससे रेशम प्राप्त होता था। इसके अतिरिक्त सूती, ऊनी तथा लिनेल के वस्त्र बनाये जाते थे।

कर्मगत वर्ण व्यवस्था के अनुसार व्यापार-वाणिज्य वैश्यों द्वारा किया जाता था। व्यापार में लाभ होने के लिए 'पाण्ड्य सिद्धी' नामक संस्कार किया जाता था। सूत्र ग्रंथों में नावों तथा निदयों का तो उल्लेख मिलता है परंतु बन्दरगाहों या सामुद्रिक नावों का अभाव था। दक्षिण भारत में शस्त्रास्थ, ऊन, का व्यापार और समुद्र यात्रा को निंदित समझा जाता था। समुद्र यात्रा करने से मनुष्य पितत हो जाता था। इससे यह प्रतीत होता है कि सामुद्रिक मार्ग से व्यापार होने का अभाव था वैदेशिक व्यापार भी बहुत ही सीमित था।

पाणिनीकृत 'अष्टाध्यायी' में वर्णित सभ्यता तथा संस्कृति

स्त्रोत : (1) भारत का इतिहास- कामेश्वर प्रसाद

द्यापार और वाणिज्य — व्यापार और वाणिज्य के विषय में अनेक नवीन सूचनाएं मिलती हैं। राजा, व्यापारियों के परामर्श द्वारा आयात, निर्यात, मूल्यों का निश्चितीकरण आदि करता था। स्थल तथा जल मार्गों से खूब व्यापार होता था। नदी मार्ग से सामग्री लाने ने जाने के किराये की दरें निश्चित थीं जबिक समुद्र मार्ग से माल के आयात निर्यात के भाड़े की दरें पारस्परिक समझौते द्वारा तय की जाती थीं। यातायात में व्यापारिक सामग्री के क्षतिग्रस्त होने पर यातायात के साधन स्वामी को क्षितिपूर्ति करनी पड़ती थीं। इस प्रथा में बीमा कराने की भी व्यवस्था थी। क्रय-विक्रय के लिए वस्तु विनिमय का भी प्रचलन था। निर्यात की जाने वाली सामग्री के विषय में विस्तृत तथा सूझबूझ वाले नियम बनाये गए थे। निर्यात की जिन वस्तुओं पर प्रतिबंध था या जिस माल पर राजा का एकाधिकार था, उसका निर्यात करने वाले व्यापारी की सारी सम्पत्ति हर ली जाती थी। व्यापार शुल्क द्वारा राज्य को पर्याप्त आय होती थी। शिल्प और धंधों का व्यवसाय उन्नत दशा में था। मनु स्मृति में शिल्पकारों द्वारा निर्मित उपकरणों तथा सामग्रियों का विस्तृत विवरण है।

परिवर्तनों के युग की संस्कृति

विभिन्न उद्योग धंधे – गांवों और नगरों में बहुसंख्यक व्यवसायी और शिल्पकार रहते थे। व्यवसायों की संख्या अधिक थी। बौद्ध साहित्य में कितपय व्यवसायों और शिल्पियों का उल्लेख है। इसमें निम्निलिखित मुख्य थे– हांथी दांत का काम करने वाले शिल्पी, जुलाहे, लोहे की वस्तुएं बनाने वाले कम्मार वर्धकी (सुनार), कुम्भकार, चर्मकार, स्वर्णकार, मालाकार, नलकार, रंगरेज, सूद, ज्योतिषी, वैद्य, नट, रजक, शिकारी, बिधक, मछुए, सपेरे, आभूषणों व रलों का काम करने वाले नाविक, संगीतज्ञ, नृत्य और अभिनय करने वाले, नाई, धनुषबाण बनाने वाले, रसोईये, चित्रकार पुरोहित आदि। इस युग में वस्त्र उद्योग खूब समृद्ध था, गांधार ऊनी वस्त्रों के व्यवसाय के लिए, वाराणसी रेशमी वस्त्रों के लिए और शिविदेश सूती वस्त्रों के लिए अधिक प्रसिद्ध थे।' लोग आभूषण प्रिय थे इसिलए सोने चांदी, मोती, हीरे, हाथी दांत आदि के विविध प्रकार के आभूषण बनाये जाते थे। स्वर्णकार और जौहरी का व्यवसाय भी खूब उन्तत था। कुछ शिल्प कार्य और व्यवसाय उनके कार्य और वृत्ति के अनुसार उच्च और निम्न श्रेणी के माने जाते थे। शिकारी, मछुए, चर्मकार, कसाई, सपेरे आदि व्यवसाय हीन माने जाते थे। कुछ व्यवसायों में विशेषतः वस्त्र उद्योग, हाथी दांत का व्यवसाय आदि में अत्यिक विशिष्टीकरण हो गया था परंतु ये व्यवसाय स्थानीय थे और कुछ परिवारों तक ही सीमित थे।'

स्त्रोत: (1) बौद्ध संस्कृति का इतिहास

⁽²⁾ प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास

द्यावसायिक संघ या श्रेणियां — जातकों में व्यवसायों की बहुत सी श्रेणियां मिलती हैं। एक ही धंधा करने वाले लोग प्रायः अपने को शिल्पी संघ या श्रेणी में संगठित करते थे। प्रत्येक श्रेणी का एक अध्यक्ष या सभापित होता था, जिसे 'प्रमुख', 'ज्येष्ठन' या श्रेषठिन कहते थे। 'महाश्रेष्ठिन' सर्वोपिर प्रधान या अध्यक्ष और 'अनुश्रेष्ठिन' उपाध्यक्ष होते थे। कभी-कभी विविध श्रेणियां या संघ अपनी सुरक्षा, उन्नित और लाभ के लिए एक ही अध्यक्ष या श्रेष्ठिन के अंतर्गत संगठित हो जाते थे। कभी-कभी श्रेणियों के अध्यक्ष राज-सभासद, दरबारी या मंत्री भी होते थे। ये व्यवसायिक संघ या श्रेणियां अपने सदस्यों के पारस्परिक झगड़ों का निर्णय करती थीं, उनकी सामग्री के निर्माण, क्रय, विक्रय आदि में सहायता करती थीं। कभी-कभी व्यापारियों के लिए संघ या श्रेणियां होती थीं और उनमें उद्योग तथा व्यापार के लिए व्यापक साझेदारी होती थी। व्यापारियों के लिए 'श्रेष्ठी' शब्द का प्रयोग होता था।

वाणिज्य और व्यापार — आंतरिक और बाहरी दोनों प्रकार के व्यापार उन्नत थे। देश में अंत्रीप्रांतीय और अन्तर्राज्यीय व्यापार होता था। व्यापार द्वारा अपार धन उत्पन्न करने वाले श्रेष्ठियों या महाजनों का बौद्ध साहित्य में उल्लेख है। नगरों में 'नेरामगाम' व्यापारियों के केन्द्र थे जहां विभिन्न स्थानों में निर्मित या उत्पन्न हुई वस्तुएं क्रय-विक्रय के लिए लाई जाती थी। क्रय-विक्रय के लिए व्यापारियों की दुकानों के बड़े-बड़े बाजार थे। इसके अतिरिक्त जन साधारण की सुविधा के लिए फेरी वाले अपने व्यापारिक सामान को गाड़ियों, बैलों, गधों, घोड़ों आदि पर लाद कर गली-गली, गांव भी घूमते थे। व्यापारीगण स्वतंत्रता पूर्वक क्रय-विक्रय के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान तक आ जा सकते थे।

उद्योग में स्थापत्य के सिद्धांत

(1) भूमि चयन किसी भी उद्योग अथवा संयंत्र की स्थापना के लिए सर्वप्रथम उत्तम भूमि का चयन स्थापत्य के अनुसार करना चाहिए। संयंत्र के लिए शेरमुखी भूमि उत्तम मानी जाती है। भूखंड का उत्तर पूर्व का भाग दक्षिण पश्चिम की अपेक्षा नीचा रहे। औद्योगिक भवनों में भी भूमि का चयन स्थापत्य अनुसार करना चाहिए। औद्योगिक भवन से तात्पर्य संयंत्र से अलग संस्थान के विक्रय एवं प्रशासनिक कार्यालयों से है। भूखंड खरीदने से पहले खंडहरनुमा दरार वाले स्थान आदि का ध्यान प्रशासनिक कार्यालयों से है। भूखंड खरीदने से पहले खंडहरनुमा दरार वाले स्थान आदि का ध्यान अवश्य रखना चाहिए ऐसे भूखंड पर उद्योग स्थापित करने पर उसकी सफलात संदिग्ध रहती हैं उद्योग

स्त्रोत: वाणिज्य वास्तु- डा. भोजराज द्विवेदी भारतीय वास्तु शास्त्र तथा वास्तु शिल्प- अशोक गोयल Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के लिए आर्द्रता वाली भूमि उपयुक्त मानी जाती है। यदि संयंत्र हेतु भूमि दक्षिण या पश्चिम राजमार्ग पर स्थित हो तो वह शुभ मानी जाती है। व्यावसायिक कॉम्पलेक्स सामूहिक भूखंड अथवा पहाड़ी क्षेत्रों में दुकान निर्माण में भी स्थापत्य नियमों को ध्यान में रखना चाहिए।

- (2) मशीनों की स्थापना किसी औद्योगिक इकाई में छोटी बड़ी अनेक मशीनों की स्थापना की जाती है तब वह संरचना संयंत्र कहलाती है। वास्तु नियमानुसार भूमि के हर कोण और दिशाओं के अनुकूल मशीनों की स्थापना संयंत्र को लाभ की स्थिति में पहुंचा सकती हैं। फैक्ट्री एवं व्यवसायिक भू—खंड में जनरेटर, ट्रांसफार्मर भारी विद्युत संयंत्र बायलर आदि की स्थापना आग्नेय कोण में करनी चाहिए। दक्षिण पूर्व (आग्नेय) दिशा अग्नि देव की दिशा मानी जाती है इसलिए गर्म प्रकृति के तत्वों को इस दिशा में रखना चाहिए। ट्रांसफार्मर, बायलर आदि की प्रकृति गर्म होती है इसलिए अग्नि कोण में स्थापित होना अनुकूल माना जाता है। भारी मशीनें दक्षिण पश्चिम अर्थात् नैऋत्य दिशा में स्थापित की जानी चाहिए क्योंकि यह क्षेत्र सबसे ज्यादा भार साधक माना जाता है। संयंत्र का नाप तौल या धर्मकांटा उत्तर पश्चिम दिशा (वायव्य) में स्थापित होना चाहिए। उद्योग में कबाड़, गोदाम नैरित्य दिशा अर्थात दक्षिण पश्चिम में होना चाहिए। फैक्ट्री की चिमनी ईशान कोण में नहीं होना चाहिए। भूमि पर चौकोर अथवा गोलाकार प्लेटफार्म बनाकर मशीनें स्थापित करना शुभ होता है।
- (3) कच्चा व तैयार माल एवं कार्यालय संयंत्र में कच्चा माल दक्षिण-पश्चिम दिशा में स्टोर बनाकर रखना चाहिए वहीं तैयार माल उत्तर-पश्चिम (वायव्य) दिशा में रखा जाना चाहिए। वास्तु सिद्धांतों के अनुसार वायव्य दिशा में तैयार माल रखने से वह जल्दी ही बिक जाता हैं क्योंकि वायव्य दिशा हल्की मानी जाती है। संयंत्र के कार्यालय उत्तर-पूर्व (ईशान) अथवा उत्तर या पूर्व दिशा में स्थापित होने चाहिए। संयंत्र के मुख्य द्वार पर स्थापित सुरक्षा दफ्तर यदि प्रवेश करते ही दायीं ओर हो तो श्रेष्ठ माना जाता है। (1) प्रशासनिक भवन संयंत्र के करीब बनाया जाए तो वह संयंत्र भवन की अपेक्षा नीचा होना चाहिए। (2) सुरक्षा कर्मियों के लिए संयंत्र में उत्तर पश्चिम का उत्तर में स्थान बनाया जाना शुभ होता है। स्वागत कक्ष ईशान में बनाना वास्तु के दृष्टिकोण से लाभदायी माना जाता हैं वास्तुशास्त्रीय रिकार्ड, आलमारी आदि को भी वास्तु सिद्धांतों के अनुरूप रखने की सलाह देते हैं। या दुकान में दिक्षण-पश्चिम में दस्तावेज, फर्नीचर आदि रखें और अपना मुख ईशान में रखे तो या दुकान में दिक्षण-पश्चिम में दस्तावेज, फर्नीचर आदि रखें और अपना मुख ईशान में रखे तो

स्त्रोत : वास्तु कला एवं भवन निर्माण

व्यापार में बदलाव के शुभ संकेत जल्दी ही नजर आने लगते हैं। उत्तर की ओर मुख कर बैठना भी श्रेष्ठ माना जाता है।

कर्मचारी आवास, जल, पार्किंग— औद्योगिक संस्थान में भी भवनों की तरह वास्तु के सिद्धांत लागू होते हैं। संयंत्र के चारों ओर भूमि रिक्त रखना चाहिए। ईशान में अपेक्षाकृत अधिक स्थान शेष रखना शुभ माना जाता है। पेयजल के लिए ओव्हर हेड टैंक वायव्य दिशा अर्थात् पिश्चम उत्तर में बनाना चाहिए, वहीं ट्यूब वेल, बोरिंग आदि उत्तर पूर्व (ईशान) में खुदवाना चाहिए। ईशान में भूमिगत जलस्त्रोत शुभ माना जाता है। श्रमिकों के लिए आवास की व्यवस्था संयंत्र के पश्चिम में करना चाहिए।(1) कुछ वास्तु शास्त्री कर्मचारी आवास दक्षिण पूर्व या उत्तर पश्चिम में बनाने का सुझाव देते हैं। (2) संयंत्र का शौचालय उत्तर पूर्व एवं दक्षिण पश्चिम में कभी भी नहीं बनाना चाहिए। फैक्ट्री में पानी का बहाव उत्तर पूर्व की ओर होना चाहिए। संयंत्र के सामने कचरे का ढेर नहीं होना चाहिए। औद्योगिक ईकाई के भवन में उपर जाने के लिए सीढ़ियां दक्षिण पश्चिम दिशा में बनानी चाहिए। यदि भवन के करीब पार्किंग स्थल है तो उत्तर अथवा पूर्व दिशा को रखना चाहिए। मुख्य द्वार हमेशा ईशान में ही रखने की हिदायत स्थापत्य सिद्धांतों में दी जाती है। मुख्यद्वार उत्तर पूर्व में ही शुभ होता है। इसी तरह सीढ़ियों के लिए भी वास्तु नियम निर्धारित है। सीढ़ी हमेशा नैऋत्य कोण अर्थात् दक्षिण से पश्चिम की ओर बनाना चाहिए आवास हो अथवा संयंत्र इस नियम का पालन करना शुभ होता है। सीढ़ी सदैव दायी तरफ होनी चाहिए।

द्वार वेध

द्वार वेध का तात्पर्य प्रकाश एवं वायु के मार्ग में रुकावट डालना है। अतः यह एक प्रकार से भवनों के दिवसाम्मुख्य की अत्यंत विकसित एवं प्रौढ़ परम्परा पर आश्रित है। सूर्यिकरणों के स्वच्छन्द उपभोग तथा वायु के संचार में जो बाध गा हो सकती है वही दोष वेध के नाम से भारतीय स्थापतय में कहा गया है। 'वेध' पारिभाषिक संज्ञा है, इसका बड़ा भारी विस्तार है। भवन के अंगों से इसका संबंध नहीं बल्कि भवन के निकट नाना स्थानों के निवेशों एवं वस्तुओं से हो सकता है।

and the fill make a serie which are store that the store of the contract of

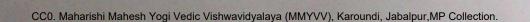
वास्तु-शास्त्रों में एक सामान्य वेध-वर्गीकरण भी मिलता है। वह सप्तविध है. तलवेध, कोणवेध, तालुवेध, कलापवेध, स्तम्भवेध, तुलावेध तथा द्वारवेध। यहां पर हमारा संबंध द्वारवेध से हैं, अन्य वेधों का संकेत हम आगे भवन-दोष में करेंगे। द्वारवेध में द्वार निर्मित-दोष भी होता है जो सर्वथा वर्ज्य है। द्वार चत्वर, रथ्या ध्वजा, वृक्ष, पंक, नाली, कूप, देवता आदि से यदि विद्ध है तो अनर्थकारी है। यहां पर इतना ही विशेष निर्देश अभीष्ट है। जो वस्तु वेधक हो रही हो (अर्थात बीच में पड़ रही हो) उससे भवन की उंचाई का दूना अवकाश छोड़ देने पर यह वेध शांत हो जाता है। अतएव यह नियम प्रायः सभी शिल्पग्रंथों ने एक मत से स्वीकार किया है कि 'भवन की उंचाई से दुगुना अवकाश (अर्थात् द्वार से उसके वेध तक) छोड़ देने पर वेध नहीं रहता।' 1

अन्य व्यवसायों में स्थापत्य सिद्धांत

उद्योग के अलावा अन्य व्यवसायिक केन्द्रों में वास्तु जिनत सावधानियां बरतनी चाहिए। प्रथम चरण अर्थात् भूखंड खरीदने से ही स्थापत्य सिद्धांतों की शुरूआत हो तो बेहतर नतीजे मिलते हैं। भूखंड उत्तर पूर्व की ओर बढ़ा हो तथा दुकानें उत्तर पूर्व की ओर खुलती हो तो बेहतर है। भूखंड के उत्तर पूर्व क्षेत्र में स्थान खुला रखें तथा दुकान के उत्तर पूर्व क्षेत्र को पूजा स्थल के रूप में अथवा खुला रखना चाहिए। हर स्थान पर पूर्व या उत्तराभिमुखी भूखंड उपलब्ध नहीं होते एंसी स्थिति में वर्गाकार या आयाताकार भूखंड खरीदकर निर्माण ऐसा कराना चाहिए जिससे वास्तु सिद्धांतों का पालन हो दिशाएं एवं कोण को ध्यान में रखकर व्यवसायिक केन्द्र का निर्माण भूखंड के स्वामी एवं हर दुकानदार के लिए शुभ होता है।

त्यवसायिक भवनों की भांति रेस्तरां, जलपान गृह, भोजनालय या होटल की स्थापना के पूर्व वास्तु नियमों को व्यवहार में लाने का प्रयास करना चाहिए। ऐसे भवनों में भोजन बनाने का स्थल और ठहराने तथा खिलाने का स्थल महत्वपूर्ण होता है। भोजन बनाने के लिए पाकशाला या रसोई आग्नेय कोण में ही बनानी चाहिए। बालकनी उत्तर या पूर्व दिशा की ओर होनी चाहिए। भंडारण या स्टोर दिक्षण-पिचम (नैऋत्य) में स्नानगृहों को उत्तर-पिचम (वायव्य) में एयरकंडीशनर, वाशबेसिन पिचम दिशा में स्वीमिंग पुल उत्तर पूर्व (ईशान) में कान्फेंस हॉल उत्तर-पिचम (वायव्य) में बनाना शुभकारी होता है जनरेटर, द्रांसफारमर आदि किसी भी भवन में दक्षिण पूर्व (आग्नेय) दिशा में होना चाहिए। सिनेमा हॉल में कुछ वास्तुजनित सिद्धांत काफी असरकारी होते हैं। टिकट खिड़की और केश बॉक्स

स्त्रोत : (1) भारतीय स्थापत्य कर्मिशियल वास्तु



उत्तर या पूर्व में होना चाहिए। सिनेमा हाल में प्रवेश द्वार पश्चिम की ओर से दक्षिण की ओर रखना चाहिए। पर्दा दक्षिण में और प्रोजेक्टर उत्तर दिशा में होना चाहिये। शेष स्थलों पर भवनों में लागू होने वाले वास्तु सिद्धांत का ही प्रयोग करना चाहिए। बहुमंजिली इमारत योजना बनाते समय होटल बादि का निर्माण आग्नेय दिशा में होना चाहिए। इसी के समीप डेयरी, लकड़ी, कोल डिपो, कुकिंग गैस आदि के लिए दुकाने बनायी जा सकती है।

औषधि विक्रेताओं के लिए ईशान में, पत्र-पत्रिकाओं के लिए नैऋत्य में, पशुपालन या पौध शाला वायव्य में, विद्यालय, शिक्षण संस्था, बाल सुधार आदि भवन के वायव्य कोण में होने से सबको लाभ होता है। उपनगर अथवा कालोनी निर्माण के समय भी स्थापत्य सिद्धांतों का ध्यान रखना चाहिए। आजकल बहुमंजिली इमारतों में भूमिगत पार्किंग, दफ्तर आदि का निर्माण भी किया जाता हैं। ध्यान में रखना चाहिए कि उत्तर और पूर्व दिशा में ही तलघर का निर्माण हो। दक्षिण या पश्चिम में तल घर पूरी इमारत के लिए नुकसानदायक होता है। रेखाचित्रों के द्वारा इसे व्यवसायिक निर्माण में वास्तु निर्देशों को आसानी से समझा जा सकता है।

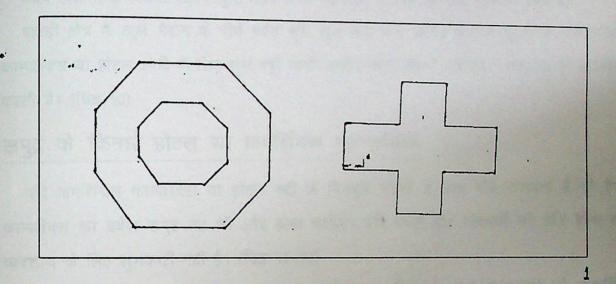
समुद्र के किनारे बहुमंजिली होटल— अष्टकोणीय आकृति वाली बहुमंजिली इमारत या होटल किसी जल स्त्रोत समुद्र, झील आदि के किनारे बनायी जाए तो व्यक्ति अत्यधिक लाभ पाता है। भवन के उत्तर दिशा की ओर नदी, तालाब, समुद्र अच्छा परिणाम देते हैं वहीं उत्तर पश्चिम तथा दक्षिण के जल स्त्रोत अशुभ माने जाते हैं। मुंबई व सूरत में ऐसे होटलों का उदाहरण मिलता है। आमतौर पर अष्टकोणीय आकृति इमारत के लिए अशुभ मानी जाती है। लेकिन समुद्र के किनारे यह आकृति शुभ परिणाम देती है। (चित्र 1 व 2)

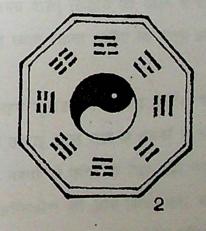
चीनी मान्यतानुसार शिव लिंग की आकृति वाला चिन्ह पृथ्वी तत्व का द्योतक है। (चित्र 3) ऐसी आकृति वाले भूखंड में ईमारत बनायी जाए तो अत्यंत लाभकारी होती है तथा स्वामी को ६ विवास वनाने में देर नहीं लगती। अंग्रेजी के (H) आकार वाले भूखंड के मध्यम में होटल या अन्य व्यवसाय के लिए निर्माण शुभ होता है। (चित्र 3)

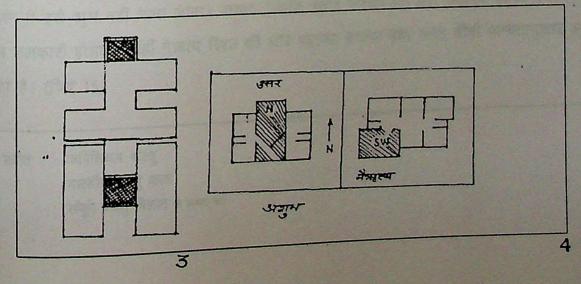
किसी भी भूखंड में निर्माण के पहले योजनाबद्ध तरीक् से स्थान रिक्त छोड़ना चाहिए। यह स्थापत्य सिद्धांत में प्रमाणिक तथ्य है। वाणिज्य भवन में कुल भूखंड का दो तिहाई भाग का निर्माण यदि पूर्व व उत्तर दिशा की ओर किया जाए तो आर्थिक लाभ व भाग्योदय होता है। परंतु यदि यही निर्माण ईशान या नैऋत्य में लाभकारी नहीं होता (चित्र-4)

स्त्रोत: कर्मिशियल वास्तु - डा. द्विवेदी

समुद्र के किनारे पर बना बहुमंजलीय होटल







पहाड़ी क्षेत्र में व्यवसायिक केन्द्र

पहाड़ी क्षेत्रों में व्यवसायिक केन्द्र भवन की स्थिति का वास्तु अनुसार निर्धारण अत्यंत किंठन होता है यदि भूखंड के पीछे पठार और सामने नदी, जलाशय अथवा बगीचा हो तो ऐसा भूखंड लाभ देता है। यदि चारों ओर पर्वत हो तो ऐसे भूखंड का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। (चित्र 6)

कवच रूपी पहाड़ी हो और सामने खुला मैदान हो तो यह होटल के लिए लाभकारी होता है। (चित्र 7)

पहाड़ी क्षेत्र में खुले मैदान के पीछे पर्वत श्रृंग शुभ नहीं माने जाते। पर्वतीय श्रृंखलाएं व्यवसायिक काम्पलेक्स या होटल आदि के लिए शुभ नहीं मानी जातीं। उल्टी-सीधी पहाड़ियां व्यवसाय को प्रभावित करती है। (चित्र 10)

समुद्र के किनारे होटल या कमर्शियल काम्पलेक्स

यदि कमर्शियल काम्पलेक्स या होटल नदी के बिल्कुल सामने है तथा पीछे राजमार्ग हैं तो ऐसे काम्पलेक्स का प्रवेश समुद्र तट की ओर होना चाहिए। यदि प्रवेश द्वार राजमार्ग की ओर होगा तो व्यवसाय के लिए शुभकारी नहीं है। (चित्र 11-12)

दुकान, होटल, या व्यवसायिक केन्द्र के बाहर कोई खम्भा, विज्ञापन, बोर्ड या ग्राहकों को आकर्षित करने हेतु ध्वज आदि लगाते समय वास्तु सिद्धांत को ध्यान में रखना चाहिए। इससे द्वार वेध होता है। द्वार वेध दूर करने के लिए यह ध्यान रखना चाहिए कि मुख्य द्वार के सामने कोई भी व्यवधान न हो। (चित्र 12 13)

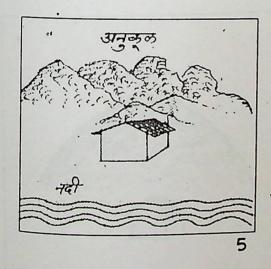
महानगरों में राजमार्ग पर महंगे भूखंड लेने के बाद निर्माण की योजना स्थापत्य नियमों के अनुसार बनायी जानी चाहिए। भवन की ऊंचाई आस पास के भवनों के समानुपातिक होनी चाहिए तभी व्यवसाय अनुकूल रहेगा। आस-पास के भवनों से ऊंचा या टेढ़ा-मेढ़ा भवन शुभ फलदायी नहीं होता। (चित्र 4) कमिशियल कॉम्पलेक्स में अग्निकोण की ओर किया गया भारी निर्माण धनदायक होता है, जबिक कमिशियल कॉम्पलेक्स में अग्निकोण की ओर किया गया भारी निर्माण धनदायक होता है, जबिक ईशान में इसे शुभ नहीं माना जाता। वायव्य अर्थात् उत्तर पश्चिम की ओर बढ़ाकर किया गया निर्माण शुभ फलकारी होता है, वहीं नैऋत्य दिशा की ओर बढ़ाकर बनाया गया भवन चीनी मान्यतानुसार अशुभ होता है। (चित्र 15)

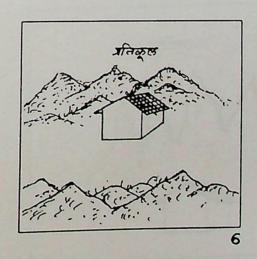
स्त्रोत : कर्मिशियल वास्तु भारतीय वास्तु कला संपूर्ण वास्तु विज्ञान के आघार पर

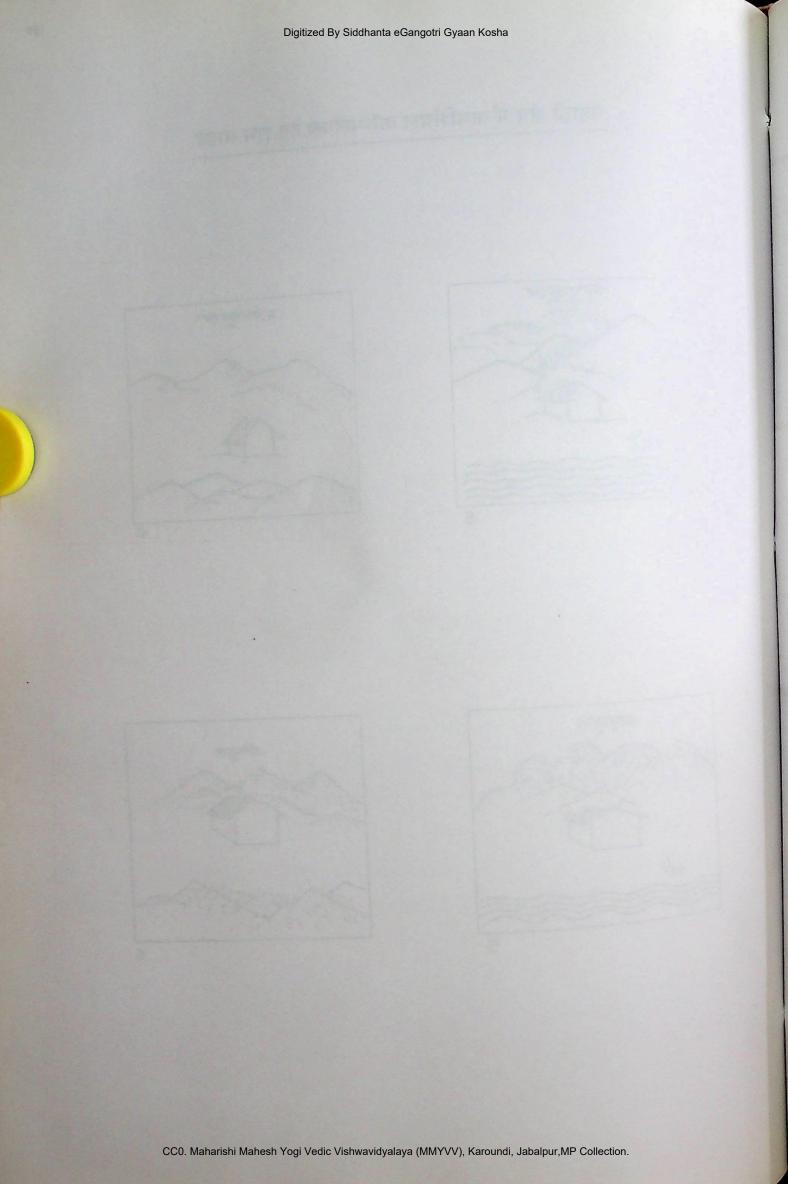
पहाड़ी क्षेत्र में कमर्शियल कॉम्पलेक्स हेतु शुभ साइट





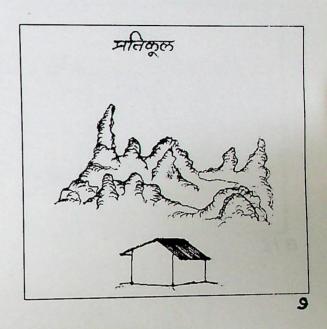


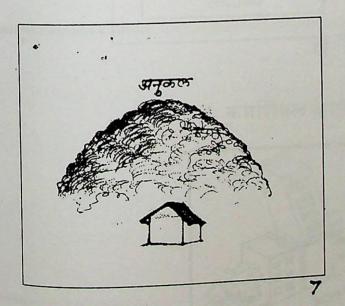


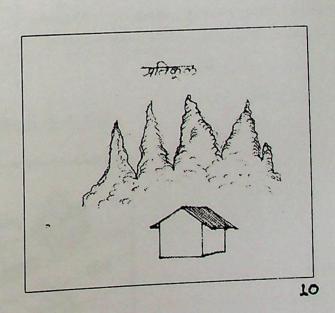


पहाड़ी क्षेत्र के होट ल हेतु साईट

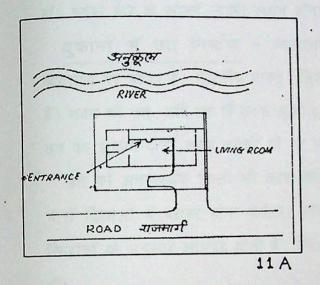


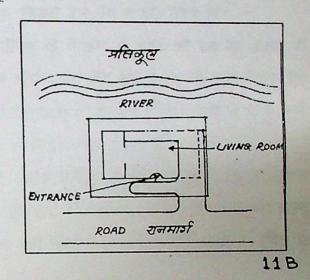


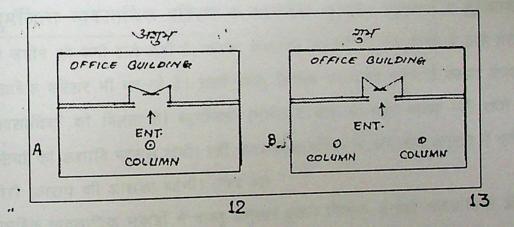




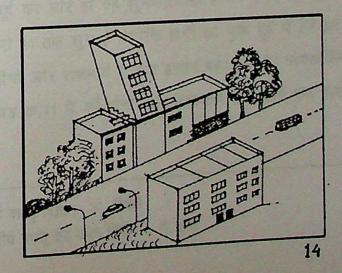
समुद्र किनारे होट ल या काम्पलेक्स

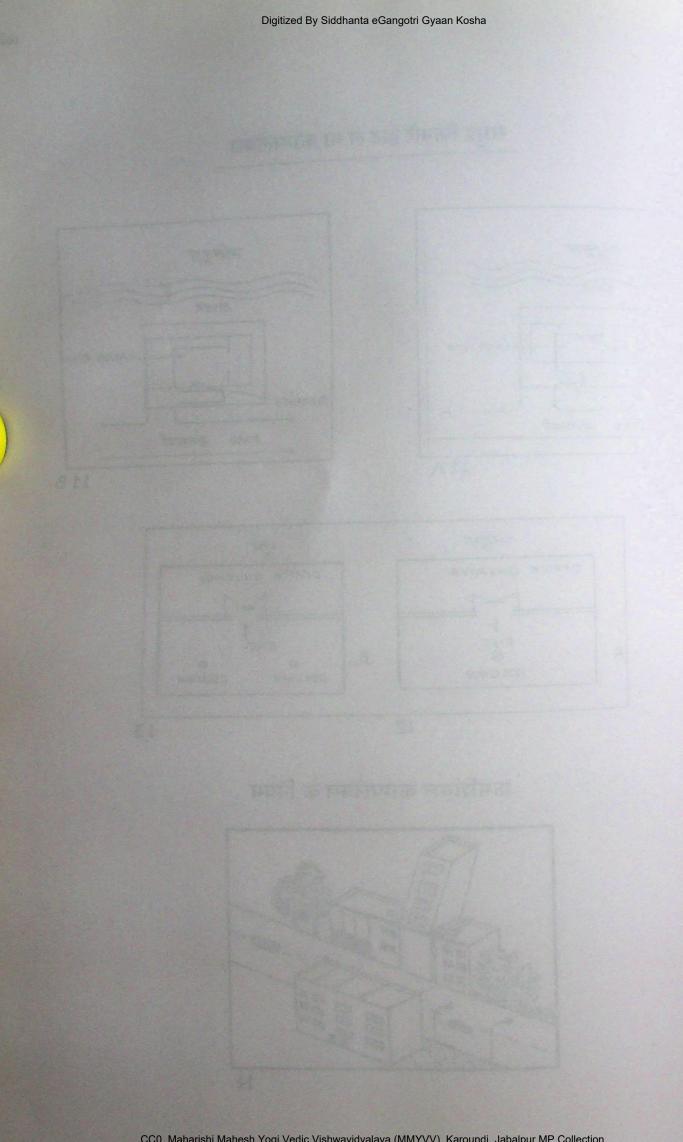






कमर्शियल काम्पलेक्स के नियम





किसी भी ्यापारिक प्रतिष्ठान का प्रवेश द्वार हमेशा भीतर की ओर खुलने वाला होना चाहिए। ऐसा करने से संपन्नता आती है। इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि प्रवेश द्वार संकुचित न होकर चौड़ा हो। प्रवेश द्वार के सामने खाली स्थान होना चाहिए, जिससे द्वार वेध न हो। (चित्र 16)

दुकानों में छत निर्माण — व्यावसायिक परिसर के निर्माण में भवन की छत का असर भी व्यवसाय पर पड़ता है। भारतीय वास्तु सिद्धांत एवं चीनी वास्तु फेंक सुई ने इस पर सूक्ष्म निर्देश दिए हैं। भवन की छत यदि एक ही तरफ झुकी हुई है तो यह वास्तु के अनुसार प्रतिकूल मानी जाती है। यदि छत का झुकाव दोनों तरफ बराबर हो तो यह शुभ होती है। (चित्र 17, ए बी)

छत को अनावश्यक किसी भी तरफ मोड़ा नहीं जाना चाहिए। संयुक्त दुकानों में छत का झुकाव चारों दिशाओं में बराबर होना चाहिए। औद्योगिक ईकाईयों में परस्पर जुड़ी हुई गोलाकार छतें वास्तु सिद्धांतों के अनुसार लाभप्रद होती है। (चित्र 18 ए) वहीं तिकोनी छत अशुभ मानी जाती है। (चित्र 18 बी)

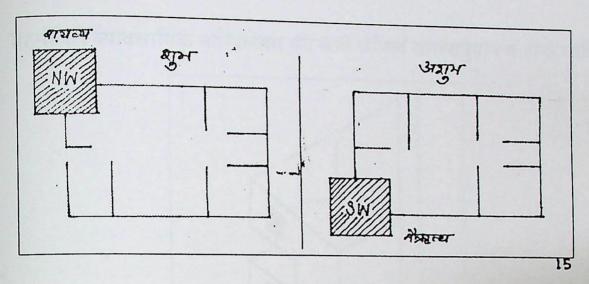
बहुमंजिला व्यवसायिक परिसर व सामूहिक भूखंड – महानगरों में सुविधाजनक इलाकों में अब जमीन की कमी होने लगी है, फलतः अपार्टमेंट संस्कृति ने जन्म लिया हैं इसी तरह बहुमंजिला व्यावसायिक परिसर भी बन रहे हैं। इसमें वास्तु सिद्धांत का पालन करने से उसका लाभ पूरे परिसर के व्यवसायियों को मिलता है। बहुमंजिली इमारत में यदि हर फ्लेट बराबर नहीं रहेंगे तो वहां के निवासियों को अशांति महसूस होगी। वहीं व्यवसायिक परिसर में यदि सही अनुपात में फ्लेट नहीं रहेंगे तो चोरी अपराध की आशंका बढ़ेगी। (चित्र 19)

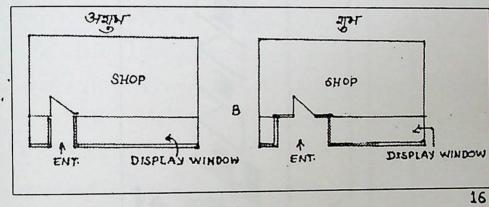
सामूहिक व्यवसायिक भूखंडों में वास्तु अनुसार दुकान निर्माण, ग्राहकों व्यवसायियों और भूखंड के स्वामी सभी के लिए लाभकारी हो सकता है। पूर्व और उत्तर की ओर बढ़ा हुआ हिस्सा जिस पर बनी दुकानों का मुख पूर्व की ओर हो वह शुभफलकारी होगा। (चित्र 20 में)

भूखंड क्र. 1 से 11 तक शुभ हैं क्योंकि सभी का मुख पूर्व में है। इन सबमें भूखंड क्र.11 सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि इसके दोनों ओर राजमार्ग है तथा इशान बढ़ा हुआ है। व्यवसायिक दृष्टि से यह भूखंड अत्यंत है क्योंकि इसके दोनों ओर राजमार्ग है तथा दशान बढ़ा हुआ है। व्यवसायिक दृष्टि से यह भूखंड अत्यंत लाभकारी है। भूखंड क्र.11 में भी दोनों ओर राजमार्ग है जिसमें एक मार्ग दक्षिण तथा दूसरा पूर्व की

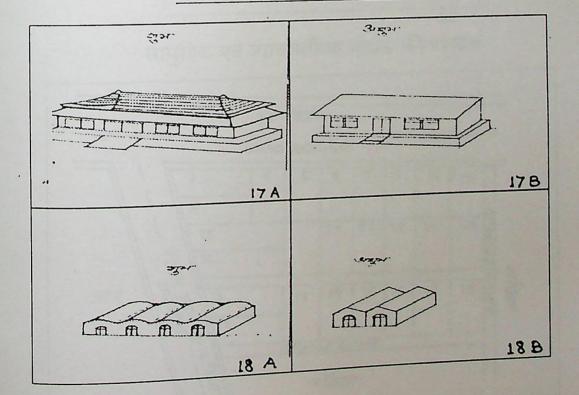
स्त्रोत : संपूर्ण वास्तु विज्ञान- डा. द्विवेदी भारतीय वास्तु एवं भवन निर्माण - पं. शर्मा

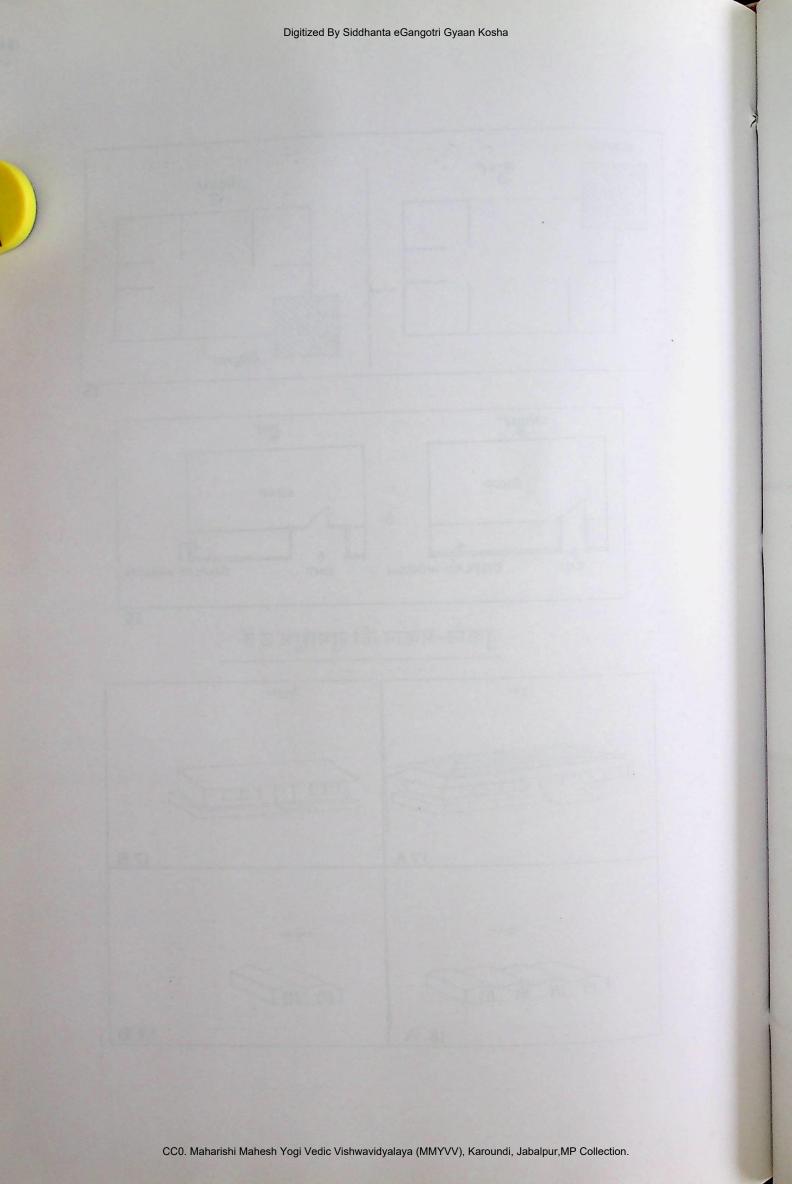
PROPERTY AND ADDRESS OF THE PARTY AND ADDRESS



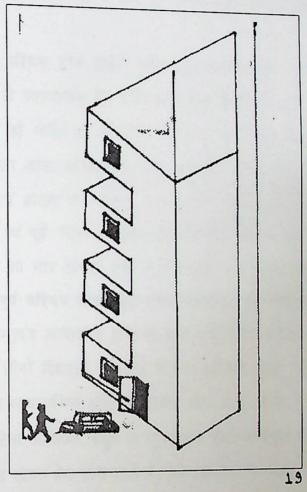


दुकान-मकान की शुभाशुभ छ तें

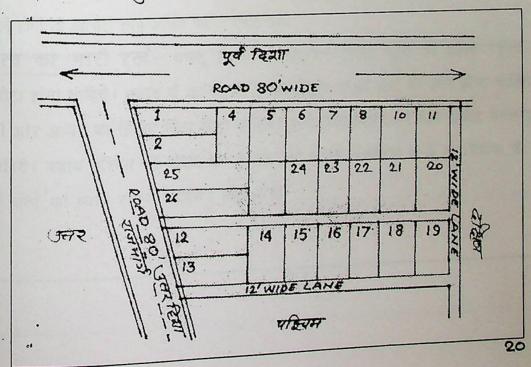




बहुमंजिले व्यावसायिक कॉम्पलेक्स की सभी मंजिलें समानानुपात में होनी चाहिए



सामुहिक एवं व्यावसायिक भूखंड की पहचान



Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection. ओर है। क्र.11 किन्तु यह भूखंड आग्नेय कोण में स्थापित होने के कारण वास्तु की दृष्टि से अनुकूल नहीं है। भूखंड क्र. 12 श्रेष्ठ है क्योंकि उत्तर और पूर्व दोनों तरफ मार्ग है तथा भूखंड का ईशान कोण भी बढ़ा हुआ है।

भूखंड क्र. 19 में पूर्व पश्चिम और दक्षिण तीन ओर राजमार्ग है। यह भूखंड आवासीय और व्यवसायिक दोनों नजिरये से लाभदायक है। यदि उत्तर-पूर्व दिशा की ओर से कोई राजमार्ग आकर किसी भू-खंड पर समाप्त हो जाता हो तो ऐसा भू-खंड शुभ माना जाता है। ऐसे भू-खंडों को व्यावसायिक परिसर में बदला जाना लाभदायक माना जाता है। (चित्र-27)

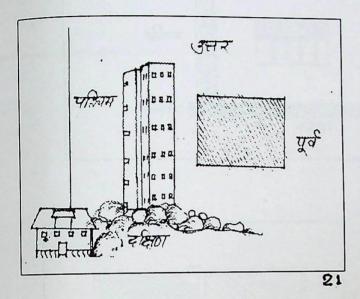
कमिशिलय काम्पलेक्स एवं होटल जो पर्वतीय क्षेत्र में हो, उसके लिए भूखंड का चयन ऐसा किया जाना चाहिए जिसमें उत्तर एवं पूर्व दिशा में पर्वत छोटा हो तथा पश्चिम एवं दक्षिण में ऊंचा हो। पश्चिम व दक्षिण दिशा में बिल्डिंग का भार हो तो ऐसा भूखंड शुभ माना जाता है। (चित्र 21)

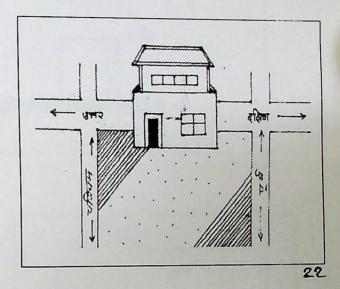
व्यवसायिक परिसर में पूर्व पश्चिम और उत्तर तीनों दिशाओं में मार्ग हो तो उसे उत्तम श्रेणी का माना जाता है किन्तु ऐसा भूखंड आवासीय दृष्टि से शुभ नहीं होता। (चित्र 22) यदि आवासीय भूखंड के पूर्व पश्चिम और दक्षिण तीनों दिशाओं की ओर मार्ग हो तो इसे अच्छा नहीं माना गया है लेकिन इस तरह के भूखंड का उपयोग व्यवसायिक दृष्टि से अत्यंत श्रेष्ठ माना जाता है। (चित्र 23)

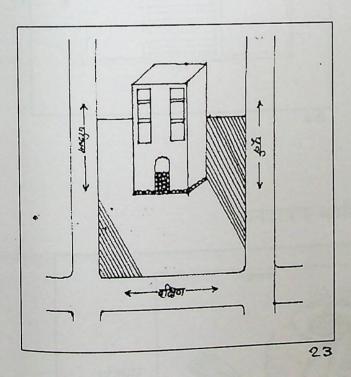
यदि किसी व्यवसायिक परिसर अस्पताल, स्कूल या बहुउद्देशीय भूखंड के ईशान की ओर नहर नदी या पानी का कुदरती स्त्रोत है तो ऐसा भूखंड अत्यंत श्रेष्ठ माना जाता है। यदि इस दिशा में नलकूप, कुंआ आदि भी हो तो भी यह शुभकारी होता है। ऐसे भूखंड पर यदि अस्पताल होगा तो रोगी तुरंत स्वस्थ होंगे, स्कूल होगा तो बच्चे कामयाब होंगे तथा दकानें होगी तो व्यापारी लाभ अर्जित करेंगे। (चित्र-24)

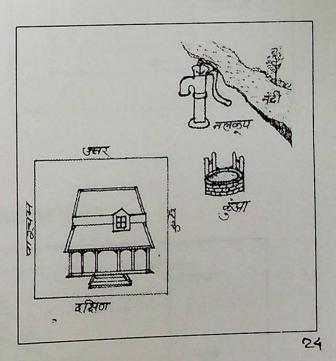
नैऋत्य को भारी रखें — वास्तु शास्त्र के अनुसार ईशान दिशा का उठाव नैऋत्य दिशा से हमेशा छोटा होना चाहिये। मकान के आंगन का ढलान ईशान (उत्तर पूर्व) की ओर होना चाहिये। नैऋत्य दिशा की ओर आंगन का हिस्सा मोटा होना चाहिये। इसी तरह ईशान की ओर दीवार अपेक्षाकृत पतली होनी चाहिये। बजाय पश्चिम की दीवार के। होटल रेस्ट हाउस धर्मशला आदि के निर्माण के समय भी उपरोक्त बातों का ध्यान रखना चाहिये। (चित्र-25)

कमर्शियल काम्पलेक्स

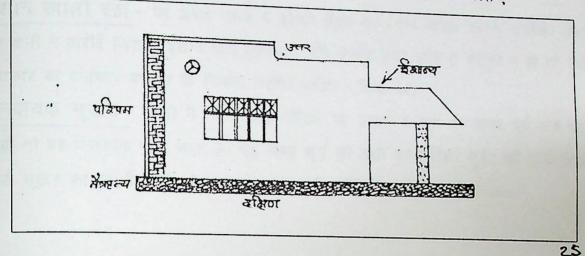


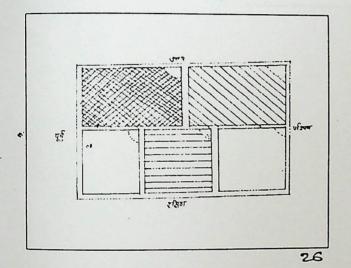


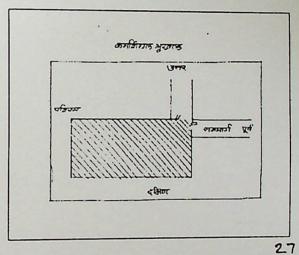




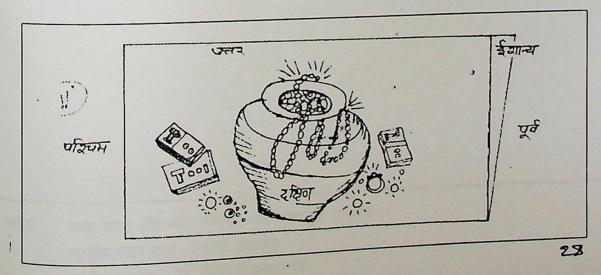
होट ल/रेस्ट हाउस का नैऋत्य हमेशा भारी होना चाहिए







धनदायक कामिशंयल भूखंड



Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection. र्शान खाली रखें – घर अथ्वा सयंत्र में ईशान दिशा का स्थान खाली रखना चाहिये। ऐसा भूखांड कभी न खरीदें जिसका ईशान कटा हुआ हो। यदि भूखंड चारों ओर से बराबर न हो तो उसे आयताकार या वर्गाकार बनाकर ही निर्माण कराना चाहिये। (चित्र-26)

धनदायक भूखंड — किसी भे व्यवसायिक परिसर का उत्तरी व पूर्वी या उत्तर पूर्व क्षेत्र बढ़ा हुआ हो तो वह धनदायक माना जाता है। पूर्व दिशा सूर्य की तथा उत्तर दिशा कुबेर की मानी जाती है। ऐसे भूखंड का स्वामी कीर्ति के साथ साथ धन भी अर्जित करता है। (चित्र-28)

स्त्रोत : वास्तु शास्त्र और भवन निर्माण – डा. उमेश पुरी ज्ञानेश्वर भारतीय वास्तु कला– एस.सी. सरदाना कर्मशियल वास्तु – डा. द्विवेदी के आधार पर

अध्याय षष्ठम

जिले के सीयेन्ट उद्योग का वास्तुशास्त्रीय अध्ययन

- अ. सीमेन्ट संयंत्रों की संरचना
- व. सीमेन्ट उद्योग की समस्यावें एवं सुझाव
- स. उपसंहार

अध्याय षष्ठम

जिले के सीमेन्ट उद्योग का वास्तुशास्त्रीय अध्ययन

- अ. सीमेन्ट संयंत्रों की संरचना
- ब. सीमेन्ट उद्योग की समस्यायें एवं सुझाव
- स. उपसंहार

अध्याय षष्ठम

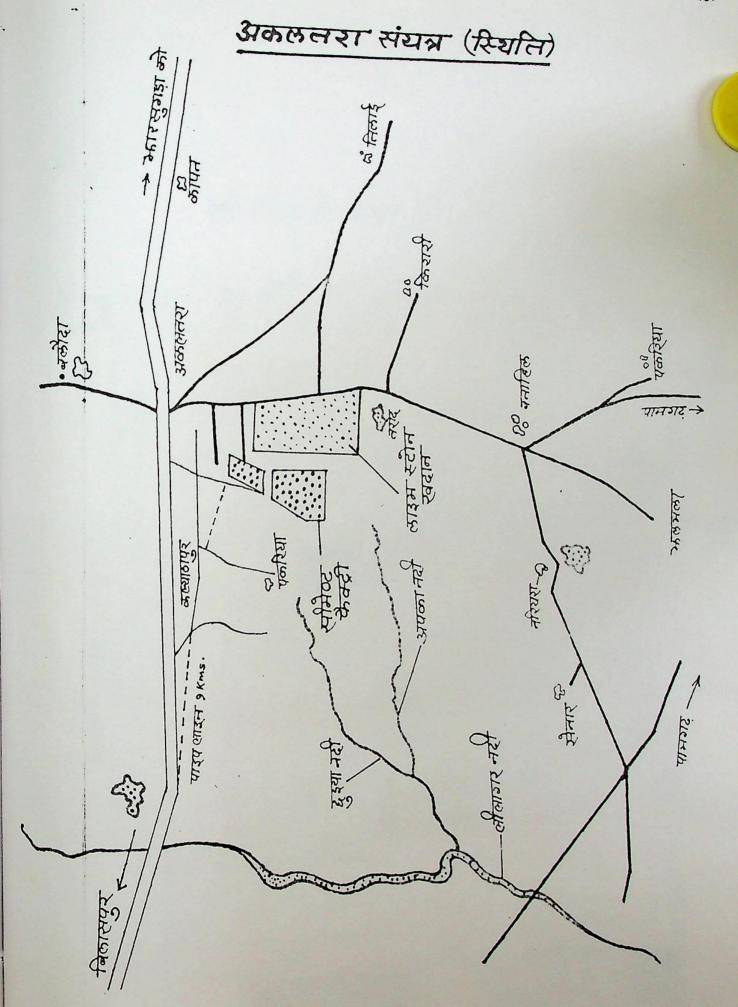
जिले के सीमेन्ट उद्योग का वास्तुशास्त्रीय अध्ययन

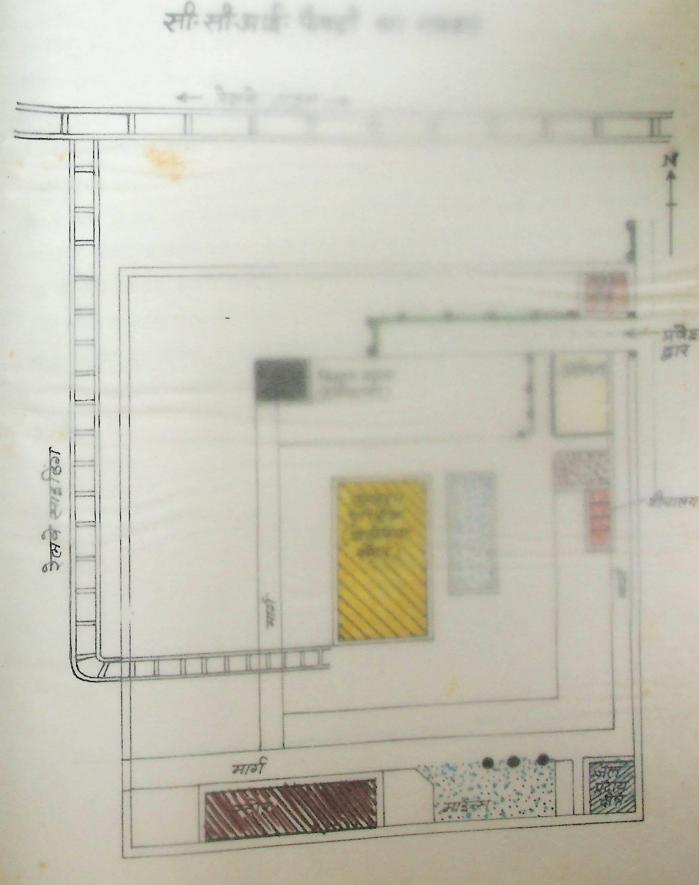
(अ) सीमेन्ट संयंत्रों की संरचना

स्थापत्य सिद्धांतों की विवेचना के बाद यह साबित हो जाता है कि उद्योगों की संरचना का प्रभाव साबित उसके संचालन पर पड़ता है। वैदिक सिद्धांतों में वास्तु सूत्रों का जो उल्लेख मिलता है उसका परिपालन करने वाली औद्योगिक इकाई लाभ अर्जित करने लगती है। व्यवसाय और उद्योग में प्राकृतिक नियमों का पालन विकास की गति और तेज कर सकता है। जिले के सीमेन्ट संयंत्रों की संरचना का अध्ययन वास्तु शास्त्रीय दृष्टिकोण से करने पर यह संकेत मिलते हैं कि इन इकाईयों का वास्तु दोष दूर करने पर प्रगति का मार्ग खुल सकता है।

सीसीआई सीमेन्ट संयंत्र की संरचना

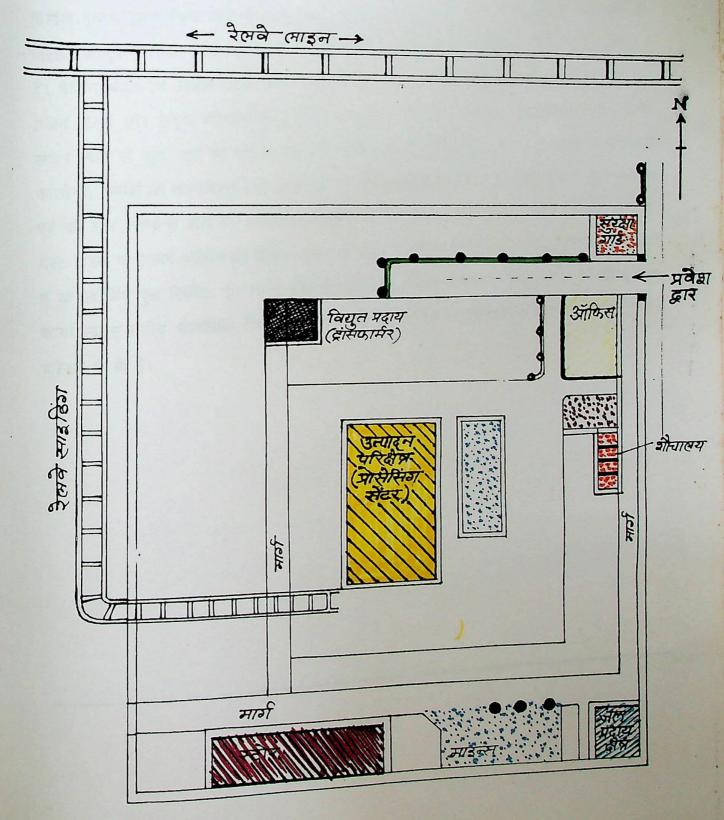
सीसीआई संयंत्र का मुख्य द्वार पूर्व दिशा की ओर है। संयंत्र का कच्चा माल रखने की व्यवस्था दिक्षण में है। इसी के करीब भंडार कक्ष भी है। विद्युत ट्रांसफार्मर संयंत्र परिसर के उत्तर में स्थापित हैं लोडिंग पश्चिम दिशा की ओर से होती है। पश्चिम में रेलवे की साइडिंग भी है। कीलन एवं संयंत्र में प्रोसेंसिंग यूनिट परिसर के मध्य में है। तैयार उत्पादन रखने की व्यवस्था पश्चिम दिशा में है। जल की व्यवस्था दो दिशाओं में अलग-अलग की गई है। संयंत्र के लिए दिक्षण एवं कालोनी के लिए उत्तर में ट्येबवेल एवं जल टंकी बनाई गई है। कच्चे माल के लिए खदान संयंत्र से कुछ दूर हटकर है जिसका मुख्य द्वार पूर्व दिशा की ओर है। संयंत्र परिसर में भूमि का ढाल पूर्व की दिशा की ओर है। अर्थात् संयंत्र के मुख्य द्वार का हिस्सा नीचा एवं पिछला हिस्सा ऊंचा है। टाउनशिप परिसर के बाहर है। संयंत्र से कुछ दूरी पर दिक्षण मुखी मंदिर है जो पूर्व दिशा की ओर स्थित है।





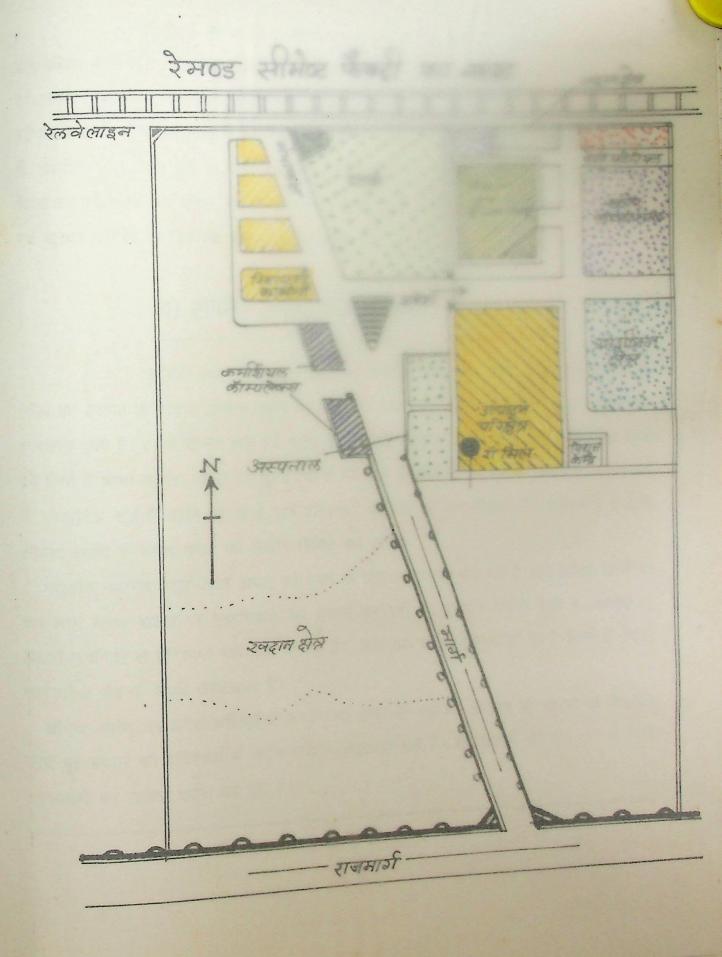
CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.

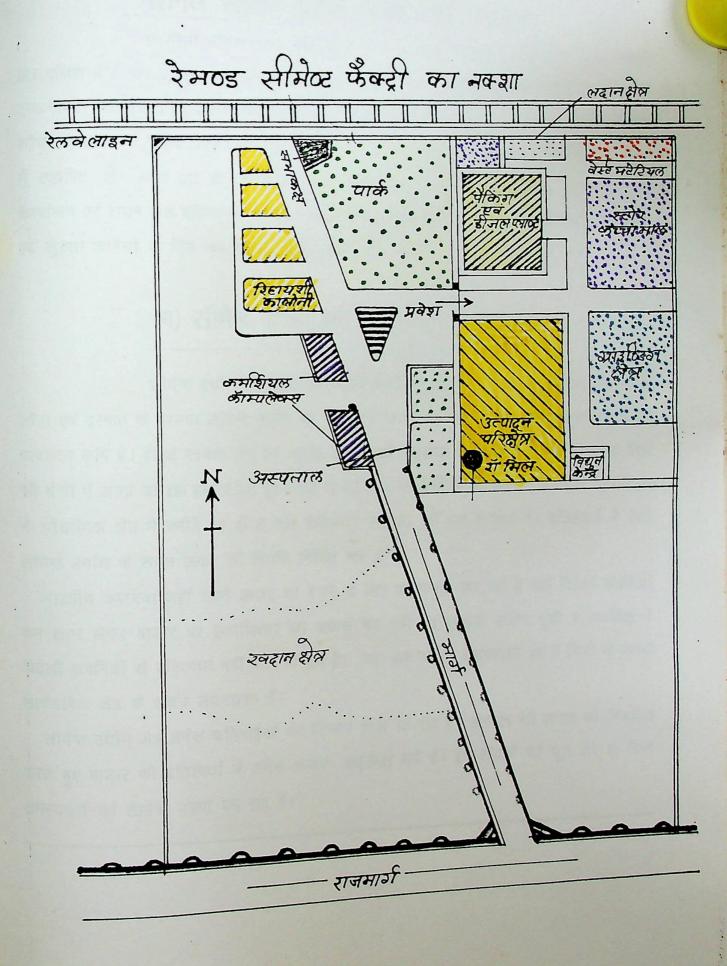
सी आई फैक्ट्री का नक्शा

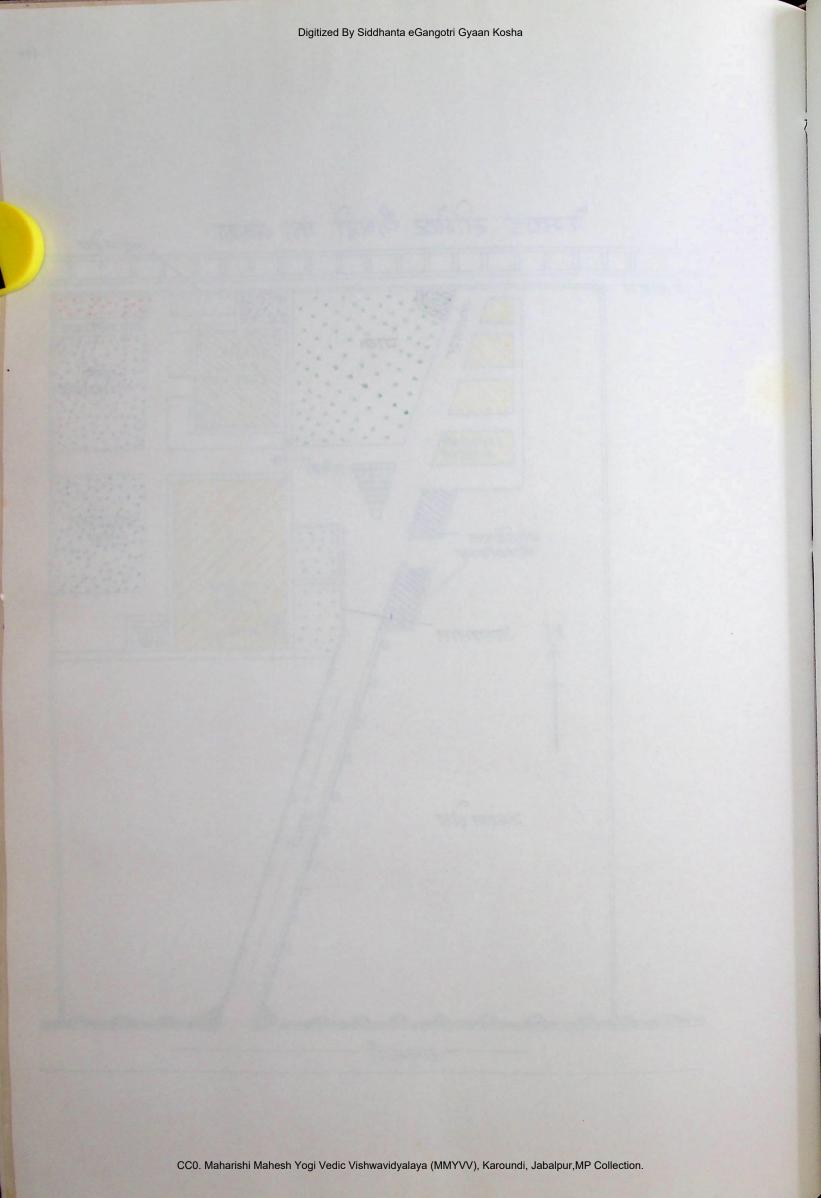


रेमण्ड सीमेन्ट संयंत्र गोपालनगर की संरचना

बिलासपुर-रायगढ़ मार्ग पर गोपालनगर में स्थित यह संयंत्र मुख्य मार्ग से करीब 20 किमी अंदर की ओर है। एक वृहद परिसर में संयंत्र, आवासीय कालोनी, गेस्ट हाउस आदि का निर्माण पृथक-पृथक किया गया है। फैक्ट्री का मुख्य द्वार एक ही है, जहां से परिवहन भी होता है। परिसर के पूर्व में स्थित संयंत्र की मशीनें तीन हिस्सों में बंटी हुई हैं। कीलन, रॉ मिल दक्षिण दिशा में है। पेकिंग प्लांट एवं डीजल प्लांट उत्तर दिशा में है। पावर प्रोजेक्ट दिक्षण दिशा की ओर है। माल लदान, रेलवे और सड़क परिवहन के लिए एक ही स्थान से होता है। रेलवे लाईन उत्तर की ओर है। संयंत्र स्थल से कुछ दूरी पर पश्चिम की ओर माइन्स है। संयंत्र परिसर के दूसरे हिस्से में रिहायसी कालोनी, कमिश्चिल काम्पलेक्स तथा मुख्य द्वार के करीब अस्पताल स्थित है। इसी क्षेत्र में आगे चलकर पूर्व की ओर कान्फेन्स हाल है। आवासीय कालोनी के लिए अलग से पेयजल, टंकियां बनायी गयी हैं। गेस्ट हाउस के सामने पश्चिम का हिस्सा उद्यान व स्कूल के मैदान के लिए रिक्त है। वहीं पीछे के हिस्से में दो स्वीमिंग पुल निर्मित है। रेमण्ड सीमेन्ट संयंत्र का विक्रय कार्यालय गोपालनगर में नहीं है। यह कार्यालय संभागीय कार्यालय बिलासपुर में सत्यम काम्पलेक्स में स्थित है। कार्मिक विभाग संयंत्र परिसर में ही है।







नेशनल सीमेन्ट संयंत्र तिफरा की संरचना

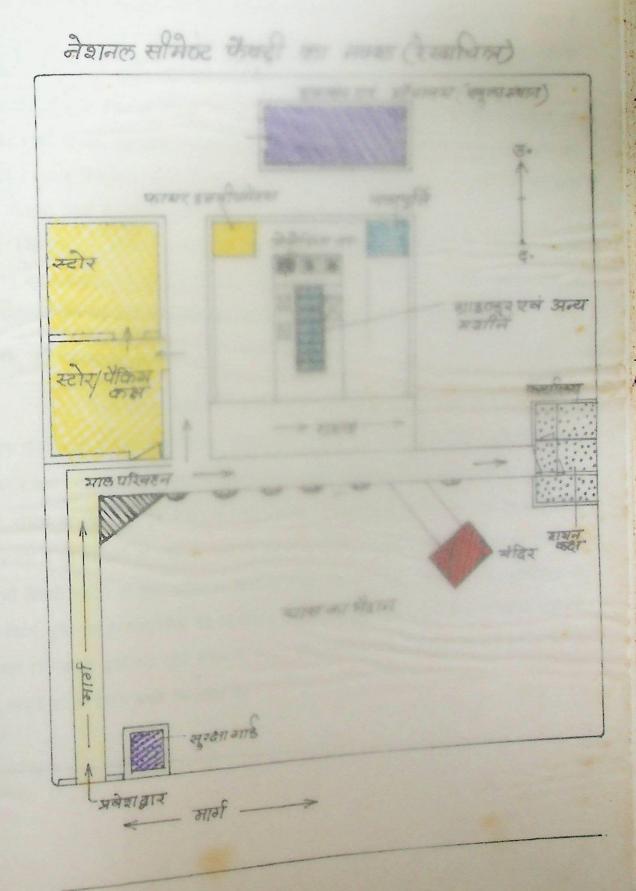
एनसीसी सीमेन्ट संयंत्र बिलासपुर शहर के दक्षिण पश्चिम में स्थित है। इसका प्रवेश द्वार दक्षिण में है वहीं ग्राइन्डर एवं अन्य भारी मशीनें ब्रम्ह स्थान अर्थात् परिसर के मध्य में स्थापित हैं। द्रांसफार्मर, जनरेटर आदि उत्तर पश्चिम के कोने में स्थापित हैं। जल का स्त्रोत उत्तर पूर्व में हैं। शौचालय संयंत्र के पिछले हिस्से उत्तर दिशा की ओर बना हुआ है। स्टोर एवं पैकिंग कक्ष दक्षिण पश्चिम में स्थापित हैं। प्रवेश द्वार से लगा हुआ सुरक्षा दफ्तर है जो दक्षिण पश्चिम क्षेत्र में है संयंत्र का कार्यालय एवं शयन कक्ष दक्षिण पूर्व की ओर स्थापित हैं। संयंत्र परिसर में तीन गोदामे, एक भंडार कक्ष एवं सुरक्षा कर्मियों के लिए एक कमरा सहित खुला क्षेत्र भी हैं।

(ब) सीमेन्ट उद्योग की समस्याएं एवं सुझाव

सीमेन्ट उद्योग एक वृहद उद्योग की श्रेणी में आता है। भारत के आर्थिक विकास में लोहा एवं इस्पात के पश्चात सीमेन्ट उद्योग का महत्वपूर्ण स्थान है। विकासशील देश –भारत का प्रमुख व्यवसाय कृषि है। इसके पश्चात लघु एवं कुटीर उद्योगों को प्रमुखता दी जाती है लेकिन विकसित देशों की श्रेणी में आता जा रहा हमारा देश वृहद उद्योगों की ओर भी तेजी से बढ़ रहा है। आर्थिक उदारीकरण ने औद्योगिक क्षेत्र में क्रांति ला दी है वहीं प्रतिस्पर्धा का दौर भी चल निकला है। प्रतिस्पर्धा ने देशी सीमेन्ट उद्योग के समक्ष संकट की स्थिति निर्मित कर दी है।

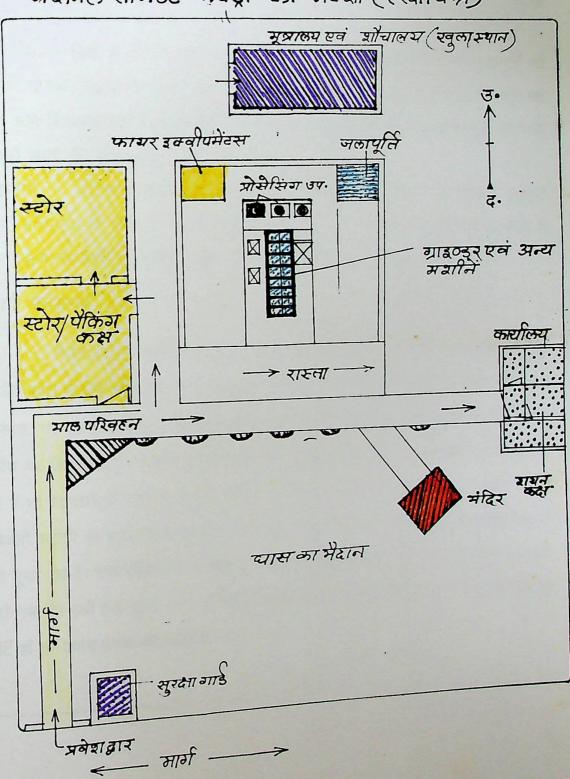
भारतीय कंपनियां जहां अपने उत्पाद को बेचने के लिए जद्दोजहद कर रही हैं वहीं विदेशी कंपनियां कम लाभ लेकर बाजार पर एकाधिकार का प्रयास कर रही हैं। सीमेन्ट उद्योग पूंजी व तकनीक में विदेशी कंपनियों से प्रतिस्पर्धा नहीं कर पा रहा है। जहां तक सवाल समस्याओं का है निजी से ज्यादा सार्वजनिक क्षेत्र के संयंत्र संकटग्रस्त हैं।

सीमेन्ट उद्योग अब अनेक कठिनाईयों का शिकार होता जा रहा है। उत्पादन की लागत को नियंत्रित करते हुए बाजार की प्रतिस्पर्धा में अनेक संयंत्र लड़खड़ा गये हैं। इन संयंत्रों को मूल रूप से निम्न समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।



CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur, MP Collection.

नेशनल सीमेठट फेक्ट्री का नक्शा (रेखाचित्र)



--- मार्ग ---

कच्चे माल की समस्या-

- (1) चूना कच्चा माल किसी भी उद्योग का जीवन है सहज रूप से कच्चा माल उपलब्ध होने पर ही उद्योग सफलतापूर्वक संचालित हो पाता है सीमेन्ट निर्माण के लिए आवश्यक कच्चा माल चूना है जिसकी अंचल में कमी नहीं है लेकिन उसकी किस्म, उत्पाद की क्वालिटी को प्रभावित करती है। घटिया किस्म का चूना होने से सीमेन्ट का स्तर कमजोर हो जाता है।
- (2) को यला जिले में को यले का अकूत भंडार है। पूरे देश में यहां से को यला आपूर्ति की जाती है। बाकी मोंगरा, छुराकछार एवं ब्रजराजनगर से को यले की आपूर्ति जिले के सीमेन्ट उद्योग को की जाती है। आम शिकायत रही है कि को यले की क्वालिटी कमजोर होती है तथा उसमें चूरे की मात्रा अधिक मिलायी जाती हैं इससे उत्पादन प्रभावित होता है।
- (3) जिप्सम सीमेन्ट उत्पादन के लिए तीसरा आवश्यक तत्व जिप्सम है जिसकी आपूर्ति राजस्थान एवं आंध्रप्रदेश से होती है सम्पूर्ण भारत में आपूर्ति के कारण यहां जिप्सम पर्याप्त मात्रा में और नियंत्रित मूल्य पर नहीं मिल पाता। इससे उत्पादन लागत में वृद्धि हो रही है।

बिजली की समस्या -

वियुत उत्पादन करने वाले अंचल के उद्योग आज भी बिजली संकट के कारण बीमार हो जाते हैं। मालवा सहित प्रदेश के दूसरे भागों को तथा दूसरे प्रदेशों को बिजली देने की नीति ने जिले के उद्योगों को भूखा रख दिया है साल भर यहां बिजली संकट की स्थिति निर्मित रहती है जिसका सीधा असर उद्योगों पर पड़ रहा है। लगातार चौवीस घंटे विजली आपूर्ति न होने के कारण उत्पादन सुचारू रूप से नहीं हो पाता वहीं इस व्यवधान के कारण लागत में भी बढ़ोत्तरी हो जाती है। धान की कसल के दौरान तथा रबि के समय खेतों को पानी के लिए होने वाली बिजली कटौती का असर उद्योग पर पड़ता है। वियुत मंडल की अनाप-शनाप नीति का खामियाजा भी सीमेन्ट उद्योग भुगत रहा है। सार्वजनिक क्षेत्र का विशाल संयंत्र सीसीआई आज बिजली संकट के कारण तालाबंदी का शिकार हो गया है। इसी तरह दूसरे संयंत्र भी बिजली संकट के कारण लड़खड़ा रहे हैं। यदि सुचारू रूप से विजली आपूर्ति हो तो उद्योग प्रगित कर सकते हैं।

श्रमिक संबंधी समस्याएं-

सीमेन्ट उद्योग तकनीकी रूप से कुशल श्रमिकों के सहारे प्रगति कर सकता है लेकिन कुशल श्रमिकों का अभाव वर्षों से बना हुआ है। श्रमिकों के प्रशिक्षण के लिए यहां कोई सुविधा नहीं है जिससे वे अपने कार्य में दक्ष हो सके। इसका सीधा असर उद्योग के उत्पादन पर पड़ता है। श्रमिक कल्याण और सामाजिक सुरक्षा के लिए अनेक नियम बनाये गये हैं। उसके बावजूद उस पर अमल नहीं किया जाता। सामाजिक सुरक्षा प्रमाण पत्र सन् 1982, वृद्धावस्था पेशन, कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम 1952, प्रसूति लाभ अधिनियम 1961 राज्य बीमा अधिनियम 1984, अनुग्रह अधिनियम 1984, श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम का पालन करना अनिवार्य है लेकिन इनका अक्षरशः पालन संयत्रों में नहीं होता। नतीजतन श्रमिक अपने संस्थान के प्रति समर्पित नहीं रह पाते। दूसरी ओर मजदूरी दर में निरंतर वृद्धि से उद्योग घाटे की ओर जा रहे हैं।

पूंजी की समस्या -

सरकारी क्षेत्र जहां कुप्रबन्धन के शिकार हैं वहीं निजी क्षेत्र पूंजी की समस्या से ग्रस्त हैं। आज सीमेन्ट उद्योग जिस प्रतिस्पर्धा के दौर से गुजर रहा है उसमें पूंजी का सबसे ज्यादा महत्व है। लघु इकाईयां वित्तीय संकट के कारण बंद हो रही हैं वहीं बड़ी सरकारी क्षेत्र की इकाईयां लागत और विक्रय के फासले को संतुलित नहीं कर पाने के कारण पिछड़ रही है। स्थिति यह है कि उत्पादन की कुल लागत की अपेक्षा उत्पाद का मूल्य नहीं मिल रहा है। वित्तीय संकट दूर कर देने से ऐसे अनेक उद्योग फिर से शुरू हो सकते हैं।

अनुसंधान संबंधी समस्या-

अनुसंधान न होने के कारण उत्पाद के स्तर को बरकरार रखना संभव नहीं हो पाता। इसके लिए अनुसंधान विशेषज्ञ की आवश्यकता होती हैं। यदि गुणवत्ता बेहतर हो तो उत्पाद बाजार में टिक सकता है। गुणवत्ता बरकरार रखने के लिए तकनीकी विशेषज्ञों की भी मदद जरूरी है। विक्रय नीति, उपभोक्ता व्यवहार का भी काफी असर सीमेन्ट उद्योग पर पड़ रहा है। रेमण्ड के अलावा अन्य संयंत्रों में विक्रय विपणन और उपभोक्ता नीति संतोषजनक नहीं है।

the ten of a people is excluded to the first to the first to the first to

पर्यावरण एवं औद्योगिक सुरक्षा –

वर्तमान औद्योगिक नीति के तहत औद्योगिक सुरक्षा एवं पर्यावरण की रक्षा के लिए संयंत्रों को काफी प्रयत्न करना होता है। जोखिम पूर्ण कार्य में शून्य दुर्घटना का आंकड़ा पाना उद्योगों के लिए चुनौतीपूर्ण है। श्रमिकों की सुरक्षा का नाता सीधे उत्पादन एवं व्यवसाय से है, इसलिए उनकी सुरक्षा का पर्याप्त उपाय करना जरूरी है। जिले के सीमेन्ट संयंत्रों में इसकी कहीं-कहीं कमी परिलक्षित होती है। पर्यावरण के प्रति सरकार का रवैया अब और दृढ़ हो गया है। बगैर पर्यावरणीय अनुमित के संयंत्र नहीं लगाया जा सकता। संयंत्र स्थापना के बाद भी पर्यावरण नियमों का सख्ती से पालन करना जरूरी होता हैं उद्योग प्रबंधन यह तर्क देते हैं कि औद्योगिक सुरक्षा एवं पर्यावरणीय नियमों का पालन करने में बड़ी राशि खर्च करनी पड़ती है जिसका असर उत्पादन लागत पर पड़ता है।

ब. सीमेन्ट उद्योग की समस्यायें एवं सुझाव

सी.सी.आई. सीमेन्ट संयंत्र अकलतरा-

सीमेन्ट कार्पोरेशन आफ इंडिया द्वारा सन् 1979 में सीमेन्ट संयंत्र की स्थापना की गई। सन् 1981 में इस संयंत्र ने उत्पादन शुरू किया। 4 लाख टन प्रतिवर्ष क्षमता वाले इस संयंत्र में पिछले कुछ वर्षों से उत्पादन बंद है संयंत्र बंद होने की सबसे बड़ी वजह विद्युत समस्या है। प्रारंभ से ही यह शिकायत रही है कि कम बिजली मिलने से उत्पादन में गिरावट आ रही है बाद के वर्षों में विद्युत का बकाया 1 करोड़ रूपये तक पहुंच गया। विद्युत मंडल के साथ हुई वार्ता में यह राशि कुछ कम की गई लेकिन भुगतान न होने के कारण अंततः संयंत्र बंद करना पड़ा। संचालकों का मत था कि उत्पादन पर लागत अधिक आ रही है इसलिए संयंत्र बंद कर दिया गया। इसे बीमार इकाई घोषित करने का प्रयास भी किया गया।

बंद स्थिति में भी विद्युत मंडल का सरचार्ज आज लाखों में पहुंच चुका है सरकारी क्षेत्र के इस संयंत्र को अंततः बेचने का फैसला लिया जा चुका है। उधर विद्युत मंडल के साथ विवाद अदालत में लंबित है और कर्मचारी संयंत्र प्रारंभ करने की अपनी मांग पर अंडिंग हैं। इसके अलावा सीसीआई में कच्चे माल की समस्या, अकुशल श्रमिकों की भर्ती, प्रबंध तंत्र की लापरवाही जैसी समस्याएं भी रहीं है जिन्हें हल किये बगैर उद्योग का प्रारंभ होना संभव नहीं नजर आता। संगठन एवं प्रबंधन में चुस्ती, उद्योग का अनिवार्य हिस्सा है। पिछली स्थितियों का अवलोकन करने से यह तथ्य प्रबंधन में चुस्ती, उद्योग का अनिवार्य हिस्सा है। पिछली स्थितियों का अवलोकन करने से यह तथ्य सामने आता है कि प्रबंध व संगठन के अभाव में यहां तालाबंदी की नौबत आ गई है। इसके अलावा विक्रय संवर्धन की व्यवस्था भी आवश्यक हैं क्योंकि सरकारी क्षेत्र होने के कारण उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा सरकार के हिस्से (लेवी विक्रय) में चला जाता है।

उत्पाद को बाजार की प्रतिस्पर्धा में न ला पाना असफलता का बहुत बड़ा कारक है। अनुसंधान के जिरये क्वालिटी में सुधार एवं विक्रय की बेहतर व्यवस्था की जाए तो आज भी संयंत्र चल सकता है। उत्तम किस्म के कोयले, पूंजी, कुशल श्रमिक तथा यातायात सुविधा की मांग पर कभी ध्यान

नहीं दिया गया। इन सुझावों पर यदि अमल किया जाए तो सीसीआई का यह बंद संयंत्र बाजार की प्रतिस्पर्धा में शामिल हो सकता है। इस उद्योग के लिए लाइसेंस की नीति भी उदार नहीं है। कभी लाइसेंस जरूरी कर दिया जाता है तो कभी मुक्त कर दिया जाता है, परिणामतः निजी पूंजीपित इस ओर आकर्षित नहीं होते। 4 लाख टन सीमेन्ट उत्पादन क्षमता प्राप्त करने के लिए आज की स्थिति में करीब 30 से 32 करोड़ रूपये के विनियोजन की आवश्यकता होती है।

अतः वित्तीय संस्थाओं द्वारा दीर्घकालीन ऋण मिलने पर ही संयंत्र के पटरी पर आने की उम्मीद की जा सकती है। लागत मृल्य को नियंत्रित करना सबसे बड़ी जरूरत है क्योंकि प्रतिष्ठित कंपनियां उत्कृष्ट उत्पादन कम कीमत में बाजार में दे रही हैं। सस्ते मृल्य के बगैर, बाजार में प्रतिस्पर्धा संभव नहीं है। सीमेन्ट वितरण के लिए विक्रय संस्थाओं तक सीमेन्ट पहुंचाने हेतु रेलवे वैगन की समस्या अत्यंत जटिल है। सीमित मात्रा में और क्षतिग्रस्त वैगन मिलने के कारण विक्रय प्रभावित हो रहा है सरकारी क्षेत्र होने के कारण इस ओर गंभीरता से ध्यान नहीं दिया गया। संयंत्र को अच्छे किस्म का कोयला उपलब्ध न कराने की शिकायतें भी रही है जिन पर गौर करना जरूरी है।

वास्तु के नजरिये से -

सीसीआई सीमेन्ट संयंत्र में वास्तुजिनत चंद फेरबदल करने से संयंत्र लाभ की स्थिति में आ सकता है। वर्तमान में प्रवेश द्वार ईशान में है वह उत्तम है लेकिन ब्रम्ह स्थान में पूरा उत्पादन क्षेत्र आना त्रुटिपूर्ण है। इसी तरह ट्यूबेवल अथवा भूमिगत जल टंकिया भी वास्तु जिनत रूप से स्थापित नहीं की गई है। विद्युत ट्रांसफार्मर आग्नेय (दक्षिण पूर्व) दिशा में होना चाहिए। इसी तरह तैयार माल वायव्य दिशा (उत्तर पश्चिम) में होना चाहिये जो वर्तमान में नहीं है। फैक्ट्री में सुरक्षा कार्यालय पूर्व में है जिसे उत्तर दिशा की ओर होना चाहिए। पुरानी वृहद संरचना के कारण पूर्ण वास्तु सिद्धांत इस संयंत्र में लागू कर पाना किन है। भूमि की दृष्टि से यहां की भूमि ज्यादा अनुपयुक्त नहीं है। इसी तरह भूमि का ढलान भी अपेक्षाकृत ठीक कहा जा सकता है।

संयंत्र का कच्चा माल दक्षिण पश्चिम (नैऋत्य) दिशा से प्रारंभ होकर उत्तर पश्चिम (वायव्य) दिशा में उसकी निकासी होनी चाहिए। उत्तर पूर्व दिशा (ईशान) के क्षेत्र को खाली रखकर पार्क आदि विकसित करना चाहिए जो सीसीआई सीमेन्ट संयंत्र में नहीं है। सीमेन्ट संयंत्रों की तकनीक निरंतर बदल रही है।

पूर्व में जब यह संस्थान स्थापित हुआ तब अलग-अलग इकाईयां स्थापित की जाती थी परंतु आधुनिक तकनीक में बड़ी यूनिट एक ही स्थान पर होती है इसलिए जरूरी है कि संयंत्र स्थापित करने के पूर्व ही पूर्ण वास्तु सिद्धांतों का पालन कर लिया जाए।



रेमण्ड सीमेन्ट संयंत्र

गोपालनगर स्थित रेमण्ड सीमेन्ट संयंत्र में वर्तमान में सबसे बड़ी दिक्कत उत्पादन क्षमता के अनुरूप बाजार की तलाश करना है। उत्पादन क्षमता एवं तकनीक में यह संयंत्र ज्यादा पीछे नहीं है लेकिन इसके अत्याधुनिकीकरण की आवश्यकता जरूर महसूस की जा रही है। उत्पादन के लिए निश्चित लक्ष्य निर्धारित कर गुणवत्ता पर ध्यान देना चाहिए। कंपनी द्वारा बाजार अनुसंधान में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता संयंत्र के जानकार प्रतिपादित करते हैं। इसके अलावा कर्मचारियों को प्रशिक्षण, उनकी क्षमता का पूर्ण दोहन भी किया जाना चाहिए। विदेशी कंपनियों के प्रवेश से सीमेन्ट बाजार अभी मंदी के दौर में है। इसके बावजूद रेमण्ड सीमेन्ट ने अपनी गुणवत्ता और चुस्त प्रबंधन की बदौलत बाजार पर कब्जा जारी रखा है। अब इस कीर्तिमान को जारी रखने हेतु काफी मेहतन की जरूरत होगी क्योंकि विदेशी कंपनियां उपभोक्ता सेवा को महत्व देते हुए कम दर पर सीमेन्ट विक्रय से नहीं चूकेगीं। जिले में रेमण्ड सीमेन्ट आज भी सिरमौर है लेकिन आचिलक क्षेत्र में एसीसी, एलएनटी जैसी कंपनियां बाजार पर तेजी से कब्जा करती जा रही है। जहां तक सवाल औद्योगिक और पर्यावरणीय सुरक्षा का है, रेमण्ड इस क्षेत्र में काफी आगे है। पिछले तीन वर्षों से लगातार संयंत्र को औद्योगिक सुरक्षा के लिए पुरष्कृत किया जा रहा है।

वास्तु के नजरिये से-

रेमण्ड सीमेन्ट संयंत्र को प्राकृतिक रूप से ही कुछ वास्तुजनित लाभ मिल गया है। रिहायसी कालोनी, प्रवेश द्वार, माइंस की स्थिति बहुत ज्यादा वास्तु दोष से प्रभावित नहीं है, लेकिन संयंत्र के भीतर क्लिन, बायलर, आदि वास्तु अनुरूप स्थापित कर दिये जाये तो संयंत्र और भी उन्नति कर सकता है। संयंत्र प्रबंधन के अनुसार स्थापना के बाद वास्तु नजरिये से सुधार नहीं किया गया है क्यों कि पूरी इकाई को इधर–उधर करना असंभव है। बनावट की दृष्टि से रेमण्ड ने अपने गेस्ट हाउस, स्वीमिंग पुल, आवासीय कालोनी, स्कूल, अस्पताल का निर्माण उत्कृष्ट तरीके से कराया है इसका फायदा भी नजर आ रहा हैं यदि वास्तु सिद्धांतों के अनुसार बदलाव कर दिये जाएं तो यह उद्योग उत्तरोत्तर वृद्धि कर सकता है।

THE RESIDENCE OF SHAPE THE PARTY OF SHAPE THE PARTY OF TH

नेशनल सीमेन्ट कार्पोरेशन

तिफरा स्थित औद्योगिक प्रक्षेत्र में स्थापित एनसीसी सीमेन्ट संयंत्र लघु इकाई होने के कारण अनेक कठिनाईयों से गुजर रहा है। कुशल श्रमिकों का अभाव यहां भी है जिसके कारण उत्पादन में दिक्कतें आती हैं। दूसरी ओर श्रमिक सुविधाओं की मांग करते हैं जो लघु इकाई होने के कारण संभव नहीं होता। मनोरंजनगृह, आवास, शिक्षा, जलपान गृह, शिशु गृह, उद्यान, अस्पताल, जैसी मूल सुविधाएं संयंत्र प्रबंधन नहीं दे पाता। कर्मचारियों को प्रशिक्षण देकर कुशल बनाने की कोई नीति नहीं है। सामाजिक सुरक्षा की दृष्टि से दुर्घटना बीमा, प्रसृति लाभ, वृद्धावस्था पेंशन आदि का प्रावधान करना लघ् इकाई होने के कारण यहां संभव नहीं है। बिजली की दिक्कत हर उद्योग की तरह यहां भी है। केन्द्र सरकार ने उत्पादन शुल्क दो सौ नब्बे रूपए प्रति टन निर्धारित की है लेकिन इस पर कोई छूट नहीं है। लघु इकाई होने के कारण बाजार की प्रतिस्पर्धा में यहां का उत्पादन मुकाबला नहीं कर पाता। ब्रांड के नाम पर बिकने वाले बड़े संयंत्रों के उत्पाद के सामने छोटी कंपनियों को विपणन संबंधी समस्याओं से जूझना पड़ता है वहीं वित्त की दिक्कतें भी हमेशा विद्यमान रहती है। मध्यप्रदेश सरकार द्वारा बनायी गयी शासकीय निविदा नीति भी लघु उद्योगों के हितों का संरक्षण नहीं करती। निविदा भरने की पात्रता उन संयंत्रों को है जिनकी उत्पादन क्षमता 200 टन प्रतिदिन होती है। इस नीति के कारण छोटे-छोटे सीमेन्ट उद्योगों को निविदाओं से वंचित रहना पड़ता है और बड़ी कंपनियां सरकारी और निजी दोनों क्षेत्रों पर एकाधिकार कर लेती है। नेशनल सीमेन्ट संयंत्र के सारे पहलुओं का अध्ययन करने से पता चलता है कि सरकारी नीति, यदि छोटे उद्योगों को विकसित करने का प्रयास करे तो ऐसे उद्योग बाजार में प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं। इसके अलावा श्रमिकों को प्रशिक्षण, बिजली की उपलब्धता, विपणन एवं वित्त की व्यवस्था की जाए तो संयंत्र के संचालन में आने वाली बाधाएं दूर हो जाएंगी। फिलहाल इस संयंत्र में उत्पादन बंद है।

वास्तु के नजरिये से

. 1

वास्तु सिद्धांतों के अनुरूप इस संयंत्र की स्थापना नहीं की गई है। मुख्य द्वार की स्थिति दक्षिण-पश्चिम अर्थात् नैऋत्य दिशा की ओर है। वास्तु अनुसार मुख्य द्वार उत्तर या पूर्व में होना चाहिए। विक्रय विभाग उत्तर पूर्व दिशा में है जिसे उत्तर पश्चिम दिशा में होना चाहिए। भंडार कक्ष भी वास्तु सिद्धांतों के प्रतिकूल है। तिजोरी आदि की दिशा वास्तु अनुरूप है। संरचना देखने से अनुमान लगाया जा सकता है कि कम प्रयास में इस इकाई को स्थापत्य सिद्धांतों के अनुसार ढाला जा सकता है। संयंत्र का जल स्त्रोत उत्तर पूर्व मे है जो वास्तु की दृष्टि से उत्तम है।

किन्तु केवल जल स्त्रोत का ही वास्तु जनिक होना ही किसी औद्योगिक इकाई के लिये लाभकारी साबित नहीं होता, क्योंकि जल के साथ-साथ भारी मशीनें, कच्चा माल हेतु भंडार एवं तैयार माल रखने का स्थान भी संयत्र के लिये वास्तु के अनुरूप होना अत्यंत आवश्यक है।

औद्योगिक क्षेत्र तिफरा की बिलासपुर नगर में स्थिति को भी स्थापत्य के जानकार उद्योग के लिये उपयुक्त नहीं मानते। शायद यहीं कारण है कि करोड़ों रूपये की लागत से स्थापित कंपनियों में ताला लगता जा रहा है। वास्तु शास्त्रियों के एक अध्ययन में रेल्वे स्टेशन क्षेत्र को उद्योग व्यवसाय की दृष्टि से अनुकूल बताया गया है, यह अध्ययन सीपत के पास प्रस्तावित 3000 मेगावाँट के बिजली संयंत्र को लेकर किया गया था।

उपसंहार

कुछ परंपराएं ऐसी होती हैं जिन्हें सच की कसीटी पर कसे बगैर सामाजिक मान्यता मिल जाती है और सालों साल समाज उसे बिना फेरबदल के मानता चला जाता है। प्रकृति के अनेक ऐसे नियम हैं जिनके प्रमाणीकरण की कभी जरूरत महसूस नहीं की गई, क्योंकि प्रकृति ने समय-समय पर स्वयं ही इसका असर दिखाया है। वैदिक परंपरा की ओर लौटकर जाने वालों को रूढ़ीवादी करार देने की कोशिश भी प्रकृति द्वारा दिखाए गए असर के कारण नाकाम हुई है। वैदिक संस्कृति के सिद्धांतों को वैज्ञानिक तरीके से परखने वालों ने अब यह अनुभव कर लिया है। नतीजतन हमारा समाज अब उन सिद्धांतों को मानने लगा है। वैदिक काल की सामाजिक संरचना व सामाजिक परिवेश का सूक्ष्म अध्ययन कर जब उसे वर्तमान परिवेश के समक्ष रखकर देखा जाए तो ऐसे अनेक तथ्य उजागर होते हैं जो हमें भारत की ऐतिहासिक संस्कृति के प्रति गर्वित होने का अहसास कराते हैं। वेदों के प्रवचन हमें आभास दिलाते हैं कि मानव के पर्दापण के पहले भी सृष्टि ने अपने सैद्धांतिक प्राकृतिक नियमों का सृजन कर दिया था। मानव को उन सिद्धांतों का पालन करना पड़ा है। जब-जब मानव जाति ने प्राकृतिक सिद्धांतों की अवहेलना की तब-तब उसे पीड़ा सहनी पड़ी

प्रकृति क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः

अहंकार विमूढातमा कर्ताहमति मन्यते।। भगवद्गीता 3-27

यह सोचकर सहज जिज्ञासा होती है कि आखिर प्रकृति के वह सिद्धांत और नियम कौन से हैं? वेदों में इस जिज्ञासा को शांत करने की सामग्री मौजूद है। जो सृष्टि में है वह सब कुछ वेदों में है। ऋग्वेद सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद की पंक्तियां ऐसे सिद्धांत हैं जिसकी उत्पत्ति मानव जाति ही नहीं सृष्टि सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद की पंक्तियां ऐसे सिद्धांत हैं जिसकी उत्पत्ति मानव जाति ही नहीं सृष्टि को सारे जीवों के लिए कल्याण के हुई है। आयुर्वेद, गंधर्ववेद, धर्नुवेद व स्थापत्य वेद उपवेद हैं जो अलग-अलग सिद्धांतों का वर्गीकरण करते हैं। वेदों के उपवेदों में से एक स्थापत्य वेद के सिद्धांतों को अलग-अलग सिद्धांतों का वर्गीकरण करते हैं। वेदों के उपवेदों में से एक स्थापत्य वेद के सिद्धांतों को

जानने की कोशिश इस शोध प्रबंध में की गई है। पृथ्वी की सारी संस्वनाओं से संबंधित ज्ञान का समावेश स्थापत्य वेद में है। स्थापत्य कोरे ज्ञान का विधायक नहीं है। उसकी कसौटी कर्म है। यह कर्म कभी बिना शास्त्र ज्ञान के नहीं पनपा। स्थापत्य एक यौगिक साधना है। देश भर में जो अनिगतत अवशेष सुरक्षित है उनमें इसी साधना का तेज झलकता है। स्थापत्य व्यापक है। भवन रचना, राजभवन निर्माण, प्रासाद रचना, मूर्ति निर्माण, चित्र रचना के साथ-साथ यत्र रचना भी इसमें समाहित है। मानव जाति पर किसी न किसी रूप में इसका प्रभाव जरूर पड़ता है। इसलिए शोध प्रबंध में स्थापत्य नियमों और उससे पड़ने वाले प्रभाव का विवेचन किया गया है। शोध प्रबंध के प्रथम अध्याय में जिले की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, जलवायु, कृषि, सिंचाई, खनिज एवं उद्योग की जानकारी दी गई है। ईसा पूर्व छठी शताब्दी तक के इतिहास को समेटे यह ऐतिहासिक जिला पुरातात्विक दृष्टि से काफी महत्व रखता है। प्राचीन साहित्य के अनुसार दक्षिण कौशल के इस क्षेत्र में देश की सबसे प्राचीन विष्णु प्रतिमा एवं अद्भुत रूद्रशिव की प्रतिमा मिलने से अनुमान होता है कि यहां सभी धर्मों का समान विकास हुआ। रोमन, चीन एवं कृषाण कालीन सिक्कों का मिलना तत्कालीन विदेश व्यापार की ओर इंगित करता है। निद्यों, प्रपातों, वनों से घिरा यह अंचल खनिज संपदा से भी समृद्ध है। विशाल कोयला भंडार के साथ-साथ बाक्साइट, चूना, मेगनीज के भंडार भी यहां की रल्नगर्मा धरती में दबे हुए हैं।

उद्योगों की दृष्टि से अंचल की पहचान आज पूरे देश में हो रही है। कोरबा में एनटीपीसी, बालको, आईबीपी, गोपालनगर में रेमेण्ड सीमेन्ट, अकलतरा में सीसीआई, चांपा में प्रकाश स्पंज, बिलासपुर में बीईसी फर्टिलाइजर, नोवा स्पंज आयरन बोदरी, कनोई पेपर मिल, एनसीसी, ऋषि गैसेस जैसे उद्योग प्रगति पथ की ओर हैं।

दितीय अध्याय के जिरए इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि ईसा से ढाई हजार साल पूर्व वैदिक काल में ययि वास्तुकला का विकास अपेक्षाकृत कम हुआ था, फिर भी भवन निर्माण या घर की कल्पना की जाने लगी थी। पूर्व एवं उत्तर वैदिक काल की संरचनाओं व भग्नावशेषों से यह संकेत मिलता है कि काष्ठ व घासफूस से चारदीवारी को आकार दिया जाता था। ऋग्वेद में गृह एवं पुर शब्दों का उल्लेख भी मिलता है। सैधव सभ्यता के अवशेष यह बताते हैं कि इस काल में लघु नगरों की

कल्पना को साकार रूप दिया जा चुका था। आज की तरह पकी ईटों अथवा सीमेन्ट की कल्पना उस काल में नहीं की जा सकती थी। फिर भी संरचनाओं को कलात्मक तरीके से ढाला गया। राजा भोज कृत समरांगण सूत्रधार में चुनाई अथवा चयन विधि का वर्णन देखने से अनुमान लगाया जा सकता है कि कुशल कारीगर उस समय उपलब्ध पदार्थों को मिलाकर सीमेन्ट सदृश्य तत्व का निर्माण कर लेते थे। इससे पूर्व सारी संरचनाएं संतुलन, होल साकेट आदि पर आधारित होती थी। इस काल में मानव जंगल के वातावरण से हटकर नगरीय जीवन के माहौल में ढलने लगा था।

आज किसी भी आधुनिक संरचना की कल्पना सीमेन्ट के बगैर नहीं की जा सकती फिर भी वैदिक काल में वास्तु शिल्पियों ने वैकल्पिक तरीके से अपनी कल्पना को रूपाकार दिया। उन्होंने सीमेन्ट के अनेक विकल्प तलाशे, जिसकी गुणवत्ता में शनै:-शनै: इजाफा होता गया। वृहत्संहिता में 'वज्रलेप लक्षण' सिहत अन्य भवन द्रव्यों के विवेचन से यह प्रमाण मिलते हैं वैदिक परंपरा में देवभवन, राजभवन और जनभवन तीनों में सीमेन्ट सदृश्य तत्वों का अलग-अलग तरीके से इस्तेमाल किया गया। प्राचीन संस्कृत साहित्य में गिरीपुष्पक, वज्रलेप, सरीखे शब्दों का उपयोग इन्हीं तत्वों के लिए किया गया है। जिप्सम, लेपद्रव्य, एस्टिक लेप, मृतिका लेप, मृतिका बंधन, सुधा बंधन का उपयोग भी संरचनाओं को जलरोधी बनाने, अथवा प्लास्टर के रूप में किया गया। चूने की क्षमता पहचानने के बाद उस पर किए गए अनेकानेक प्रयोगों ने सीमेन्ट जैसे तत्व को ईजाद करने में मदद दी। अंचल में ऐसे अनेक मंदिर एवं भवन हैं जिनमें जुड़ाई, चुनाई के लिए इस तरह की प्राचीन तकनीक का उपयोग किया गया है।

छत्तीसगढ़ और खासकर अविभाजित बिलासपुर जिले में सीमेन्ट उत्पादन के लिए आवश्यक कच्चे माल की प्रचुर मात्रा ने यहां बड़े-बड़े औद्योगिक घरानों को सीमेन्ट उत्पादन के लिए आकर्षित किया है। शोध प्रबंध के चतुर्थ अध्याय में अंचल में स्थापित सीमेन्ट संयंत्रों की स्थापना एवं विकास यात्रा का विवेचन किया गया है। इससे औद्योगिक विकास की अपार संभावनाओं के संकेत मिलते हैं वहीं सार्वजनिक क्षेत्र के संयंत्र में कुप्रबंधन के कारण तालाबंदी की वजह भी सामने आती है। खुली आर्थिक सीति के कारण बाजार में आई विदेशी कंपनियों से व्यवसायिक प्रतिस्पर्धा का संकट भी अंचल के सीमेन्ट उद्योग पर मंडराता नजर आ रहा है।

deput cities à l'actions, destri, politices de l'action politices de la la la company de

शोधप्रबंधन का पंचम अध्याय स्थापत्य वेद की भूमिका पर आधारित है। संरचना चाहे जिस प्रयोजन के लिए हो उस पर स्थापत्य का प्रभाव अवश्य पड़ता है। स्थापत्यवेद के वास्तु सिद्धांतों के अनुरूप बनी प्राचीन और आधुनिक संरचनाएं इसका जीवंत प्रमाण है। आदिकालीन मंदिर राजभवन हो अथवा आधुनिक औद्योगिक इकाईयां सभी में वास्तुशास्त्रीय असर कहीं न कहीं अवश्य प्रमाणित होता है। जयपुर के महल, वेधशालाएं, जोधपुर की हवेली, देवगढ़ का दशावतार मंदिर ऐसी धरोहर हैं जहां अक्षरशः वास्तु सिद्धांतों का उपयोग किया गया है। उड़ीसा स्थित कोणार्क के सूर्य मंदिर की चर्चा के बगैर यह प्रसंग अधूरा रहेगा, जिसके बारे में कहा जाता है कि सूर्य मंदिर के करीब से बहने वाले समुद्र से होकर कोई जहाज यदि दिन के उजाले में मंदिर के करीब से गुजरता था तो मंदिर के पाषाणों की चुंबकीय शक्ति उसे अपनी ओर खींच लेती थी। सूर्य अस्त होने के बाद ही जहाज गंतव्य की ओर बढ़ पाता था। अंग्रेज शासकों ने इस मंदिर के चुम्बकीय गुणों वाली प्रस्तर शिलाओं को बारूद से उड़ा दिया। फिर भी समुद्र के किनारे यह मंदिर आज भी खड़ा है। इसी तरह वास्तु अनुरूप बने तिरूपित बालाजी मंदिर की कीर्ति पूरे विश्व में फैल रही है, जो विश्व के ऐश्वर्यशाली मंदिरों में से एक माना जाता है।

मंदिर में प्रतिष्ठित श्रीयंत्र को भी जन संपन्नता का कारण माना जाता है। वैदिक काल में स्थापत्य की उत्तरी और दक्षिणी परंपरा में प्रवर्तकों ने इन तथ्यों को अपने ग्रंथों में सप्रमाण प्रस्तुत किया है। व्यापार व्यवसाय को भी स्थापत्य सिद्धांत प्रभावित करते हैं। भोपाल स्थित यूनियन कार्बाइड संयंत्र का हादसा हमारे सामने है जिसने हजारों जाने ले लीं। प्रकृति के सिद्धांत औद्योगिक इकाईयों पर असरकारक होते हैं। संयंत्रों के द्वार, भंडार, मशीने, तैयार माल, भट्टी आदि की दिशानुरूप गलत स्थापना उन्हें नुकसान की दिशा में ले जा सकती है। शोध प्रबंध के अंतिम अध्याय में जिले के सीमेन्ट संयंत्रों की संरचना का अध्ययन स्थापत्य सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में किया गया है। सरकारी क्षेत्र के संयंत्र सीसीआई निजी क्षेत्र के रेमण्ड सीमेन्ट संयंत्र एवं निजी क्षेत्र की लघु इकाई एनसीसी संयंत्र के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कोई भी संयंत्र की स्थापना के पूर्व वास्तु नियमों को बारीकी से नहीं देखा गया। इसलिए पूरी तरह से इन्हें वास्तुनुरूप नहीं कहा जा सकता। मुख्य द्वार की ओर ध्यान जरूर दिया गया है लेकिन अन्य पहलुओं को अनदेखा ही किया गया है। गोपालनगर स्थित रेमण्ड सीमेन्ट

the factory and the admin to these belongs for the first beauty facilities from the contract of

HE SHARE SERVICE AND REAL PROPERTY OF STREET, SERVICE AND STREET, STRE

संयंत्र को प्राकृतिक रूप से ही कुछ लाभ स्थापत्य की दृष्टि से हो गया है, फिर भी संरचना में फेरबदल की जरूरत है। सीसीआई संयंत्र में ब्रम्ह स्थान पर भारी मशीने वास्तु सिद्धांतों के प्रतिकृत हैं। हालांकि यहां आठ वर्ष पूर्व दक्षिण के विद्वानों ने अनुष्ठान किया था पर उसके किसी खास असर से कर्मचारी इंकार करते हैं। एनसीसी सीमेन्ट संयंत्र में वास्तुजनित कठिनाईयों से ज्यादा बाजार की दिक्कतें विद्यमान हैं। यह सत्य है कि केवल वास्तु नियम ही नहीं बहुत से कारक इन संयंत्रों को प्रभावित कर रहे हैं परंतु इस सच से भी सब सहमत लगते हैं कि सारी परिस्थितियां अन्कुल हो तो वास्तु सिद्धांतों के अनुरूप संयंत्र को ढालने में कोई नुकसान नहीं है। स्थापत्य को न मानने वाले यह तर्क देते हैं कि उनका प्रतिष्ठान वास्तु सिद्धांतों के प्रतिकृत स्थापित हैं फिर भी उन्हें लाभ हो रहा है। दरअसल यह भाग्य चक्र का असर है, जो अनुकृत होते तक फलकारक होता है, लेकिन हमेशा के लिए नहीं। यदि ऐसे लोग वास्तु सिद्धांतों को मान लें तो हो सकता है वे और उन्नित को प्राप्त करें।

उद्योग से संबंधित जानकारी हेतु प्रश्नावली

- 1. उद्योग का नाम?
- 2. संयंत्र की स्थापना कब हुई?
- 3. संयंत्र का पंजीकरण क्र. क्या हे?
- 4. संयंत्र किस औद्योगिक प्रक्षेत्र में स्थापित है?
- 5. बिलासपुर शहर एवं रेलवे स्टेशन से कितनी दूरी पर है?
- 6. उद्योग का आकार क्या है?
- 7. उद्योग का क्षेत्रफल क्या है?
- 8. संयंत्र के उत्पाद का स्वभाव क्या है?
- 9. संयंत्र की उत्पादन क्षमता कितनी है?
- 10. कुल कितनी पूंजी लगाई गई है?
- 11. उत्पादन की प्रणाली क्या है?
- 12. संयंत्र में प्रयुक्त कच्चा माल कौन-कौन से है?
- 13. कच्चा माला कहां-कहां से प्राप्त होता है?
- 14. आबंटित भूमि, प्लाण्ट, शेड आदि का विवरण क्या है?
- 15. संचालक मंडल का संगठनात्मक ढांचा क्या है?
- 16. श्रमिक संगठनों व कल्याण योजनाओं का विवरण?

- 17. कुशल और अकुशल श्रमिकों का विवरण?
- 18. श्रमिकों की मजदूरी एवं बोनस का विवरण?
- 19. संयंत्र की उर्जा के स्त्रोत क्या है?
- 20. संयंत्र में बिजली की खपत कितनी है व आपूर्ति कहां से होती है?
- 21. संयंत्र में अनुसंधान की क्या व्यवस्था है?
- 22. प्रशिक्षण के लिए क्या उपाय किये जाते हैं?
- 23. उत्पादन व वितरण की स्थिति क्या है?
- 24. उद्योग का वित्तीय प्रबंध कैसा है?
- 25. उत्पादन के विज्ञापन का माध्यम क्या है?
- 26. संयंत्र में परिवहन व आवागमन के लिये क्या व्यवस्था है?
- 27. उद्योग में कौन कोन सी समस्याएं विद्यमान है?
- 28. समस्याओं के निराकरण के लिये क्या सुझाव है?
- 29. संयंत्र कर्मियों के लिये कौन कौन की सुविधाएं उपलब्ध है?

सीमेन्ट संयंत्रों के वास्तुशास्त्रीय अध्ययन हेतु प्रश्नावली

- 1. उद्योग किस तरह की भूमि पर स्थापित है एवं उसका आकार कैसा है?
- 2. जिस भूमि पर उद्योग स्थापित है वहां की मिट्टी किस रंग व प्रकृति की है?
- 3. संयंत्र के फर्श का ढलान किस दिशा की ओर है?
- 4. संयंत्र का मुख्य द्वार किस दिशा में है?
- 5. संयंत्र की भारी मशीनें किस दिशा में स्थपित हैं?
- 6. बायलर, जनरेटर एवं ट्रांसफार्मर किस दिशा में लगे हैं?
- 7. भंडार कक्ष कहा हैं?
- 8. तैयार उत्पाद किस दिशा में रखा जाता है?
- 9. संयंत्र में जल स्त्रोत कहां है एवं पेयजल आपूर्ति किस दिशा से होती है।
- 10. संयंत्र और आवासीय कालोनी के लिये जल टंकियां किस दिशा में बनी है?
- 11. संयंत्र में पानी का बहाव किस दिशा में है?
- 12. चूना उत्खनन हेतु माइन्स किस दिशा में है?
- 13. माइन्स का मुख्य द्वार किस ओर है?
- 14. संयंत्र में धर्मकांटा किस दिशा में है?
- 15. संयंव में सुरक्षा कार्यालय, टाईम आफिस व स्वागत कक्ष किस दिशा में है?
- 16. प्रमायर ब्रिगेड या अग्नि शमन के उपाय कहां रखे गये हैं?
- 17. संयंत्र का प्रशासनिक कार्यालय कहा स्थित हैं? प्रशासनिक कार्यालय के मुख्य अधिकारी के कक्ष की स्थिति किस दिशा में है?
- 18. विक्रय कार्यालय कहां और किस दिशा में स्थित है?
- 19. संयंत्र में श्रमिकों के विश्राम आवास आदि की व्यवस्था किस दिशा में है?
- 20. आवासीय कालोनी में अस्पताल स्वीमिंग पुल स्कूल आदि की स्थिति किस दिशा में है?
- 21. संयंत्र के आसपास मंदिर किस दिशा में है और उसका मुख किस ओर है?

- 22. फैक्ट्री , की रेलवे साइडिंग एवं परिवहन विभाग किस दिशा में है?
- 23. वाहनों की पार्किंग किस दिशा में है? संयंत्र के भवन में सीढ़ियां किस दिशा में किस दिशा की ओर है?
- 24. क्या कभी संयंत्र का वास्तुशास्त्रीय अवलोकन किया गया है?
- 25. संयंत्र में कभी धार्मिक, अनुष्ठान आदि किए गए है?

मूल्यांकन हेतु प्रश्नावली

मुख्य द्वार (गेट) की स्थिति क्या है?

कोना–दिशा	अंक
दक्षिण-पश्चिम	10
दक्षिण	9
पश्चिम	8
उत्तर-पश्चिम	7
दक्षिण-पूर्व	6
उत्तर	5
पूर्व	4
उत्तर-पूर्व	3

भूतल की स्थिति (समतल, नीची या उठी हुई)

स्थिति	अं क
उत्तर पूर्व से नीची या दक्षिण पूर्व से उपर उठी हुई	10
उत्तर से नीची या दक्षिण से उपर उठी हुई	9
पूर्व से नीची या पश्चिम से उपर उठी हुई	8
समतल	7
दक्षिण पूर्व से उपर उठी हुई	6
उत्तर-पश्चिम से उपर उठी हुई	5
दक्षिण-पूर्व-उत्तर-पश्चिम से नीची	4
उत्तर पूर्व से उपर उठी हुई या दक्षिण-पश्चिम से नीची	3

आपका मुख किस दिशा में है?

कोना–दिशा	अं क
उत्तर पूर्व	10
पूर्व	9
उत्तर	8
उत्तर-पश्चिम	7
पश्चिम व्यवस्था ।	6
दक्षिण-पश्चिम	5
दक्षिण	4
दक्षिण पूर्व	3

सामान का भंडार कहां है?

दिशा	अं क
दक्षिण-पश्चिम (कच्चा माल)	10
दक्षिण	9
पश्चिम	8
उत्तर-पश्चिम (कच्चा माल)	7
उत्तर	6
दक्षिण-पूर्व	5
पूर्व	4
उत्तर पूर्व	3

बायलर, जनरेटर व ट्रांसफार्मर कहां है?

दिशा	अंव
दक्षिण-पूर्व	10
उत्तर-पश्चिम	9
पूर्व	8
पश्चिम	7
उत्तर	6
उत्तर-पूर्व	5
उत्तर-पूर्व	4
दक्षिण-पश्चिम	3

विक्रय विभाग कहां पर है?

अं व
10
9
8
8
6
5
4
3

लेखा विभाग में तिजोरी कहां पर है?

दिशा	अं क
उत्तर-पूर्व	
पूर्व	10
उत्तर	9
उत्तर-पश्चिम	8
पश्चिम	7
दक्षिण-पश्चिम	6
	5
दक्षिण	4
दक्षिण पूर्व	3

आलमारी या तिजोरी किस दिशा में खुलती है?

दिशां	— अं क
उत्तर को खुलते हुये	10
उत्तर-पूर्व	9
पूर्व	8
दक्षिण-पूर्व	7
उत्तर-पश्चिम	6
पश्चिम	5
दक्षिण	4
दक्षिण पश्चिम	3

मूल्यांकन

गणना	व्याख्या
100	उत्तम
80 से 99	बहुत अच्छा
51 ਜੇ 79	अच्छा
50 तक	औसत

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

पौराणिक ग्रन्थ

- (1) ऋग्वेद -
- (2) सामवेद -
- (3) यजुर्वेद -
- (4) अथर्ववेद -
- (5) यर्जुवेद संहिता -
- (6) तैत्तरीय संहिता –
- (7) शतपथ ब्राम्हण -
- (8) एतरेय ब्राम्हण -
- (9) गोपथ ब्राम्हण -
- (10) अद्भुत ब्राम्हण
- (11) तैत्तरीय ब्राम्हण
- (12) कठकोपनिषद्
- (13) मैत्रायणी संहिता
- (14) महाभारत
- (15) श्रीमद् भगवद्गीता -
- (16) वाल्मीकि रामायण –
- (17) समरांगण सूत्रधार -

श्री राम शर्मा आचार्य श्री राम शर्मा आचार्य श्री राम शर्मा आचार्य श्री राम शर्मा आचार्य वेनीराम शर्मा वेनीराम शर्मा वेनीराम शर्मा वेनीराम शर्मा अनुवाद सूर्यकान्त, पं. क्षेमकरन दास त्रिवेदी

मधुसूदन सरस्वती सनातन देव

डा. रामकुमार राय

डा. द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल

(18) वृहद् पायशर होरा शास्त्रम् -

डा. कामेश्वर उपाध्याय

- (19) नारद संहिता
- (20) मुहूर्त चिन्तामणि
- (21) मानसागरी
- (22) अष्टाध्यायी सूत्रपाठ
- (23) स्कन्ध पुराण
- (23) गरुड़ पुराण -
- (24) मत्स्य पुराण -
- (25) अग्नि पुराण -
- (२६) विष्णु पुराण -
- (27) मनु स्मृति -
- (28) मुहूर्त मार्तण्ड -

रामशंकर भट्टाचार्य रामप्रताप त्रिपाठी बलदेव उपाध्याय मुनीलाल गुप्ता हरि गोविन्द शास्त्री, गोपाल शास्त्री

इतिहास एवं पुरातत्व

- (1) भारत का इतिहास (1,2,3)-
- (2) प्राचीन भारत का धार्मिक सामाजिक और आर्थिक जीवन
- (3) वैदिक संस्कृति -
- (4) प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास
- (5) प्राचीन भारतीय कला एवं संस्कृति-
- (6) प्राचीन भारतीय समाज अर्थ -व्यवस्था एवं धर्म
- (7) प्राचीन भारत में रसायन का विकास-

कामेश्वर प्रसाद

- सत्यकेतु विद्यालंकार

कपिलेश्वर शास्त्री कृत

डा. किरण कुमार थपलियाल

- बी.एन. लुनिया

डा. राजिकशोर सिंह, डा. उषा यादव

रमानाथ मिश्र

सांख्य प्रकाश

(8)	द	हिस्द्री	कल्पर	ऑफ	इण्डियन	पिप्ल्स	-
-----	---	----------	-------	----	---------	---------	---

- (9) भारतीय संस्कृति –
- (10) खजुराहो -
- (11) राजिम -
- (12) सिरपुर -
- (13) भारतीय दर्शन -
- (14) खण्डहरों का वैभव -
- (15) ह्वेनसांग का भारत भ्रमण -
- (16) नागार्ज्न -
- (16) बौद्ध संस्कृति का इतिहास -
- (17) सतपुड़ा की सभ्यता -
- (18) प्राचीन छत्तीसगढ़ -
- (19) छत्तीसगढ़ का इतिहास -
- (20) हिन्दू संस्कार -
- (21) मध्यप्रदेश का इतिहास -
- (22) छत्तीसगढ़ दिग्दर्शन -
- (23) कलचुरी नरेश और उनका काल -
- (24) भारतीय कला, वास्तु कला एवं पुरातत्व -
- (25) भारत का सांस्कृतिक इतिहास -
- (25) भारत का इतिहास -
- (26) छत्तीसगढ़ का इतिहास -
- (27) प्री हिस्टोरिक इण्डिया -

आर.सी. मजूमदार, पुशालकर

बाबू गुलाबराय

कन्हैया लाल अग्रवाल

विष्णु सिंह ठाक्र

महेश चन्द्र श्रीवास्तव

बलदेव उपाध्याय

म्निकान्ती सागर

ठाक्र प्रसाद शर्मा

के. सिच्चदानन्द मूर्ति

भागचन्द्र जैन

प्रयागदत्त श्कल

प्यारेलाल गुप्त

नरेन्द्र नाथ मिश्र

राजबलि पाण्डेय

रायबहादुर हीरालाल

मदनलाल गुप्ता

वा.वी. मिराशी

त्यागी एवं रस्तोगी

हरिदत्त वेदालंकार

डा. एस.एम. पहाड़िया

डा. भगवान सिंह वर्मा

्पिगट

वास्तु शास्त्र

(1)	7111	7	
(1)	पास्तु	रत्नाकर	_

- (2) भारतीय स्थापत्य -
- (3) गुप्तकालीन कल्प एवं वास्तु -
- (4) भारतीय भवन निर्माण योजना -
- (5) वृहद् वास्तु माला -
- (6) समरांगण सूत्रधार-भवन निवेश -
- (7) ज्योतिष एवं वास्तु -
- (8) विश्वकर्मा प्रकाश -
- (9) वास्तु सूत्र -
- (10) भारतीय वास्तु कला -
- (11) भारतीय वास्तु एवं भवन निर्माण –
- (12) भारतीय वैदिक वास्तुकला -
- (13) वास्तुकला और भवननिर्माण -
- (14) भारतीय वास्तुकला एवं वास्तु शिल्प –
- (15) सम्पूर्ण वास्तु विज्ञान -
- (16) वाणिज्य वास्तुशास्त्र -
- (17) वास्तु विज्ञानम् -
- (18) वास्तु शास्त्र (प्रकृति नियम और हमारी वास्तु रचना)
- (19) गृह निर्माण व्यवस्था -

विन्ध्येशवरी प्रसाद द्विवेदी डा. द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल पृथ्वी कुमार अग्रवाल नन्दिकशोर झाझरिया प. रामनिहोर द्विवेदी डा. द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल विजय तेलवाले डा. ओमपुरी ज्ञानेश्वर नन्दिकशोर अग्रवाल एस.सी. सरदाना पं. जगदीश शर्मा डा. के.सी. अग्रवाल डा. उमेशपुरी ज्ञानेश्वर अशोक कुमार गोयल डा. भोजराज द्विवेदी उमेश शास्त्री उमेश शास्त्री ेए.आर. तारखेडकर

पं. बद्रीनाथ त्रिपाठी

वाणिज्य

एससी जैन विपणन प्रबंधक -1. औद्योगिक अर्थशास्त्र -कुमावत डावर आर.एस. विक्रय एवं विपणन प्रबंध -डा. एस.सी. सक्सेना व्यवसाय प्रबंध एवं संगठन -सी.बी. भाभोरिया भारत का आर्थिक भूगोल – 5. जिला उद्योग संघ 1998 उद्योग मेला एवं सेमिनार-वालयुम 2. इंडियन कौंसिल सर्वे एंड रिसर्च इन मैनेजमेंट -

अन्य

7.

- वार्षिक लेखा प्रतिवेदन सीसीआई 1.
- वार्षिक लेखा प्रतिवेदन रेमण्ड 2.
- वार्षिक लेखा प्रतिवेदन नेशनल सीमेंट 3.
- मनोरमा इयर बुक- 1990 से 1997 तक
- सीसीआई न्यूज लेटर 5.
- प्रोफाइल आफ रेमण्डस
- बिलासपुर जिला गजेटियर 7.
- योजना-माध्यम म.प्र. 1991-1995 8.
- जिला उद्योग केंद्र विकास निगम तिफरा, बिलासपुर 9.
- औद्योगिक केंद्र विकास निगम तिफरा, बिलासपुर 10.
- सांख्यकीय पुस्तिका 1997 11.





